www.9009.co.in

महाराजा रणजीत सिंह

भगत सिंह

पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला

www.9009.co.in

विषय-सूची

1. रणजीत सिंह के पूर्वज और उनकी विरासत 1
2. रणजीत सिंह का प्रारंभिक जीवन और उसकी शक्ति का उत्थान 12
3. मुलतान, कश्मीर, अटक और पेशावर पर विजय 33
4. अंग्रेजों के साथ संबंध 54
5. रणजीत सिंह के राज्य का नागरिक और सैनिक प्रबंध 74
6. महाराजा का दरबार और उसके दरबारी 108
7. रणजीत सिंह का चरित्र और व्यक्तित्व 134
8. रणजीत सिंह के राज्य काल में सांस्कृतिक और आर्थिक उन्नति 153

www.9009.co.in

प्रथम अध्याय

रणजीत सिंह के पूर्वज और उनकी विरासत

पंजाब में माझे के क्षेत्र के शुकरचक्क गांव में बुड्ढा सिंह[1] नाम का एक चलता-पुर्जा जाट रहता था। वह रणजीत सिंह का ऐतिहासिक दृष्टि से परिचित पहला पूर्वज था। सिखों के सातवें गुरु हरिराय साहब ने उसे सिख बनाया था। वह एक बहुत साहसी और शूरवीर व्यक्ति था जिसने गुरु गोविन्द सिंह जी और बाबा बंदा सिंह के युद्धों में भाग लिया था। उसने अपने गांव में एक छोटी-सी गढ़ी सदृश हवेली बनवा रखी थी। सिख उसका बहुत सम्मान करते थे।

उसके पास एक चितकबरी घोड़ी थी, जिसका नाम उसने 'देसी' रखा था। घोड़ी के नाम पर ही लोग उसे 'देसू' कहने लगे थे। उस घोड़ी पर सवार होकर उसने जेहलम, रावी और चिनाब नदियों को लगभग पचास बार पार किया था। कहा जाता है कि उस घोड़ी पर सवार होकर बुड्ढा सिंह कई बार दिन में सौ-सौ मील की यात्रा कर लिया करता था। बुड्ढा सिंह के शरीर पर तलवार से बीस घावों के दाग और बंदूक की गोलियों के नौ निशान थे। परन्तु उसने शारीरिक दुर्बलता को कभी पास नहीं फटकने दिया। वह सदैव फकीरों, गरीबों और यात्रियों की सहायता करता था। सन् 1716 में उसकी मृत्यु हो गई।

सरदार नौध सिंह

बुड्ढा सिंह के दो पुत्र थे : नौध सिंह और चन्दा सिंह। चन्दा सिंह राजा सांसी के संधावालिए सरदारों का पूर्वज था। नौध सिंह बड़ा होकर बहुत सुन्दर और स्वस्थ नवयुवक बना। सूखे के दिनों में वह अपने पशु चराने के लिए आज-कल के जिला अमृतसर के मजीठा गांव में आया करता था। मजीठा गांव के एक अमृतधारी सिख गुलाब सिंह ने 1730 ई० में अपनी पुत्री लाली का नौध सिंह के साथ इस शर्त पर विवाह कर दिया कि वह भी अमृत-पान कर लेगा।[2] गुलाब सिंह खालसा पंथ का एक श्रद्धालु सिख था। नौध सिंह अपने ससुर की ओर से उत्साहित होकर कपूर सिंह फ़ैजलपुरिये की कमान में दल खालसा में सम्मिलित हो गया। वह अपने घर से निकल पड़ा और अपने साथियों सहित जंगलों और

1. सोहनलाल सूरी, उमदात-उत्-तवारीख, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 2। कई लोग भूल से उसका नाम बुध सिंह लिखते हैं।
2. अली-उद्दीन मुफ्ती, इबरतनामा, भाग-1, पृष्ठ 369.

www.9009.co.in

पहाड़ों में घूमता रहा। सन् 1749 में कपूर सिंह के साथ मिल कर अहमद शाह दुर्रानी का सामान छीन लेने के कारण वह प्रसिद्ध हो गया। वह मजीठा के समीप अफगानों के विरुद्ध लड़ते हुए सन् 1752 में मारा गया।

सरदार चड़त सिंह

नौध सिंह के चार पुत्र थे—'चड़त सिंह, दल सिंह, चेत सिंह और माधो सिंह।' चड़त सिंह के पिता की मृत्यु के समय जस्सा सिंह आहलूवालिया, हरी सिंह और झण्डा सिंह भंगी अपनी-अपनी मिसलें स्थापित कर रहे थे। उनके पास अपनी-अपनी सेना थी और उन्होंने कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा रखा था। इसे 'राखी-प्रथा' कहा जाता था जिसने पंजाब में सिखों की राज्य सत्ता के बीज बोये थे। शुरु-शुरु में पंजाब के लोग सिख सरदारों की रक्षा में आने के लिए प्रार्थना करते थे और बाद में अपने अधिकार में अधिकाधिक क्षेत्र को लाने के लिए गांवों और कस्बों के लोगों को सिख सरदारों की ओर से 'राखी' का प्रस्ताव रखा गया था। इस प्रकार सिख सरदारों ने बहुत सारे इलाके अपने अधिकार में कर लिए। 'राखी' शब्द का अर्थ है—'बचाव या सुरक्षा', पर वास्तव में इसका अभिप्राय था वह कर, जो विदेशी आक्रमणकारियों से बचाने के लिए लोगों से प्राप्त किया जाता था। इस प्रणाली के कारण पंजाब में सिखों की शक्ति के विकास में बहुत सहायता मिली।

चड़त सिंह शुरु-शुरु में भंगी दल में शामिल था परन्तु बहुत जल्दी उसके मन में अपनी मिसल स्थापित करने की इच्छा प्रबल हो उठी। वह भंगियों से पृथक हो गया और उसने अपना दल स्थापित करके अपनी स्वतंत्र हैसियत बनाई। शीघ्र ही उसने सौ एक आदमी एकत्रित कर लिए और कुछ समय बाद ही उसके सैनिकों की संख्या 400 हो गई। उसने रोहतास, धनी और नमक की खदाने अपनी सुरक्षा में कर लीं और इन क्षेत्रों से आवश्यक कर वसूल किया। आयु में वह अभी छोटा ही था परन्तु बहुत सूझवान और तत्काल निर्णय लेने की योग्यता रखता था। वह अत्यंत मिलनसार था और सिखों में उसका बहुत असर-रसूख था।

उसके ससुर अमीर सिंह और साले गुरुबख्श सिंह ने उसकी राजनैतिक योजनाओं को सफल बनाने में बेहद सहायता की। अमीर सिंह भले ही आयु के बोझ के नीचे दबा पड़ा था पर बुढ़ापे में भी गुजरांवाला के लोगों पर उसका बहुत प्रभाव था। युवावस्था में वह एक बहादुर और निडर सिपाही था। उसके मार्ग दर्शन ने चड़त सिंह को शक्तिशाली बनाने में बहुत सहायता की।

चड़त सिंह अपने दल में केवल अमृतधारी सिखों को ही भरती करता था। जो अमृत-पान नहीं किये होते थे, पहले वह अपने हाथों से अमृत-पान करवाता

1. गण्डासिंह, बड़ेहरा, चारबाग-इ-पंजाब, पृष्ठ 135.

www.9009.co.in

था। उसने गुजरांवाला को अपनी राजधानी बनाया और गुजरांवाला ताल्लुके एवं अकाल गढ़ के आसपास के बहुत से गांवों को अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया।[1] उसने अपने गांव शुकरचक्क के नाम पर ही अपनी मिसल का नाम रखा।

ऐमनाबाद का मुसलमान सूबेदार हिन्दू और सिख निवासियों को बहुत तंग करता था। चढ़त सिंह ने अपने साथियों के साथ ऐमनाबाद को घेर लिया। वहां से बहुत सा नकद धन, बंदूकें और जंगी सामान तथा सैकड़ों घोड़े उसके हाथ लगे। इस विजय से उत्साहित होकरे चढ़त सिंह ने बड़े पैमाने पर सैनिक कारवाईयां कीं। चढ़त सिंह की ऐमनाबाद के विरुद्ध की गयी कारंवाइयों से क्रुद्ध होकर लाहौर के सूबेदार उबैद खां ने उसे सबक सिखाने का निश्चय किया। चढ़तसिंह ने गुजरांवाला में बने अपने नये किले में जाकर शरण ले ली जिसे लाहौर की सेना ने जा घेरा। चढ़त सिंह के सैनिकों ने घेरा डालने वालों पर रात्रि के समय आक्रमण करने शुरु कर दिये। उबैद खां गुजरांवाला का घेरा छोड़ कर वापिस लाहौर चले जाने के लिए विवश हो गया। चढ़त सिंह ने अपने साथियों सहित उबैद खां की वापिस जा रही सेना पर धावा बोल दिया। लाहौर की सेना का बहुत-सा जंगी सामान, ऊंट और घोड़े चढ़त सिंह के हाथ लगे।

सफलताएं

चढ़त सिंह ने गुजरांवाला के किले को मजबूत किया और उसकी मिसल दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होती गई। प्रारम्भ से ही वह अपने स्वतंत्र राज्य के सपने देखता आ रहा था जो अब धीरे-धीरे साकार हो रहे थे। उसने वजीराबाद के मुसलमान शासक को वहां से निकाल दिया और अपने साले गुरबख्श सिंह को वहां का प्रबंधक नियुक्त किया। जेहलम नदी पार करके चढ़त सिंह ने पिंड दादन खां और उसके आस-पास के क्षेत्र को अपने अधिकारों में कर लिया। इसमें अहमदाबाद, खुशाब, सोइन आदि सम्मिलित थे जो पहले चंदा सिंह और गंडा सिंह के कब्जे में थे[2]। चढ़त सिंह ने पिंड दादन खां में एक किला बनवाया। उसने खपूड़े की नमक की खदानों पर भी कब्जा कर लिया, जो पहले भंगियों के अधिकार में थीं। इन खदानों से उसे पर्याप्त आमदनी हुई। उसने धनी और पोठोहार के इलाकों पर भी विजय प्राप्त कर ली। चकवाल, जलालपुर और सैयदपुर के जमींदारों ने भी चढ़त सिंह की सरदारी को स्वीकार कर लिया। उसने रोहतास पर विजय प्राप्त की और अगस्त, 1761 में अहमदशाह दुर्रानी के सैनिक अधिकारी नूरुद्दीन बामेजई को चिनाब के बायें किनारे और स्यालकोट में परास्त

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 5; बूटेशाह, तवारीख-ए-पंजाब, भाग-5, पृष्ठ 2-3 (हस्तलिखित प्रति—लायब्रेरी डा० गण्डा सिंह, पटियाला।)

2. अलाउद्दीन मुफ्ती, भाग-1, पृष्ठ 375.

www.9009.co.in

किया ।[1] चड़त सिंह की शूरवीरता और निर्भीकता को प्रकट करने वाली अनेक घटनाएं समकालीन अथवा अर्ध-समकालीन लेखों में प्राप्त होती हैं । जब सन् 1762 में सिख सरदारों ने सरहिन्द के फौजदार को मार डाला तो अहमदशाह दुर्रानी ने अपने एक बहादुर सेनापति जहान खान को भारी सेना देकर सिखों के विरुद्ध भेजा । जब वह अफगान सेनापति स्यालकोट पहुंचा तो चड़त सिंह और गुज्जर सिंह भंगी को साथ लेकर उस पर आक्रमण कर दिया और उसे बुरी तरह हराया ।[2] कुछ समय बाद अहमद शाह दुर्रानी का मामा सरबुलंद खां कश्मीर की सूबेदारी से मुक्त होकर दस या बारह हजार सैनिकों सहित काबुल की ओर जा रहा था । जब वह अटक के समीप रुका हुआ था तो उस समय चड़त सिंह भी रोहतास में उतरा हुआ था । उसने पठानों पर आक्रमण कर दिया और सरबुलंद खां को बंदी बना लिया । सरबुलंद खां ने चड़त सिंह को दो लाख रुपए देकर स्वयं को मुक्त करवाया ।

पंद्रह साल की अल्प-अवधि में चड़त सिंह ने गुजरांवाला, वजीराबाद, रामनगर, स्यालकोट, रोहतास, पिंड दादन खां, धनी और पोठोहार के इलाकों को, जहां से उसे पर्याप्त मालगुजारी प्राप्त होती थी, अपनी मिसल का हिस्सा बना लिया ।

जब से चड़त सिंह ने पिंड दादन खां और खूड़े की नमक की खदानों पर अधिकार किया था, भंगी उसके शत्रु बन गये थे । वे अक्सर एक दूसरे से झगड़े की स्थिति बनाए रखते थे । सन् 1770 में जब झंडा सिंह भंगी और चड़त सिंह एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार हो रहे थे तो चड़त सिंह अपनी ही राइफल के फूट जाने से गंभीर रूप से घायल हो गया और कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गई ।[3] चड़त सिंह की मृत्यु के समय उसके उत्तराधिकारी महा सिंह की आयु केवल दस वर्ष थी । महा सिंह का छोटा भाई सहजा सिंह बचपन में ही मर गया था । दो पुत्रों के अतिरिक्त चड़त सिंह की एक लड़की भी थी । पिता की मृत्यु के समय महा सिंह अभी इतना छोटा था कि वह राज्य का काम संभालने के योग्य नहीं था । इसलिए माई देसां ने मिसल का राज्य-प्रबंध अपने हाथों में ले लिया । देसां एक बुद्धिमती, अनुभवी और सुघड़ स्त्री थी । गोर्डन के शब्दों में, "इस युद्धमय समय के इतिहास में सिख स्त्रियों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और माई देसां ने बहुत शक्ति और राजनीति से शासन किया ।"[4] उसने

1. बूटेशाह, भाग-5. पृष्ठ 3.
2. वही, पृष्ठ 5, और सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 11.
3. सोहनलाल सूरी, उमदात-उत्-तवारीख, दफ्तर दूसरा पृष्ठ 13 और बूटेशाह, भाग 5, पृष्ठ 6.
4. Gordan, The Sikhs, p. 81.

www.9009.co.in

अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए अपनी बेटी राजकौर की शादी गुजरात के गुज्जर सिंह के लड़के साहिब सिंह से कर दी। इसके बाद जल्दी ही उसने अपने लड़के महा सिंह का विवाह जींद के शासक गजपत सिंह की लड़की से कर दिया। इन रिश्तेदारियों ने सैनिक कार्रवाइयों के लिए इन शासकों को इकट्ठा कर दिया।

सरदार महा सिंह

महा सिंह का जन्म सन् 1760 में हुआ था। भले ही उसे अपने पिता से विरासत में एक छोटा-सा राज्य मिला था पर उस राज्य में स्वतंत्र राज्य के सभी लक्षण विद्यमान थे। ज्यों ही महा सिंह ने स्वयं में आक्रमण करने की शक्ति अनुभव की, उसने नूरुद्दीन बामजेई से रोहतास का किला छीन लिया और स्यालकोट के समीप कोटली आहनगरां पर भी अधिकार कर लिया। कोटली के कारीगर बंदूक बनाने में सिद्धहस्त थे। महा सिंह ने उनसे बहुत सारी बंदूकें बनवाई और अपने सैनिकों की आवश्यकताओं को पूरा किया। इसके बाद उसने चट्ठियां के शासक पीरमोहम्मद के विरुद्ध सैनिक कारवाई की। जय सिंह कन्हैया की सहायता से महाँ सिंह ने 6000 सैनिक लेकर सन् 1779 में रसूल नगर पर घेरा डाल दिया। पीरमोहम्मद ने अधीनता स्वीकार कर ली। रसूल नगर का नाम बदल कर राम नगर रख दिया गया। दल सिंह को वहां का सूबेदार अथवा प्रबंधक नियुक्त किया गया। इस विजय के साथ ही बहुत से ऐसे छोटे अधीनस्थ शासकों ने, जो पहले भंगियों की अधीनता का दम भरते थे, शुकरचक्कियों के साथ मिलना शुरू कर दिया। इसके शीघ्र बाद ही चट्ठे महा सिंह के विरुद्ध फिर बागी हो गए। उनके विरुद्ध फिर से सेना भेजनी पड़ी। इस बार अलीपुर पर भी अधिकार कर लिया गया। अलीपुर का नाम बदल कर अकाल गढ़ रखा गया।

रसूल पुर से लौटते समय महा सिंह को सूचना मिली कि 13 नवंबर सन् 1780[1] को गुजरांवाला में उसके घर पुत्र ने जन्म लिया है। पहले उसका नाम बुध सिंह रखा गया पर बाद में रणजीत सिंह रख दिया गया। महा सिंह का अगला अभियान पिंडी भट्टियां, साहीवाल, झंग, ईसाखैल और मूसाखैल के विरुद्ध था। देसा सिंह भंगी अपने क्षेत्रों को बचा नहीं सका। उसने साहिब सिंह से सहायता मांगी परन्तु साहिब सिंह के अपने भाई सुक्खा सिंह के साथ संबंध अच्छे नहीं थे, इस लिए वह कोई सहायता नहीं कर सका।

सन् 1782 में जम्मू के शासक रणजीत देव की मृत्यु हो गई। उसके दो पुत्रों ब्रजराज और दिलेर सिंह में गद्दी के लिए झगड़ा हो गया। कन्हैयों और भंगियों ने इस स्थिति से लाभ उठा कर जम्मू के कुछ क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 17 व 19.

www.9009.co.in

था। बृजराज ने महा सिंह से सहायता के लिए प्रार्थना की। महा सिंह सेना लेकर बृजराज की सहायता के लिए गया पर उस की आवश्यक सहायता न कर सका। लगभग छह महीने बाद महा सिंह पुनः जम्मू की ओर गया। इस बार वह बृजराज के विरुद्ध हो गया था। बृजराज ने कन्हैयों को निर्धारित कर देने से इन्कार कर दिया था। इसलिए कन्हैयों ने महा सिंह की सहायता मांगी थी। बृजराज स्थिति का सामना न कर सका और पहाड़ों की ओर भाग गया। महा सिंह को इस अभियान में जम्मू से पर्याप्त धन दौलत मिली थी। सन् 1786 में महा सिंह दीवाली के अवसर पर अमृतसर आया। उस समय जय सिंह कन्हैया सहित मिसलों के बहुत सारे सरदार एकत्रित हुए थे। सभी सरदार जय सिंह का बहुत सम्मान करते थे। महा सिंह भी सम्मान प्रकट करने के लिए जय सिंह के पास गया। वह महा सिंह की बढ़ रही कीर्ति से ईर्ष्या करने लगा था, इस लिए वह शुकरचकिये सरदार के साथ अच्छी तरह पेश नहीं आया। उसने महा सिंह के प्रति कुछ अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया। महा सिंह जो स्वभाव से एक अक्खड़ नवयुवक था, उन अपमान पूर्ण शब्दों को चुपचाप सहन नहीं कर सका। पर वह अकेला सरदार जय सिंह से बदला लेने की स्थिति में नहीं था। उसने जस्सा सिंह रामगढ़िये को हांसी और हिसार के इलाके से बुला लिया जहां वह जय सिंह द्वारा निष्कासित किए जाने के बाद एक निर्वासित व्यक्ति की भांति अपने दिन काट रहा था। महा सिंह ने संसार चंद कटोच की भी सहायता ली। इन तीनों ने मिल कर कन्हैयों के विरुद्ध बटाला के समीप घमासान युद्ध किया जिसमें जय सिंह का पुत्र गुरुबख्श सिंह मारा गया और कन्हैये हार गए। शुकरचकिया मिसल के सितारे को निरंतर चढ़ते देख कर गुरुबख्श सिंह की विधवा सदाकौर ने अपनी बेटी महताब कौर का रिश्ता रणजीत सिंह के साथ कर दिया। इस रिश्ते के कारण इन दोनों विरोधी मिसलों में शांति स्थापित हो गई। यह गठजोड़ रणजीत सिंह की अन्य विजयों और पंजाब को एक झंडे के नीचे लाने के प्रयत्नों में बहुत सहायक हुआ।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, महा सिंह की बहन का विवाह गुजरात के साहिब सिंह के साथ हुआ था। साहिब सिंह के पिता गुज्जर सिंह की मृत्यु के पश्चात् महा सिंह ने अपने बहनोई से 'हक्के-हाकिमाना' या कर मांगा। साहिब सिंह ने यह कर देने से इन्कार कर दिया, जिसके फलस्वरूप दोनों के संबंध बिगड़ गए। साहिब सिंह ने सोधरे के किले में जा शरण ली जिसको महा सिंह ने घेर लिया। महा सिंह युद्ध क्षेत्र में अस्वस्थ हो गया। वह युद्ध की कमान अपने दस-वर्षीय पुत्र रणजीत सिंह को सौंप कर वापिस गुजरांवाला आ गया जहां 15

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 27.

www.9009.co.in

अप्रैल, सन् 1790 को उसकी मृत्यु हो गई ।[1] इस प्रकार अचानक मृत्यु ने इतिहास के मंच से शुकरचक्किया सरदार की भूमिका को मात्र तीस वर्ष की आयु में ही समाप्त कर दिया। महा सिंह ने अपने पीछे एक ऐसा उत्तराधिकारी छोड़ा जिसका रास्ता खतरों से भरा पड़ा था। परन्तु इसके साथ ही उसमें ऐसे गुण थे जिनके कारण वह अपने मार्ग की सभी बाधाओं को दूर कर सकने में समर्थ था। रणजीत सिंह ने अपने सामने गंभीर खतरों के होते हुए भी उन्नीस साल की आयु में विदेशी आक्रमणकारी जमान शाह को कई बार ललकारा था और फिर लाहौर पर अधिकार कर लिया था। उसके राज्य ने पंजाब के इतिहास को स्वतंत्रता, गौरव, वैभव, सुरक्षा और स्थिरता का युग प्रदान किया।

रणजीत सिंह की विरासत

चड़त सिंह और महा सिंह के राज्य का अध्ययन करने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि रणजीत सिंह को अपने पुरखों से बहुत समृद्ध विरासत मिली थी और अट्ठारहवीं शताब्दी के मिसलों के सरदारों की सामाजिक और राजनीतिक परंपरा से भी उसने बहुत कुछ सीखा था। चड़त सिंह शुकरचक्किया मिसल का प्रणेता था और रणजीत सिंह अपनी मिसल की तीसरी पीढ़ी का शासक था। शुकरचक्किया घराने के पहले दो शासकों ने जो विरासत छोड़ी थी उसकी ओर इतिहासकारों ने बहुत ध्यान नहीं दिया।

चड़त सिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महा सिंह बिना किसी रोक टोक के अपने पिता का उत्तराधिकारी बन गया था। यह वह समय था जब सर्वत्र पैतृक अधिकार को स्वीकृति मिल रही थी। रणजीत सिंह एक राजकुमार की तरह पैदा हुआ और वह अपने व्यक्तित्व या राजनीतिक आकांक्षाओं के कारण शासक नहीं बना वरन् वह हाकिम के घर पैदा होने के कारण हाकिम बन गया था। जब महा सिंह की मृत्यु हुई तो दूसरी मिसलों के सरदार, जैसे जय सिंह कन्हैया और लहणा सिंह भंगी महा सिंह की मृत्यु पर अफसोस करने के लिए और रणजीत सिंह के शुकरचक्किया मिसल का उत्तराधिकारी बनने पर बधाई देने के लिए गुजरांवाला गये थे।[2] इस प्रकार रणजीत सिंह अपने पैतृक अधिकार के बलबूते पर बिना किसी प्रकार की दिक्कत के शुकरचक्किया मिसल का शासक बन गया था। रणजीत सिंह को औपचारिक रूप से 'सरकार-ए-वाला' की उपाधि मिलने पर उसकी स्थिति में अधिक अंतर नहीं पड़ा। इस उपाधि के कारण उसे दूसरी मिसलों के सरदारों पर तो एक प्रकार की प्रमुखता प्राप्त हो गई थी पर

1. वही, पृष्ठ 2 और बूटेशाह, भाग-5, पृष्ठ 17.
   [कुछ लोग गलत स्रोतों पर विश्वास करके महा सिंह की मृत्यु 1792 में बताते हैं]
2. सोहनलाल सूरी, उमदार-उत-तवारीख, दफ्तर, दूसरा, पृष्ठ 29, बूटेशाह, भाग 5, पृष्ठ 17-18.

www.9009.co.in

अपनी मिसल पर उसका अधिकार इस उपाधि के कारण कोई अधिक सशक्त नहीं हुआ था क्योंकि वह पहले ही अपनी मिसल का पूर्ण रूप में शासक बन चुका था।

अट्ठारहवीं शताब्दी मध्य युग का ही भाग था जब शक्तिशाली शासकों को देश के बाहर और देश के अंदर विजय प्राप्त करने का अधिकारी समझा जाता था। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सिख सरदार पहले बाहर वालों के साथ और फिर क्षेत्रीय या अन्य लाभों के लिए आपस में लड़ते रहे। उदाहरण स्वरूप जय सिंह कन्हैया और जस्सा सिंह रामगढ़िया बाह्य आक्रमणकारियों के विरुद्ध कन्धे से कन्धा मिला कर लड़ते रहे। इसके बाद निजी हितों के लिए वे एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने लगे। मिसलों के सरदारों की अपने इलाके बढ़ाने की इच्छा के कारण उनमें आपसी मेल-जोल की भावना कमजोर हो गई और हर सरदार अपने क्षेत्र बढ़ाने, किले बनवाने और सैनिकों की संख्या में बढ़ोतरी करने में लग गया जिसके परिणामस्वरूप मिसलों में आपसी विवाद उत्पन्न हो गये। कभी तो कन्हैये और भंगी आपस में लड़ते और कभी साझे शत्रुओं का सामना करने के लिए इकट्ठे हो जाते। निस्संदेह रणजीत सिंह पंजाब में अट्ठारहवीं शताब्दी की क्रांति की ही उपज था। इस प्रकार हम अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों और रणजीत सिंह के राजनीतिक जीवन के प्रारंभिक वर्षों की कारंवाइयों में समानता देखते हैं। रणजीत सिंह ने अपने पिता और दादा की नीतियों को भी आगे बढ़ाया था।

महा सिंह की राजनीतिक और क्षेत्रीय गतिविधियां मात्र गैर-सिखों तक ही सीमित नहीं थीं। उसने गैर-सिख और सिख सरदारों को अपने अधीन किया। उस समय जो भी शासक अपने साधनों को बढ़ाना चाहता था या अपनी क्षेत्रीय सीमा का विस्तार करना चाहता था, उसे ऐसी ही नीति अपनानी पड़ती थी। कई बार महत्वपूर्ण साधनों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। चढ़त सिंह ने रोहतास पर और महा सिंह ने नमक की खदानों पर और कोटली आहनगरां पर अधिकार कर के राजनीतिक और आर्थिक लाभ प्राप्त किए थे। महा सिंह ने सैनिक सर्वोच्चता और धन प्राप्त करने के लिए जम्मू पर आक्रमण किया था। महा सिंह ने अपने बहनोई साहब सिंह गुजराती से कर मांगा था। उसके इन्कार करने पर महा सिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया और सोधरा के घेरे का अधूरा काम रणजीत सिंह ने पूरा किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्य के हितों के सामने रिश्तेदारियों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था।

शासन प्रबंध में चढ़त सिंह और महा सिंह ने शेष सरदारों की तरह प्रारंभ से ही थानेदार व फौजदार नियुक्त किये हुए थे। राजस्व एकत्रित करने के लिए कारदार और दीवान रखे गये थे। कानूनगो, चौधरी और मुकादम जो पिछली कई शताब्दियों से राजस्व विभाग से संबंधित थे, इन सरदारों के राज्य काल में

www.9009.co.in

भी उसी प्रकार अपना कार्य करते रहे। काजी का पद भी क़ायम रखा गया। गांवों की पंचायतों को, जो शताब्दियों से, एक प्रारंभिक अदालत के रूप में बहुत सफलता से अपना कार्य करती आ रही थीं, छेड़ा नहीं गया। न्याय विभाग की देख भाल का कार्य या तो सरदार के अपने अधिकार में या उनके विश्वास पात्र अधिकारियों के सपुर्द था। प्रजा का सहयोग लेने के लिए धार्मिक संस्थाओं को मालगुजारी के बिना जागीरें दी गई थीं। बहुत सी जागीरें सिख गुरुद्वारों और बेदियों, सोढ़ियों, सैयदों, जोगियों आदि के नाम लगा दी गई थी। इन जागीरों के पात्र केवल सिख ही नहीं थे। महा सिंह के समय हिन्दू और मुसलमानों को भी बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई थीं।

केन्द्रीय पंजाब के शासकों की राजनीति और शासन की ओर ध्यान दें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि वे सरदार अपने छोटे-छोटे राज्यों में राजाओं या बादशाहों की तरह व्यवहार करते थे। उदाहरण स्वरूप चड़त सिंह ने निरंकुश राज्य स्थापित किया हुआ था। 1750 के बाद उसने कई गांवों पर 'राखी' स्थापित की थी, 1761 में उसने लाहौर के अफगान सूबेदार से स्वतंत्र होकर गुजरांवाला को अपनी राजधानी बनाकर अपने राज्य का विस्तार किया था। 1764 में उसने अपने राज्य को गुजरात तक बढ़ा लिया था। उसने कई स्थानों पर किले बनवाये और विजित क्षेत्रों में अपने कमांडर या फौजदार नियुक्त किये। 1765 में उसने वजीराबाद में अपना सूबेदार नियुक्त किया था और बाद में रावल पिंडी के दक्षिणी भागों को भी अपने अधिकार में कर लिया था। वह अपने फौजदार और पुराने साथियों को भारी जागीरें देता था। हम देखते हैं कि चड़त सिंह अपनी मृत्यु से पहले अपने क्षेत्रों में न केवल खुदमुख्तार ही था अपितु वह सिख और गैर सिख सरदारों के साथ राजनयिक गठजोड़ में भी सम्मिलित हो सकता था।

रणजीत सिंह की विरासत में अपने आर्थिक साधनों और सैनिक साजो-सामान सहित न केवल शुकरचक्किया राज्य ही सम्मिलित था वरन् अन्य सिख सरदारों के राज्यों में प्रचलित बहुत-सी प्रबंध तथा राजनीतिक संबंधी परंपराओं को भी उसने ग्रहण किया था। जहां तक सिख राज्यों की राजनीति और सरकार के आम तौर तरीकों का संबंध है चड़त सिंह और महा सिंह शेष सरदारों से भिन्न नहीं थे। उन्हीं की तरह हरी सिंह भंगी एक शक्तिशाली शासक था जिसके पास 20,000 सैनिक थे जो पंजाब के अलग-अलग भागों में स्थित थे। उसने अमृतसर के जिले में गिलवाली नामक स्थान पर अपना मुख्यालय बनाया हुआ था और स्यालकोट, करिआल, मीरोवाल, चिन्योर, झंग आदि उसके अधीन थे। वह लाहौर के अफगान सूबेदार ख्वाजा उबैद के शस्त्रागार में से बहुत सारा सामान

www.9009.co.in

ले गया था। उसकी सेना ने रावलपिंडी, माझा और मालवा के क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। वह जम्मू के राजा रणजीत देव से भी खिराज वसूल करता था।[1]

मालवा के क्षेत्र में आला सिंह ने अपना राज्य स्थापित किया। 1765 में उस की मृत्यु से पहले ही उसके राज्य को अहमद शाह अब्दाली की ओर से तबल-ओ-अलम (नगाड़ा व झंडा) के द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। भले ही एक विदेशी आक्रमणकारी की ओर से इस मान्यता का कोई अर्थ नहीं था। निश्चय ही आला सिंह एक राज्य का स्वामी बन गया था। सिख सरदारों की सरकारों के सम्बन्ध में डॉ० हरिराम गुप्ता ने लिखा है कि हर सिख हाकिम पूर्णतः स्वतंत्र था और प्रभुसत्ता सम्पन्न पड़ोसी देशों के साथ सीधा सम्बन्ध रखता था।[2] जस्सा सिंह आहलूवालिया, जस्सा सिंह रामगढ़िया, जय सिंह कन्हैया और हरी सिंह भंगी जैसे प्रसिद्ध सिख सरदारों के राजनैतिक जीवन का अध्ययन करने से तथ्य स्पष्ट हो जाता है। इतिहासकार अट्ठारहवीं शताब्दी के सिख शासकों के लिये 'सुल्तान-उल-कौम' और 'बादशाह' के शब्दों का उपयोग करते हैं। गणेश दास ने जस्सा सिंह, झण्डा सिंह, गण्डा सिंह, हरीसिंह और दूसरे सरदारों के लिये बादशाह शब्द का प्रयोग किया है।[3]

कुछ इतिहासकार कहते हैं कि रणजीत सिंह ही पंजाब में पहला सिख बादशाह हुआ है और शेष सभी मात्र जागीरदार सरदार ही थे। पर उपरोक्त विचारों से हम निस्संदेह यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शेष सिख शासक किसी पक्ष से भी रणजीत सिंह से कम स्वतंत्र नहीं थे। अट्ठारहवीं शताब्दी के सिख शासक अपने राज्य में इतने ही खुदमुख्तार थे जितना कि रणजीत सिंह अपने राज्य में। अन्तर केवल इतना ही था कि अट्ठारहवीं शताब्दी के सरदारों के राज्य छोटे थे और रणजीत सिंह का राज्य अपेक्षाकृत बड़ा था। रणजीत सिंह ने अपने शासन प्रबन्ध को अधिक विस्तृत किया। अन्य सरदारों के राज्य प्रबन्ध के लक्षण लगभग वही थे जो रणजीत सिंह के थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि रणजीत सिंह की विरासत केवल शुकरचकिया घराने तक ही सीमित नहीं थी वरन् उसे अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में सिख राजनीति में किये गए प्रयोगों से भी पर्याप्त लाभ पहुंचा था। उसे अपने पुरखों से जो विरासत मिली थी उस से वह प्रारम्भ से ही अपने मार्ग पर मजबूती से चलने के योग्य हो गया था। उसे मध्य रचना से मध्य चज्ज तक के क्षेत्र और सिंध सागर दोआब के केन्द्रीय भाग के क्षेत्र विरासत में मिले थे जिस के कारण वह पंजाब में शुरू से ही एक प्रसिद्ध

1. अहमदशाह अब्दाली, तवारीख-ए-पंजाब, पृष्ठ 15.
2. Hari Ram Gupta, A History of Sikhs, Vol. I, p 327
3. गणेश दास बढ़ेहरा, पृष्ठ 127.

www.9009.co.in

शासक माना जाने लगा था। इसी के परिणाम स्वरूप उसने लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया और धीरे-धीरे लगभग सम्पूर्ण पंजाब, शिवालिक के पहाड़ी प्रान्त, जम्मू और कश्मीर और सुलेमान पर्वत तक के अफगान क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया जिस के कारण उसे पंजाब का एक शक्तिशाली बादशाह या महाराजा माना जाने लगा।

www.9009.co.in

द्वितीय अध्याय

रणजीत सिंह का प्रारंभिक जीवन और उसकी शक्ति का उत्थान

रणजीत सिंह का जन्म 13 नवम्बर सन् 1780[1] को गुजरां वाला में हुआ था। उसके बचपन के विषय में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती। मात्र इतना ही पता चलता है कि चेचक के कारण उसकी बायीं आँख खराब हो गई थी। सोहन लाल सूरी के शब्दों में जब राजकुमार की सेहत खराब हुई तो एक योग्य हकीम लाला हाकिम राय को बुलाया गया। राजकुमार की दशा बहुत तेज बुखार के कारण और भी बिगड़ गई। उसकी आँख में से बहुत सारा मवाद निकला और तेज दर्द से आँख खराब हो गई।[2] बचपन से ही रणजीत सिंह ने शूरवीरता और निर्भयता का परिचय दिया था। छह वर्ष की छोटी-सी आयु में ही वह अन्य लड़कों के साथ चिनाब नदी में जाकर तैरा करता था। छोटी-सी आयु में ही गुजरांवाला में गुरुमुखी सीखने के लिए भागू सिंह की धर्मशाला में भेजा गया

1. कुछ लेखक 13 नवंबर, 1780 ई० (2 मार्गशीर्ष संवत् 1837 विक्रमी) की बजाय दो नवंबर, 1780 को महाराजा की जन्मतिथि समझते हैं। यह गलतफहमी दो मार्गशीर्ष, जो नवंबर के महीने में आता है, से हुई लगती है। दो नवंबर की तारीख का पहला उल्लेख हेनरी प्रिंसप ने महाराजा रणजीत सिंह के विषय में लिखी अपनी पुस्तक में किया था और इसी को भारतीय व विदेशी लेखक अंधाधुंध अपने लेखों में नकल करते आये हैं। उन्होंने यह जन्मतिथि महाराजा के जीवन के विषय में लिखी समकालीन फारसी पुस्तकों से मिला कर नहीं देखी। सोहनलाल सूरी और उसके बुजुर्गों द्वारा लिखी हुई पुस्तक—"उमदात-उत-तवारीख", जो उसके पुत्र व पौत्र ने 1885 में प्रकाशित की थी, रणजीत सिंह के विषय में सर्वाधिक विश्वसनीय पुस्तक है। उसके अनुसार महाराजा की जन्मतिथि 2 मार्गशीर्ष, संवत् 1837 विक्रमी अर्थात् 13 नवंबर 1780 है (दफ्तर-11, पृष्ठ 17-19), 'तवारीख-ए-पंजाब' का कर्तिकार चूटेशाह भी महाराजा की जन्मतिथि यही मानता है (दफ्तर-5, पृष्ठ 8, हस्त लिखित, लायब्रेरी डॉ० गण्डा सिंह, पटियाला) दीवान अमरनाथ ने अपनी पुस्तक 'जफरनाम-ए-रणजीत सिंह' में जो सन् 1835-36 में लिखी गई थी, रणजीत सिंह की जन्मतिथि 3 मार्गशीर्ष, संवत् 1837 दी है पर दिन सोमवार लिखा है जो 13 नवंबर को ही आता है। 'दोयम मग्घर' की बजाय 'सोयम मग्घर' लिखा गया है। इन उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त मुफ्ती गुलाम सरवर कुरैशी की पुस्तक 'तारीख-ए-मखजाने पंजाब' (1867-68), गोपाल दास की 'तारीख-ए-गुजरांवाला (1873), कन्हैयालाल की "तारीख-ए-पंजाब" (1877), ज्ञानी ज्ञान सिंह की तारीख-ए-गुरु खालसा" (1894), और सीताराम कोहली की 'महाराजा रणजीत सिंह' (1933) में भी उनके जन्म की यही तारीख दी गई है। रणजीत सिंह का जन्म बडरुखां में नहीं गुजरांवाला में हुआ था।

2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 25.

www.9009.co.in

था पर उसने बहुत कुछ नहीं सीखा।[1] बाद में उसने अमीर सिंह नामक एक ब्राह्मण से निशानेबाजी सीखी।

अपने पिता की मृत्यु के समय वह एक दस-वर्षीय बालक था। इस छोटी-सी आयु में वह राज्य का काम-काज नहीं संभाल सकता था पर पिता की गद्दी पर आसीन होने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। जैसा कि पहले बताया जा चुका है रणजीत सिंह की सगाई गुरुबख्श सिंह कन्हैया और रानी सदाकौर की लड़की मेहताब कौर से हुई थी। रणजीत सिंह को अपने बचपन में सदा कौर जैसी बुद्धिमती, दूरदर्शी और सुघड़ महिला के सहयोग का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। सरदार दल सिंह गिल और गुरुबख्श सिंह वजीराबादी को सैनिक और नागरिक प्रबंध का कार्य सौंपा गया और नागरिक कार्यों की देखभाल दीवान लखपत राय के सुपुर्द की गई। रणजीत सिंह की माता राज कौर भी प्रबंधकीय कार्यों की काफी समझ रखती थी।

अपने प्रारम्भिक जीवन में रणजीत सिंह शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। एक दिन 1783 ई० में वह अपने साथियों से बिछुड़ गया और चट्ठियां के क्षेत्र में चला गया। नवाब हशमत खां चट्ठा भी शिकार खेलने आया हुआ था। उसने रणजीत सिंह को देख कर पीछे से छिप कर तलवार से आक्रमण कर दिया। रणजीत सिंह तुरन्त अपने घोड़े की काठी पर लेट गया और हशमत खां के घातक आक्रमण से बच गया पर प्रत्युत्तर में उसने हशमत पर इतने जोर का वार किया कि उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।[2] इस प्रकार रणजीत सिंह ने 13 वर्ष की आयु में ही अपनी शूरवीरता और निर्भयता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इससे पहले भी वह अपने पिता महा सिंह के साथ युद्धों में भाग लेता रहा था। उन दिनों ऐसे व्यक्ति में, जो राज्य स्थापित करने का इच्छुक होता था, निजी वीरता का होना एक आवश्यक गुण समझा जाता था। इस गुण में रणजीत सिंह पूरा उतरता था। 1796 में सोलह वर्ष की अवस्था में रणजीत सिंह का विवाह सदा कौर की बेटी मेहताब कौर के साथ हो गया।

1793 में जय सिंह कन्हैया की मृत्यु के पश्चात् रामगढ़ियों ने कन्हैयों को अशक्त समझ कर तंग करना शुरू कर दिया था। रणजीत सिंह फतेह सिंह धारी, जोध सिंह और दल सिंह जैसे अनुभवी सरदारों और अपनी सेना को साथ लेकर बटाला गया। उसने रामगढ़ियों के अधीनस्थ मियाणी किले को घेर लिया। पर बरसात के मौसम के कारण शीघ्र ही घेरा हटा लेना पड़ा। बटाला जाते हुए एक बार रणजीत सिंह लाहौर में रुका और वहां के सिख शासकों से मिला। उसने

1. बूटेशाह, भाग-5, पृष्ठ 8.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 36; अमरनाथ, पृष्ठ 8.

www.9009.co.in

लाहौर के किले का सर्वेक्षण भी किया। उस समय से ही उसने लाहौर को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लेने की दिल में ठान ली थी।[1]

रणजीत सिंह ने 1798 में ज्ञान सिंह नकई की बहन दातार कौर से अपनी दूसरी शादी की। उसे माई नकैण कहते थे। उसकी कोख से 1801 में खड़क सिंह का जन्म हुआ था।

रणजीत सिंह का राज्यसत्ता संभालना

एक अत्यंत विश्वसनीय कर्मचारी के रूप में दीवान लखपत राय ने बहुत ईमानदारी से महा सिंह की सेवा की थी। दीवान उसकी आमदनी और खर्च का पूरा-पूरा हिसाब-किताब करता था। रणजीत सिंह के मामा दल सिंह और दीवान लखपत राय के संबंध अच्छे नहीं थे। रणजीत सिंह के युवा होने पर उसकी सास सदा कौर ने अपना राजपाट संभालने के लिए रणजीत सिंह पर बहुत दबाव डाला। 1798 में लखपत राय धनी-क्षेत्र के मुसलमान जमींदारों के हाथों कत्ल हो गया। दल सिंह जलोदर की बीमारी के कारण अलीपुर चला गया।

राज्य के लिए अनुकूल परिस्थितियां

अहमदशाह अब्दाली सिखों का जानी दुश्मन था परन्तु उसकी कारवाईयों से सिखों को बहुत लाभ पहुंचा। उसके आक्रमणों के कारण पंजाब में मुगलों का शासन प्रबंध समाप्त हो गया। 1761 में उसने पानीपत के मैदान में मराठों को कमर तोड़ पराजय दी और उनकी उत्तर-पूर्वी भारत संबंधी सभी योजनाएं नष्ट कर दीं। पंजाब के अनेक क्षेत्रों पर सिखों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया। यमुना और सिंध नदियों के बीच के क्षेत्र पर सिखों का अधिकार हो गया था। इन दूरवर्ती सीमाओं के बीच बारह सरदारों और बहुत सारे मिसलदारों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए थे।

इन सरदारों के राज्यों की सीमाएं एक दूसरे के साथ गड्ड-मड्ड थीं। जब दो या दो से अधिक सरदार किसी सांझी कारवाई के लिए इकट्ठे हो जाते थे तो कई बार उस कारवाई के पश्चात् लूट के बंटवारे पर झगड़ पड़ते थे। जिस प्रकार जस्सा सिंह रामगढ़िया और जय सिंह कन्हैया जो दल खालसा के सदस्यों के रूप में बहुत घनिष्ठ मित्र थे और मिलकर अपने शत्रुओं पर धावा बोला करते थे, के बीच कसूर की विजय के पश्चात् युद्ध में प्राप्त हुई सामग्री के बंटवारे के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। ऐसे झगड़े अन्य सरदारों में भी हुआ करते थे। इन आपसी झगड़ों के कारण इन सरदारों के आपसी मेल-जोल और सहयोग में बहुत कमी आई। कई मिसलों के शक्तिशाली सरदार अपने राज्यों का विस्तार करने के भी इच्छुक थे, इस कारण भी उन सरदारों में एक दूसरे

1. सोहनलाल सूरी, भाग-2, पृष्ठ 83; बूटेशाह, भाग-5, पृष्ठ 21.

www.9009.co.in

के प्रति द्वेष बढ़ने लगा और उनके आपसी संबंध बिगड़ते गये। रणजीत सिंह ने पंजाब की परिस्थितियों को देखते हुए यह अनुभव किया कि सिख सरदारों के छोटे-छोटे राज्यों को एक झण्डे के नीचे एकत्रित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। ये छोटे-छोटे राज्य न तो पंजाब के लिए और न ही सिखों के लिए लाभदायक थे। रणजीत सिंह की यह योजना भले ही बहुत कठिन थी किन्तु असम्भव नहीं थी। इसलिए प्रारंभ से ही उसने गहरी सूझ-बूझ और निर्भीकता से पंजाब के एकीकरण का बीड़ा उठा लिया। कुछ लोग रणजीत सिंह के इस बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय की निन्दा करते हैं। उनके अनुसार प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों के सरदारों की सरदारी समाप्त कर देना रणजीत सिंह के लिए उचित नहीं था। किन्तु रणजीत सिंह का निर्णय उसकी दूरदर्शिता और गहरी राजनीतिक सूझ-बूझ पर ही आधारित था।

राज्य की स्थापना

जीवित रह सकने के लिए पंजाब का एक शासक के अधीन इकट्ठा होना आवश्यक था। एक ओर जमानशाह के नेतृत्व में अफगान लोग पंजाब में अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे और दूसरी ओर अंग्रेज भी इसमें दिलचस्पी लेने लगे थे। पंजाब में कुछ छोटे पठान शासक और पहाड़ी शासक अपने राज्यों का विस्तार करना चाहते थे। खुशवंत सिंह के शब्दों में, "1790 ई० में पंजाब एक विचित्र गोरख धंधा बना हुआ था। इसके पृथक-पृथक चौदह भाग थे और सीमाओं से इसमें पांच तीर चुभे हुए थे। इन चौदह भागों में से बारह तो सिख मिसलें थीं, तेरहवां कसूर जो पठानों के अधिकार में था और चौदहवां हांसी का क्षेत्र था जो एक अंग्रेज जार्ज टामस के हाथों में था। पांच तीर थे—उत्तर पश्चिम में अफगान, उत्तर में कांगड़ा के राजपूत, उत्तर-पूर्व में गोरखे, पूर्व में अंग्रेज और दक्षिण-पूर्व में मराठे।"[1]

भंगियों के पास लाहौर, अमृतसर, गुजरात और सियालकोट जैसे प्रसिद्ध नगर थे। पर फिर भी वे रणजीत सिंह का मुकाबला नहीं कर सकते थे। आहलूवालिया मिसल के बड़े सरदार जस्सा सिंह की 1783 में मृत्यु हो गयी थी। उसके उत्तराधिकारी रणजीत सिंह के मित्र बने रहे। फतेह सिंह अहलूवालिया तरनतारन में रणजीत सिंह के साथ अपनी पगड़ी बदल कर उसका पगड़ी बदल भाई बन गया था। जस्सा सिंह रामगढ़िया भी रणजीत सिंह की योजनाओं के समक्ष किसी प्रकार की रुकावट नहीं डाल सकता था। कन्हैया मिसल के सरदार जय सिंह ने अपनी पोती मेहताब कौर का रणजीत सिंह से विवाह कर दिया था जिससे कन्हैया व शुकरचक्किया मिसल का एक शक्तिशाली संगठन बन गया

1. Khushwant Singh—Ranjit Singh p. 28.

www.9009.co.in

था। सिंहपुरिये लुधियाना, जालंधर, नूरपुर और अंबाला के समीप राज्य करते थे। निशानवालिये अंबाला, शाहबाद और अमलोह के शासक थे। इसी प्रकार करोड़सिंघिये, शहीद, नकई और डल्लेवालिये छोटे-छोटे सरदार थे जो रणजीत सिंह जैसे शक्तिशाली शासक के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डाल सकते थे। सतलुज से पूर्व की ओर फुलकियां मिसल के शासक भले ही शक्तिशाली थे किन्तु उनके आपसी मतभेदों ने उन्हें काफी कमज़ोर कर दिया था।

पंजाब के कुछ इलाकों पर मुसलमान शासकों का अधिकार था। झंग में अहमद खां सियाल राज्य करता था और कसूर पर निज़ामुद्दीन का अधिकार था। डेरा गाज़ी खां और बहावलपुर बहावल खां के हाथों में थे और मुलतान पर मुज़फ्फर खां सदोज़ई का राज्य था। इसी प्रकार कश्मीर, अटक, बन्नू, कोहाट, डेरा इस्माइल खां, चिन्योट में मुसलमान शासक राज्य करते थे।

हिमाचल के क्षेत्र में भी छोटे-छोटे राज्य थे जैसे सुकेत, मंडी, कुल्लू, बिसौहली, चम्बा, नूरपुर, जम्मू और कांगड़ा। उन सबमें से कांगड़ा का राजा संसार चंद कटोच अधिक शक्तिशाली और प्रसिद्ध था। नेपाल के गोरखे भी रणजीत सिंह के लिए समस्याएं पैदा कर सकते थे। नेपाल का प्रधानमंत्री भीम सिंह थापा अपने प्रदेश की सीमाओं को दूर-दूर तक फैलाना चाहता था और हिमाचल के क्षेत्र पर उसकी नज़र थी। इस प्रकार नेपाल और सिख राज्य के मध्य कभी भी टकराव की स्थिति पैदा हो सकती थी। यद्यपि अंग्रेज़ों की ओर से कोई तात्कालिक चुनौती नहीं थी किन्तु आगे चल कर खतरा अवश्य हो सकता था। सारे मध्य भारत पर मराठों का अधिकार था। लेकिन उनकी ओर से भी रणजीत सिंह को तुरंत किसी प्रकार का भय नहीं था।

पंजाब के इस संक्षिप्त राजनैतिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि यह छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था जो अकेले किसी शक्तिशाली और साहसी व्यक्ति की सैनिक कारवाईयों का सामना नहीं कर सकते थे। 1783 ई० में जार्ज फोर्स्टर ने लिखा था कि कोई साहसी सरदार छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त करके अपनी राजसत्ता स्थापित करेगा।[1] उसकी यह भविष्यवाणी आगे चल कर रणजीत सिंह ने पूरी की जो उस समय केवल तीन वर्ष का ही था।

रणजीत सिंह के अधीन एक बड़े राज्य की स्थापना

रणजीत सिंह को, जो पंजाब में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करना चाहता था, काबुल के हाकिम ज़मान शाह दुर्रानी का सामना करना पड़ा जो 1793 ई० में काबुल की राजगद्दी पर बैठा था और पंजाब को अपने अधिकार

1. Forster, Vol I, p 295.

www.9009.co.in

में लेना चाहता था। 1795 में उसे हसन अब्दाल से ही लौटना पड़ा। उसने सन् 1796 के अन्त में पंजाब पर अपना तीसरा आक्रमण किया और 3 जनवरी, 1797 को लाहौर पर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तान में उसके भाई महमूद शाह द्वारा उपद्रव करने के कारण जमान शाह को शीघ्र ही वापिस जाना पड़ा। वह अहमदशाह शाहांची को 1200 सैनिक देकर लाहौर में ही छोड़ गया। शाहांची को सिखों ने रामनगर के समीप एक युद्ध में कत्ल कर दिया।[1] अपने सेनापति की मृत्यु की सूचना पाकर शाह ने सिखों से बदला लेने का पक्का निश्चय कर लिया। गांव दादन खां, रसूल नगर, झंग, कसूर और कई अन्य स्थानों के मुसलमान शासकों ने पंजाब पर तुरंत आक्रमण करने और सिखों को नष्ट करने के लिए जमानशाह को आमंत्रित किया। जमानशाह 1798 ई० में सर्दियों की ऋतु में पंजाब में आया। जमानशाह के खतरे को देखते हुए बाबा साहिब बेदी ने अमृतसर में 'सरबत खालसे' (सभी सिख सरदारों) का एक भारी समागम किया।[2] पटियाला के साहिब सिंह ने इस समागम में सम्मिलित होने के निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया जिसका कारण शायद उसके क्षेत्र के आस-पास मुसलमान शासकों की ओर से लगातार बना हुआ खतरा था। जमान शाह ने कांगड़ा के राजा संसार चन्द और जम्मू के राजा को लिखा कि वे सिख परिवारों को अपने पहाड़ी क्षेत्रों में शरण न दें। शाह जमान की लाहौर की ओर बढ़ती आ रही सेना पर गुजरात और वजीराबाद के बीच रणजीत सिंह, साहिब सिंह भंगी, नाहर सिंह आदि ने आक्रमण किया परन्तु काबुल की भारी सेना आगे बढ़ती गयी और 27 नवंबर, 1798 को लाहौर में प्रविष्ट हो गई। शाह की एक सैनिक टुकड़ी अमृतसर की ओर बढ़ी जिसका रणजीत सिंह ने सामने से मुकाबला किया और अफगान सैनिक वापिस लाहौर जाने के लिए विवश हो गये। हर रात को रणजीत सिंह कुछ सवारों सहित लाहौर शहर के समीप तक आता और शाह की सेना को ललकार कर रात में ही वापिस लौट जाता। सोहन लाल सूरी के शब्दों में रणजीत सिंह ने लाहौर के किले के समन बुर्ज पर थोड़े से सैनिकों को साथ लेकर तीन बार आक्रमण किया। वह कुछ गोलियां चला कर और कुछ अफगानों को मार कर या घायल करके वापिस चला जाता। एक बार रणजीत सिंह ने शाह को द्वंद्व युद्ध करने के लिए ललकारा और कहा—"अहमद शाह के पोते, तुम बाहर आओ। सरदार चढ़त सिंह का पोता तुम्हारे साथ दो-दो हाथ करना चाहता है।" पर उधर से कोई भी उत्तर नहीं आया तो

1. सोहन लाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 34; गणेश दास, पृष्ठ 139.
2. गणेश दास, पृष्ठ 140.

www.9009.co.in

रणजीत सिंह वापिस चला गया। जमान शाह सिखों की शूरवीरता और निर्भीकता से आश्चर्यचकित हो रहा था और उधर पीछे से कंधार और हरात से परेशान करने वाली सूचनाएं आ रही थीं। इस स्थिति में उसने वापिस लौटना ही उचित समझा। शाह जमान चार सप्ताह लाहौर में रहा। उस समय कई सिख सरदार उसे मिले। शेखूपुरा के निधान सिंह और वजीर सिंह नकई ने उसे पांच-पांच घोड़े भी पेश किये। शाह की ओर से उन्हें सिरोपा दिया गया। शाह ने शेष सिख सरदारों से भी सहयोग प्राप्त करने का यत्न किया। उनकी ओर से पहले नकारात्मक उत्तर मिला पर बाद में कुछ सरदारों ने अपने प्रतिनिधि शाह के पास भेजे। जमान शाह 4 जनवरी, 1799 को लाहौर वापिस चला गया।

वापिस जाते समय जेहलम नदी में बाढ़ आई के कारण शाह की बारह तोपें नदी में डूब गईं। कहा जाता है कि शाह ने एक पत्र के द्वारा रणजीत सिंह से प्रार्थना की कि वह उसकी तोपें नदी में से निकलवा कर काबुल भिजवा दे। रणजीत सिंह ने सारी तोपें नदी में से निकलवाईं और उनमें से आठ काबुल को भिजवा दीं और चार अपने पास रख लीं।

रणजीत सिंह का लाहौर पर अधिकार (1799 ई०)

शाह के वापिस चले जाने के तुरंत बाद ही लाहौर के तीनों शासक चेत सिंह, साहिब सिंह और मोहर सिंह वापिस लाहौर आ गये। ये तीनों अपनी जिम्मेदारियों को ठीक प्रकार से नहीं निभा रहे थे जिसके कारण नगर की शासन व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली जा रही थी। कसूर के निजामुद्दीन ने भी लाहौर पर अधिकार करने का इरादा किया पर रणजीत सिंह की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए उसे अपना विचार बदलना पड़ा। रणजीत सिंह के दरबार के दैनिकी लेखक मुंशी सोहन लाल के अनुसार लाहौर के सरदारों के अयोग्य राज्य में जनता बहुत दुःखी थी। लाहौर के गण्यमान्य हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों ने निर्णय किया कि रणजीत सिंह को लाहौर आने के लिए निमंत्रण दिया जाए। निमंत्रण पर मोहम्मद सलीम, मेहर मोहकमदीन, गुरबख्श सिंह, हाकिम राय, मुफ्ती मोहम्मद मुकर्रम, मोहम्मद बाकर आदि के हस्ताक्षर थे। रणजीत सिंह ने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया।[1] रणजीत सिंह अपनी सास सदाकौर को साथ लेकर अपनी सेना सहित लाहौर पहुंचा। लाहौर के लोगों ने उनके पहुंचने पर लोहारी दरवाजा खोल देने का वचन दिया था जो पहले दिन पूरा न हो सका। लाहौर के शासक रणजीत सिंह के इरादे से अनभिज्ञ थे। सरदार मोहर सिंह ने तो रणजीत सिंह के लाहौर पहुंचने पर कुछ मिठाई भी भिजवाई थी। रणजीत

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 41; बूटेशाह, भाग 5, पृष्ठ 23.

www.9009.co.in

सिंह लाहौर के सरदारों को अपने इरादे की ओर से निश्चिंत रहने के लिए रावी नदी पर गया और अगली सुबह को गुजरांवाला जाने के लिए रावी पार करने के लिए किश्तियों का प्रबंध कर आया।[1] अगले दिन सुबह अर्थात् 6 जुलाई, 1799 को रणजीत सिंह की सेना के लिए लोहारी दरवाजा खोल दिया गया। शोभा सिंह का पुत्र मोहर सिंह जो लखपत राय की हवेली में रहता था भाग कर एक घास वाले कमरे में जा छिपा और बाद में उसे पकड़ कर महाराजा के सामने लाया गया। महाराजा ने उसके साथ बहुत सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उसे अपना सारा सामान लेकर अपनी जागीर पर जाने की आज्ञा दे दी। चेत सिंह जो लाहौर के किले में था, सारा दिन रणजीत सिंह के आदमियों पर गोलियां चलाता रहा। सदा कौर के सुझाव पर चेत सिंह से बातचीत की गई। वह किला छोड़ कर लाहौर से बाहर जाने के लिए राजी हो गया। रणजीत सिंह ने उसे अपनी सारी सम्पत्ति सहित जिला अमृतसर के अजनाला परगने में चिनकी गांव में अपनी जागीर पर चले जाने की आज्ञा दे दी।[2] रणजीत सिंह 7 जुलाई, 1799 को लाहौर के किले में प्रविष्ट हो गया।

भसीन की लड़ाई (1880 ई०)

लाहौर पर अधिकार हो जाने के पश्चात् रणजीत सिंह की शक्ति में दिन-प्रति-दिन वृद्धि होती गई। दूसरे सरदार उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने इकट्ठे होकर रणजीत सिंह को अधिक शक्तिशाली होने से रोकने की कोशिश की। 1800 ई० की होली के त्यौहार के पश्चात् साहिब सिंह गुजराती, गुलाब सिंह भंगी, जस्सा सिंह रामगढ़िया और कसूर के नवाब निजामुद्दीन ने लाहौर से नौ कोस की दूरी पर भसीन गांव के समीप रणजीत सिंह पर आक्रमण करने के विचार से अपनी सेनाएं इकट्ठी कीं। उधर लाहौर से रणजीत सिंह अपनी सेना लेकर आ गया। दो महीने तक दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने डटी रहीं। लगभग आठ सप्ताह के पश्चात् गुलाब सिंह भंगी जिसने बाकी सरदारों को अपनी सहायता के लिए इकट्ठा किया था, एक दिन अधिक शराब पी लेने के कारण पल बसा जिससे सेना का साहस टूट गया और वह भसीन के मैदान से खिसक गई। रणजीत सिंह को इस युद्ध के लिए काफी धन खर्च करना पड़ा था इसलिए उसके कोष में कुछ भी न बचा था। आवश्यकता के इस समय में एक छिपा हुआ खजाना उसके हाथ लग गया, जिससे उसने अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर ली।

1. गुरबाह, भाग-5, पृष्ठ 23.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 43.

www.9009.co.in

जम्मू पर आक्रमण (1880 ई०)

भसीन के युद्ध से मुक्त होने के पश्चात् रणजीत सिंह ने जम्मू पर आक्रमण किया। जम्मू की ओर जाते हुए रास्ते में मीरोवाल पर अधिकार जमा लिया और नारोवाल से 8000 रुपये की भेंट स्वीकार की। इसी समय उसने जस्सोवाल के किले पर भी अधिकार कर लिया गया। जम्मू के शासक ने रणजीत सिंह का सामना करने में असमर्थ होने के कारण 20,000 रुपये भेंट किए। रणजीत सिंह ने जम्मू से लौटते समय स्यालकोट से भी नजराना वसूल किया।

गुजरात पर आक्रमण

रणजीत सिंह के लाहौर पर अधिकार कर लेने से भंगी सरदार बहुत क्रोधित थे। वे रणजीत सिंह से लड़ाई करने के अवसर की ताक में रहते थे और किसी न किसी प्रकार रणजीत सिंह की बढ़ रही शक्ति पर रोक लगाना चाहते थे। दूसरी ओर रणजीत सिंह लाहौर में हर प्रकार की सैन्य सामग्री एकत्रित कर रहा था। भंगी सरदार साहिब सिंह गुजराती और दल सिंह अकाल गढ़िया ने गुजरांवाला पर आक्रमण करने की तैयारियां शुरू कर दी थी। यह सूचना मिलने पर रणजीत सिंह ने अपनी सास सदा कौर और 10,000 सैनिकों को साथ लेकर गुजरात पर आक्रमण कर दिया। भंगी सरदार रणजीत सिंह का सामना करने की स्थिति में नहीं था। बाबा साहिब सिंह बेदी के हस्तक्षेप करने पर युद्ध बंद कर दिया गया।[1]

अकालगढ़ पर अधिकार (1801 ई०)

रणजीत सिंह के पिता सरदार महा सिंह ने अकाल गढ़ का क्षेत्र दल सिंह को दिया था, किन्तु दल सिंह रणजीत सिंह का विरोधी हो गया। रणजीत सिंह ने दल सिंह को लाहौर बुलवा कर नजरबंद कर दिया। बाद में सदा कौर और बाबा केसरा सिंह के कहने पर उसे छोड़ दिया गया। वापिस अकाल गढ़ पहुंचते ही दल सिंह की मृत्यु हो गई। रणजीत सिंह ने दल सिंह की विधवा को जागीर के रूप में दो गांव देकर अकाल गढ़ पर अधिकार कर लिया।

मुंशी यूसुफ अली खां की लाहौर-यात्रा

यूसुफ अली खां ईस्ट इंडिया कंपनी का एजेंट था जो सन् 1800 में कंपनी की ओर से महाराजा के दरबार में उपस्थित हुआ था। उसने दस हजार रुपये के उपहार रणजीत सिंह को भेंट किये थे। रणजीत सिंह ने यूसुफ अली को अत्यंत बहुमूल्य उपहार देकर विदा किया था। अंग्रेजों और रणजीत सिंह के बीच सद्भावना की अभिव्यक्ति के रूप में यूसुफ अली ने यह यात्रा की थी। भले ही

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 48-49; गणेशदास, पृष्ठ 143; पृष्ठ 118.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 48–49; गणेशदास, पृष्ठ 143; अमरनाथ, पृष्ठ 118

www.9009.co.in

इस यात्रा के पीछे एक राजनीतिक मनोरथ भी था किन्तु स्थितियां बदल जाने के कारण उन्हें गहन राजनीतिक मनोरथों के विषय में बातचीत करने की आवश्यकता नहीं हुई।

शहजादा खड़क सिंह का जन्म

22 फरवरी 1801 को रविवार के दिन रणजीत सिंह की रानी दातार कौर नकई ने खड़क सिंह को जन्म दिया। खड़क सिंह के जन्म की खुशी में चालीस दिन तक खुशियां मनाई गईं।

'सरकार-ए-वाला' का पद ग्रहण करना (12 अप्रैल, 1801 ई०)

12 अप्रैल, 1801 ई० को बैसाखी के दिन लाहौर में बड़ा भारी दरबार लगाया गया जिसमें बड़े-बड़े सरदारों और प्रसिद्ध नागरिकों ने भाग लिया। उस समारोह में बाबा साहिब सिंह बेदी ने रणजीत सिंह के मस्तक पर तिलक लगाया और उसने 'सरकार-ए-वाला' का पद ग्रहण किया। यह सम्भवत: पहला अवसर था जब किसी भी सिख शासक को इस प्रकार की उपाधि दी गई थी। इसी के साथ लोगों ने रणजीत सिंह को महाराजा कह कर संबोधित करना प्रारंभ कर दिया। इस पद से उसकी स्थिति काफी मजबूत हुई थी। इसी समय नानक शाही रुपये और नानक शाही पैसों के सिक्के भी चलाए गए।

कसूर का घेरा (1801 ई०)

पहले बताया जा चुका है कि कसूर का पठान शासक नवाब निजामुद्दीन लाहौर का राज सिंहासन प्राप्त करने का बहुत इच्छुक था। वह रणजीत सिंह से युद्ध करने के लिए अपनी सेना सहित भसीन के मैदान में भी उपस्थित हुआ था, और साहिब सिंह गुजराती को भी रणजीत सिंह के विरुद्ध भड़काता रहता था। रणजीत सिंह उसकी विरोधी कार्रवाइयों के लिए उसे सजा देना चाहता था। महाराजा ने सरदार फतेह सिंह कालियांवाला के नेतृत्व में एक भारी सेना कसूर के विरुद्ध भेजी। नवाब ने पराजित होकर संधि के लिए प्रार्थना की। उसने भारी तवाने-जंग भरा (युद्ध में हुई क्षति की पूर्ति) और वह महाराजा का अधीनस्थ सूबेदार बन गया। उसने अपने छोटे भाई कुतुबद्दीन को जमानत के रूप में लाहौर भेज दिया।[1]

कांगड़ा पर आक्रमण (1801 ई०)

कांगड़ा के राजा संसारचंद कटोच ने रानी सदा कौर के कुछ क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। खुशवंत राय के शब्दों में—"संसारचंद अक्सर अपशब्द बोलता रहता...। सिखों के बालों से मैं अपने घोड़ों के रस्से तैयार करवाऊंगा।" और सिख गुरुओं की शान में भी घटिया शब्दों का प्रयोग करता था।[2]

1. अमरनाथ, पृष्ठ 19.
2. खुशवंत राय तवारीख-ए-सिखां, पृष्ठ 144.

www.9009.co.in

संसारचंद मैदानी क्षेत्र में और आगे बढ़ना चाहता था। सदा कौर ने रणजीत सिंह को संसारचंद की कार्रवाइयों की सूचना दी। महाराजा ने 6000 सैनिक लेकर कांगड़ा पर धावा बोल दिया। संसारचंद भाग गया। सदा कौर के क्षेत्र उसे वापिस दिलवा दिए गये। संसारचंद से नूरपुर भी छीन लिया गया।

फतेह सिंह अहलूवालिया से पगड़ी बदलना (1802 ई०)

महाराजा जब तरनतारन के सरोवर में स्नान करने के लिए तरनतारन पहुंचे तो फतेह सिंह अहलूवालिया के साथ उनकी भेंट हुई। उन दोनों ने पवित्र गुरु ग्रंथ साहब की उपस्थिति में अपनी पगड़ियां बदलीं और सदा एक-दूसरे को भाई समझने का प्रण किया। इस मित्रता से रणजीत सिंह को अपनी विजयें प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली। फतेह सिंह ने अनेक वर्षों तक अपनी मित्रता निभाई और सदा ही अपने सैनिक साधनों को रणजीत सिंह के लिए तैयार रखा।

चिन्योट पर अधिकार (1802 ई०)

चिन्योट का क्षेत्र कर्म सिंह दुलू के पुत्र जस्सा सिंह के अधिकार में था। लोग उससे बहुत दुःखी थे। रणजीत सिंह ने चिन्योट के किले को दो महीने तक घेरे रखा और अंत में जस्सा सिंह ने किला खाली कर दिया। महाराजा ने जस्सा सिंह को उपयुक्त जागीर दे दी।

कसूर के निज़ामुद्दीन को सज़ा

कसूर के नवाब निज़ामुद्दीन ने महाराजा रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। लेकिन महाराजा के चिन्योट पर आक्रमण के समय वह विद्रोही हो गया। रणजीत सिंह और फतेह सिंह अहलूवालिया ने अपनी सेनाएं लेकर कसूर पर आक्रमण कर दिया। निज़ामुद्दीन ने पुनः उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर देने और वफादार रहने का वचन दिया।

मुलतान पर आक्रमण (1803 ई०)

रणजीत सिंह की सेना ने मुलतान पर आक्रमण किया लेकिन नज़राना लेकर सेना वापिस लाहौर आ गई। मुलतान की अनेक कार्रवाइयों के संबंध में अगले अध्याय में विवरण सहित विचार किया जाएगा।

अमृतसर पर अधिकार (1805 ई०)

अमृतसर सिखों का मक्का है और विश्व भर में उनका सबसे प्रसिद्ध स्थान है। जो भी सिखों का नेता या पंजाब का शासक होना चाहता था उसके लिए लाहौर के अतिरिक्त अमृतसर पर भी अधिकार प्राप्त करना आवश्यक था। रणजीत सिंह ने फरवरी, 1805 में अमृतसर पर अधिकार जमाने की योजना बनाई और कन्हैयों, नकइयों और अहलूवालियों को साथ लेकर अमृतसर पर

www.9009.co.in

आक्रमण किया। उस समय अमृतसर गुलाब सिंह भंगी की विधवा माई सुक्खों के अधिकार में था। बिना अधिक प्रतिरोध के ही माई सुक्खों ने अमृतसर रणजीत सिंह के सुपुर्द कर दिया। अमृतसर पर अधिकार हो जाने पर रणजीत सिंह की प्रसिद्धि को चार चांद लग गये। अमृतसर से उसे जमजमा तोप भी—जिसे तोप-ए-भंगियां भी कहा जाता है—हाथ लगी। रणजीत सिंह ने माई सुक्खों और उसके पुत्र गुरुदित्त सिंह को पांच या छह गांव जागीर के रूप में दिये।

तोप-ए-भंगियां

यह तोप एक प्रसिद्ध कारीगर शाहनज़ीर ने 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली के लिए तैयार की थी। यह पीतल और तांबे की बनी हुई थी। अहमद शाह अब्दाली यह तोप लाहौर के सूबेदार उबैद खां के अधिकार में छोड़ गया था। 1762 ई० में हरी सिंह भंगी और दूसरे सरदार यह तोप लाहौर से लूट कर ले गये थे। परन्तु यह फिर लाहौर पहुंच गई और 1764 ई० में लाहौर पर अधिकार करते समय लूट के माल के रूप में यह सरदार चढ़त सिंह के हिस्से में आई पर भंगियों ने इसे अपने पास से जाने नहीं दिया और बाद में यह अमृतसर पहुंच गई। जब रणजीत सिंह ने भंगियों से यह तोप मांगी तो उन्होंने इसे देने से इंकार कर दिया। यह बात रणजीत सिंह के लिए अमृतसर पर आक्रमण करने का एक बहाना बन गई। अमृतसर को जीत लेने के पश्चात् रणजीत सिंह इस तोप को लाहौर ले गया। डसका, कसूर, सुजानपुर, वजीराबाद और मुलतान आदि के युद्धों में इस तोप का उपयोग किया गया।

जसवंत राव होलकर का आगमन (1805 ई०)

सन् 1805 में जब रणजीत सिंह मुलतान की ओर जा रहा था तो उसे पता चला कि इंदौर का राजा जसवंत राव होलकर और अमीर खां रुहेला अंग्रेजों से पराजित होकर रणजीत सिंह से सहायता लेने के लिए अमृतसर आये थे। जनरल लेक होलकर का पीछा करते हुए पंजाब में प्रविष्ट हो गया था। अंग्रेजों के एक प्रतिनिधि ने महाराज से प्रार्थना की कि वह होलकर की सहायता न करें। जसवंत राव होलकर ने रणजीत सिंह से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता मांगी परन्तु रणजीत सिंह ने जसवंत राव को सलाह दी कि वह अंग्रेजों के साथ संधि कर ले। जनरल लेक से भी यही कहा गया कि वे दोनों आपस में युद्ध न करें और अंग्रेज होलकर का क्षेत्र वापिस कर दें। अंग्रेजों ने ऐसा ही किया।

मालवा के अभियान (1806-08 ई०)

सन् 1806 से 1808 तक रणजीत सिंह तीन बार मालवा में गया। इन अभियानों का विस्तृत विवरण 'रणजीत सिंह के अंग्रेजों के साथ संबंध' अध्याय में दिया गया है। यहां उन अभियानों का केवल उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा।

www.9009.co.in

1806 में पटियाला और नाभा के बीच दुलद्दी गांव को लेकर झगड़ा हो गया था। यह गांव नाभा शहर से डेढ़ मील की दूरी पर है। रणजीत सिंह को इस झगड़े में मध्यस्थ के रूप में आमंत्रित किया गया था। पटियाला जाते हुए उसने सतलुज नदी के पार रास्ते के कई गांवों पर अधिकार कर लिया। 1807 ई० में महाराजा को पटियाला के राजा साहिब सिंह और रानी आस कौर के आपसी झगड़े के संबंध में पटियाला जाना पड़ा था। इस बार भी उन्होंने कई क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। इसी इरादे से महाराजा ने सन् 1808 में भी सतलुज के पार क्षेत्रों का एक चक्कर लगाया और बहुत से गांव अपने अधिकार में कर लिये। अपने द्वारा अधिकृत सतलुज के पार के गांवों को महाराजा ने फतेह सिंह अहलूवालिया, माई सदा कौर और दीवान मोहकम चंद के बीच बांट दिया।

संसारचंद की सहायता (1807 ई०)

नेपाल के गोरखों ने समूचे हिमाचल प्रदेश पर अधिकार करने की योजना बनाई। सिरमौर, गढ़वाल और नालागढ़ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे अमर सिंह थापा की कमान में कांगड़ा की ओर बढ़े। कांगड़ा के राजा संसार चंद ने नेपालियों के विरुद्ध महाराजा की सहायता मांगी। महाराजा ने सहायता देने का वचन दिया। उधर अमर सिंह थापा के भेजे हुए दूत ने भी रणजीत सिंह से प्रार्थना की कि वे संसार चन्द की सहायता न करें। पर रणजीत सिंह ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। रणजीत सिंह की सेना का सामना करने में असमर्थ होने के कारण नेपाली लौट गये।

कसूर पर अधिकार (1807 ई०)

सन् 1807 में नवाब निजामुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई कुतुबुद्दीन कसूर का शासक बना। वह रणजीत सिंह के अधीन नहीं रहना चाहता था अतः उसने बगावत कर दी। रणजीत सिंह भी अपनी राजधानी के इतने समीप कोई स्वतंत्र राज्य नहीं रहने देना चाहता था। इसलिए उसने कसूर पर शीघ्रताशीघ्र अधिकार कर लेने की योजना बनाई और 10 फरवरी, 1807 को कसूर पर आक्रमण कर दिया। एक महीने तक कसूर पर घेरा पड़ा रहा। किले की बाहरी दीवारों के नीचे बारूद रख कर दीवारों को उड़ा दिया गया। नवाब को पकड़ कर महाराजा के सामने पेश किया गया। महाराजा ने बागी और हारे हुए नवाब के साथ राजाओं जैसा व्यवहार किया और उसे 1,00,000 रुपये वार्षिक की समदोट की जागीर प्रदान की।[1]

---

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 64; अमरनाथ, पृष्ठ 40.

www.9009.co.in

झंग पर अधिकार (1807 ई०)

झंग अहमद खां स्याल के अधिकार में था। सन् 1803 में महाराजा ने अहमद खां को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा पर उसने इन्कार कर दिया। अहमद खां पर आक्रमण करके उसे पराजित किया गया और उसने 60,000 रुपये वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। रणजीत सिंह ने 1805 ई० में पुन: झंग पर आक्रमण किया और वार्षिक कर बढ़ा कर दुगुना कर दिया गया। सन् 1807 में रणजीत सिंह को मालूम हुआ कि अहमद खां ने मुलतान के नवाब मुजफ्फर खां के साथ संधि कर ली है। महाराजा ने भारी सेना भेज कर झंग पर अधिकार कर लिया। अहमद खां को गुजारे के लिए एक जागीर दे दी गई।[1]

बहावलपुर और अखनूर का वर्चस्व स्वीकार करना (1807-1808 ई०)

सन् 1807 में लाहौर दरबार की ओर से सेना भेज कर बहावलपुर के नवाब बहावल खां को महाराजा की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया। उसने बाकायदा वार्षिक कर अदा करने का वचन दिया। सन् 1808 में अखनूर के हाकिम आलम सिंह ने भी महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली।

डल्लेवालिया मिसल पर अधिकार (1807 ई०)

सन् 1807 में डल्लेवालिया मिसल के सरदार तारा सिंह गैबा की मृत्यु हो गई। तारा सिंह रणजीत सिंह का समर्थक था। कुछ दिन पहले वह रणजीत सिंह के साथ पटियाला भी गया था। रणजीत सिंह तारा सिंह की मृत्यु पर दु:ख प्रकट करने के लिए राहों गया और उसकी विधवा को जागीर के रूप में कुछ गांव देकर डल्लेवालिया मिसल के समूचे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र पर अधिकार जमाने से रणजीत सिंह की वार्षिक आय में 7,00,000 रुपये की वृद्धि हुई।

कांगड़ा के किले पर अधिकार (1809 ई०)

कुछ समय से नेपाल का अमर सिंह थापा कांगड़ा के संसार चंद के विरुद्ध लड़ता चला आ रहा था। दीवान अमरनाथ के अनुसार संसार चंद के विरुद्ध लड़ाई में गोरखों ने 50,000 सैनिक लगा रखे थे। संसार चंद ने कांगड़ा का किला रणजीत सिंह को दे देने की शर्त पर उससे सैनिक सहायता मांगी। रणजीत सिंह भारी सेना लेकर कांगड़ा के समीप पहुंचा। गोरखे लाहौर की सेना के भय से वापिस चले गये और कांगड़ा का किला रणजीत सिंह को मिल गया। लाहौर दरबार की सेना 24 अगस्त, सन् 1809 को कांगड़ा के किले में प्रविष्ट हो गई।[2]

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 212.
2. वही, पृष्ठ 87.

www.9009.co.in

एक महीने के पश्चात् रणजीत ने कांगड़ा के किले में एक बड़ा भारी दरबार किया जिसमें कांगड़ा, चम्बा, नूरपुर, कोटला, शाहपुर, जसरोटा, बसोली, मानकोट, जसवां, गुलेर, मंडी, सुकेत, कुल्लू और दातारपुर के राजाओं ने भाग लिया। रणजीत सिंह ने देसा सिंह मजीठिया को किले का प्रबंधक और पहाड़ सिंह मान को उपप्रबंधक नियुक्त कर दिया। पहाड़ी राजाओं ने रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर लीया।

कांगड़ा से वापिस आते हुए रणजीत सिंह जिला होशियारपुर स्थित हरियाणा नामक नगर से गुजरा जो पहले करोड़सिंघिया मिसल के सरदार बघेल सिंह के पास था। कुछ दिन पूर्व बघेल सिंह की मृत्यु हो चुकी थी। महाराजा ने बघेल सिंह की विधवा को गुजारे के लिए कुछ जागीर देकर हरियाणा पर अधिकार कर ली।

गुजरात पर अधिकार (1810 ई०)

गुजरात पर साहिब सिंह भंगी राज्य करता था। भले ही उसने रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर रखी थी किन्तु अपने क्षेत्र में उसका बहुत प्रभाव और मेलजोल था। उसके पास बहुत सा धन और सैन्य-सामग्री थी। सन् 1810 में अपने पुत्र गुलाब सिंह के साथ उसके संबंध बिगड़ गये और उसने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध दो या तीन किलों पर अधिकार कर लिया। रणजीत सिंह ने इस स्थिति से लाभ उठा कर पूरे गुजरात पर अधिकार जमा लिया।

खुशाब और साहीवाल पर अधिकार (1810 ई०)

खुशाब और साहीवाल के क्षेत्र में बलोच कबीले रहते थे। उन्होंने अनेक स्थानों पर बहुत मजबूत किले बना रखे थे। लाहौर की सेना के खुशाब के समीप पहुंचने पर वहां के हाकिम जाफर खां बलोच ने शहर से बाहर भाग कर अपने क्षेत्र के एक मजबूत किले में जाकर शरण ली। लाहौर की सेना ने उस किले को घेर लिया और जाफर खां ने अधीनता स्वीकार कर ली। जाफर खां को खुशाब में ही रहने दिया गया और उसे गुजारे के लिए जागीर दे दी गई।[1]

साहीवाल का हाकिम फतेह खां एक बहुत अमीर व्यक्ति था। उसके अधिकार में लगभग 250 गांव और आधा दर्जन किले थे। महाराजा ने 10 फरवरी, 1810 ई० को साहीवाल के किले पर अधिकार कर लिया और वहां के हाकिम फतेह खां को पकड़ लिया। साहीवाल का क्षेत्र जागीर के रूप में खड़क सिंह को दे दिया गया।

जम्मू पर विजय (1810 ई०)

जम्मू का राज्य प्रबन्ध बहुत बुरी दशा में था और राजा का मुख्य प्रबंधक

1. मोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 98.

www.9009.co.in

मियां मोता काफी शक्तिशाली बन गया था। थोड़े से मुकाबले के बाद मियां ने जम्मू का राज्य महाराजा के सुपुर्द कर दिया।[1]

वजीराबाद पर अधिकार (1810 ई०)

वजीराबाद के शासक जोध सिंह की नवंबर, 1809 में मृत्यु हो गई। महाराजा ने जोध सिंह के पुत्र गण्डा सिंह को वजीराबाद की सरदारी प्रदान की। 1810 में गण्डा सिंह और उसके संबंधियों में झगड़ा हो गया, जिसके परिणाम-स्वरूप महाराजा ने वजीराबाद पर अधिकार कर लिया। वहां का प्रबंध करने के लिए पहले फकीर अजीजुद्दीन को और बाद नूरुद्दीन को भेजा गया।

फैजलपुरिया, नकइयों और कन्हैया के क्षेत्रों पर अधिकार (1810-11 ई०)

फैजलपुरिया मिसल का सरदार बुध सिंह रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। इस मिसल के इलाके सतलुज नदी के दोनों ओर स्थित थे। महाराजा ने बुध सिंह के विरुद्ध सैनिक कारवाई के लिए मोहकम चन्द को भेजा जिसने इस मिसल के क्षेत्रों पर सन् 1811 में अधिकार कर लिया।

नकइयों का क्षेत्र मुलतान और कसूर के बीच में था और वहां से 9,00000 रुपये की वार्षिक आय होती थी। नकइयों के राज्य में चूनियां, दीपालपुर, शकरपुर, सतगड़ा, कोटकमालिया और गुगेरा के नगर सम्मिलित थे। रणजीत सिंह ने नकइयों के विरुद्ध सैनिक कारवाई करके उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। नकई रणजीत सिंह के नजदीकी रिश्तेदार थे, किन्तु इस कार्य में रिश्तेदारी का लिहाज नहीं रखा गया। रणजीत सिंह की रानी दातार कौर नकई मिसल के सरदार ज्ञान सिंह की बहन थी जो खड़क सिंह की मां थी। जब नकई मिसल के दीवान हाकिमराय ने रणजीत सिंह से प्रार्थना की कि नकई शासक की अनुपस्थिति में उसकी मिसल पर अधिकार नहीं करना चाहिए तो रणजीत सिंह ने कहा—"मेरा इस विषय में कोई दखल नहीं है। कुंवर खड़क सिंह नकइयों का धेवता है। केवल वही जानता है कि इस विषय में क्या करना है।"

कन्हैया मिसल रणजीत सिंह की सास या गुरुबख्श सिंह की विधवा सदा कौर के हाथों में थी, किन्तु मुकेरियां के समीप हाजीपुर और सोहियां का क्षेत्र जय सिंह कन्हैया के दूसरे दो पुत्रों भाग सिंह और निधान सिंह के अधिकार में था। रणजीत सिंह ने भाग सिंह और निधान सिंह के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया और उन्हें गुजारे के लिए जागीरें दे दीं।

---

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 92.

www.9009.co.in

1821 के पश्चात् सदा कौर के क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया गया। हम पीछे देख चुके हैं कि रणजीत सिंह पराजित सरदारों के साथ बहुत विनम्र व्यवहार करता था और उनके गुजारे के लिए काफी बड़ी जागीरें भी दिया करता था। रणजीत सिंह के जीवन को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं: पहला भाग सन् 1799 से 1809 तक, दूसरा 1809 से 1822 तक और तीसरा भाग 1823 से 1839 तक। रणजीत सिंह ने अपने जीवन के पहले भाग में बहुत सारी मिसलों के सरदारों को अपने अधीन कर लिया। अपने जीवन के दूसरे काल में उसने मुलतान और कश्मीर पर विजय प्राप्त की और तीसरे भाग में पेशावर की वादी पर अपना सम्पूर्ण अधिकार जमा लिया। इस प्रकार चार दशकों में रणजीत सिंह एक छोटे सरदार से ऊपर उठ कर एक बड़े साम्राज्य का स्वामी बन गया। बहुत से छोटे-छोटे सिख और गैर सिख शासकों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। उसका राज्य उत्तर-पूर्व में हिमालय से लेकर दक्षिण-पश्चिम में सिंध के रेगिस्तान तक और दक्षिण-पूर्व में सतलुज से लेकर दक्षिण-पश्चिम में सिंध नदी तक फैला हुआ था। अनंग पाल के पश्चात् रणजीत सिंह पहला शासक था जिसने न केवल उत्तर-पश्चिम से लगातार भारत में प्रवेश करने वाले आक्रमणकारियों को पंजाब में दाखिल होने से रोका अपितु काबुल की सीमा तक अपने राज्य को विस्तृत भी किया।

रणजीत सिंह की पंजाब के एकीकरण की नीति की आलोचना की गई है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सही नहीं है। रणजीत सिंह ने छोटे राज्यों को एकत्रित करके पंजाब का एक शक्तिशाली राज्य स्थापित किया जिस प्रकार जर्मनी के सम्राट फ्रैड्रिक महान् ने जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों को एकत्रित करके एक महान् राज्य स्थापित किया था उस प्रकार रणजीत सिंह ने छोटे-छोटे भागों में बंटे हुए पंजाब को एक झण्डे के नीचे इकट्ठा करके पंजाब में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित किया था। रणजीत सिंह ने अपनी इस नीति के संबंध में एक बार स्वयं ही कहा था, "मेरा राज्य एक महान् राज्य है। पहले यह छोटा-सा राज्य था, अब यह बहुत बड़ा है। पहले यह टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा था पर अब यह एकजुट है। इस राज्य की खुशहाली में वृद्धि होगी और मैं यह निष्कंटक राज्य अपने उत्तराधिकारियों को सौंपूंगा। मैंने बहुत बुद्धिमत्ता, राजनीति और शूरवीरता से यह बड़ा राज्य स्थापित किया है और दयालुता, अनुशासन व राजनीति के साथ अपने शासन की नींव पक्की की है।"[1]

अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक कुछ वर्षों में पंजाब की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए उसे इकट्ठा करने की बहुत

1. Lawrence, H.M.L., Adventures of an officer in the Punjab, vol. I, p. 64-65.

www.9009.co.in

आवश्यकता थी। ये छोटे-छोटे राज्य अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ नहीं था। यदि इन्हें एकीकृत न किया जाता तो उत्तर-पश्चिम से सदैव की भाँति आक्रमणकारियों की सेनाएं निरंतर पंजाब में आती रहतीं और यहां की सुख शांति को भंग करती रहतीं। रणजीत सिंह ने पंजाब का शक्तिशाली राज्य स्थापित करके पंजाब की महान् सेवा की। उसकी यह नीति उसके राजनीतिक स्वार्थ की नहीं अपितु दूरदर्शिता की सूचक है।

रणजीत सिंह की बहुत सारी पत्नियां थीं जिनके साथ उसने 'आनंद कार्य', चादर डलवाने या ऐसे ही अन्य ढंगों से विवाह किये थे। उसके अनेक पुत्र पैदा हुए थे।

रणजीत सिंह की पत्नियां

1. महारानी मेहताब कौर जो सरदार गुरबख्श सिंह कन्हैया और रानी सदाकौर की पुत्री थी, जिसके साथ रणजीत सिंह का सन् 1796 में विवाह हुआ था। वह ईशर सिंह, शेर सिंह और तारा सिंह की मां थी। उसकी मृत्यु 1813 ई० में हुई थी।

2. रानी राज कौर जिसे दातार कौर भी कहते थे और जो माई नकैण के नाम से भी प्रसिद्ध थी। वह रुण सिंह नकई की पुत्री और ज्ञान सिंह नकई की बहन थी। इसका विवाह 1798 में हुआ था और यह महाराजा खड़क सिंह की मां थी।

3. रानी रूपकौर जिला अमृतसर के गांव कोट सईद महमूद के नंबरदार जय सिंह की पुत्री थी। रणजीत सिंह के साथ उसका विवाह 1815 में हुआ था।

4. रानी लक्ष्मी का विवाह 1820 में हुआ था। वह देसा सिंह वड्डा-परगा की बेटी थी जो गुजरांवाला के ग्राम जोगकी खां का संधू जाट था।

5. रानी मेहताब देवी जिसे रानी कटोच या गद्दन भी कहते थे, कांगड़ा के राजा संसार चंद कटोच की बेटी थी। महाराजा के साथ उसका विवाह 1829 में हुआ था। वह सन् 1839 में महाराजा की मृत्यु के समय उसके साथ ही सती हो गई थी।

6. रानी राजबंसो मेहताब देवी की बहिन और राजा संसार चंद की दूसरी बेटी थी। उसका विवाह भी 1829 में हुआ था और 1835 में उसकी मृत्यु हो गई थी।

7. रानी राजदेवी मियां पदम सिंह की बेटी थी। वह भी 1839 में महाराजा के साथ ही सती हो गई थी।

8. रानी दयनोदेवी बटाला के चिब्ब खत्री सनद भारी की बेटी थी। 1839 में महाराजा के साथ ही वह भी सती हो गई थी।

www.9009.co.in

9. रानी हर देवी जिला गुरदासपुर के अटल गढ़ के चौधरी राम सालेरिया राजपूत की बेटी थी। वह भी 1839 में महाराजा के साथ ही सती हो गई थी।

10. रानी रामदेवी जिला गुजरांवाला के ग्राम छछरीवाला के कौर सिंह की बेटी थी। उसकी महाराजा के जीवन काल में ही मृत्यु हो गई थी।

11. रानी देवी जिला होशियारपुर में जसवां ग्राम के वजीर नकूदा की बेटी थी।

12. रानी मोरां विवाह से पूर्व लाहौर की एक मुसलमान नर्तकी थी। सन् 1802 में उसका महाराजा के साथ विवाह हुआ। वह एक यात्रा में महाराजा के साथ हरिद्वार भी गई थी।

13. रानी गुलबहार बेगम विवाह से पूर्व अमृतसर में रहती थी। महाराजा ने 1833 में उससे विवाह किया। 1863 में उसकी मृत्यु हो गई।

14. रानी रतन कौर गुजरात के साहिब सिंह भंगी की विधवा थी। साहिब सिंह की मृत्यु के बाद रणजीत सिंह ने 1811 में उसे अपने हरम में प्रविष्ट कर लिया। उसने कुंअर मुलताना सिंह को जन्म दिया था।

15. रानी दया कौर भी गुजरात के साहिब सिंह भंगी की विधवा थी। उसे भी रणजीत सिंह ने अपने हरम में शामिल किया और उसने दो पुत्रों — कश्मीरा सिंह और पिशौरा सिंह को जन्म दिया। उसकी सन् 1843 में मृत्यु हो गई थी।

16. रानी चंदकौर जिला अमृतसर के ग्राम चैनपुर के एक जाट हर्षसिंह की पुत्री थी। 1815 में उसका महाराजा के साथ विवाह हुआ और 1840 में उसकी मृत्यु हो गई।

17. रानी मेहताब कौर जिला गुरदासपुर के ग्राम मल्ला के जाट सुजान सिंह की बेटी थी। महाराजा के साथ उसका विवाह 1822 में हुआ था।

18. रानी समणकौर मालवा क्षेत्र के एक जाट सूबा सिंह की बेटी थी। महाराजा ने उसके साथ 1832 में विवाह किया था।

19. रानी गुलाब कौर जिला अमृतसर के ग्राम जगदेवों के एक जाट की बेटी थी। उसकी मृत्यु सन् 1838 में हुई थी।

20. रानी जिन्द कौर जो रानी जिन्दां के नाम से प्रसिद्ध है सरदार मन्ना सिंह औलख की बेटी थी। 1835 में उसका महाराजा के साथ विवाह हुआ और 1863 में उसकी मृत्यु हुई थी। वह महाराजा दिलीप सिंह की मां थी।

महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र

महाराजा रणजीत सिंह के आठ पुत्र थे।

1. खड़क सिंह जो महाराजा का सबसे बड़ा पुत्र था, 1802 में रानी

www.9009.co.in

राजकौर से पैदा हुआ था। वह 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् लाहौर की गद्दी पर बैठा और 6 नवंबर, 1840 को उसकी मृत्यु हो गई।

2. शेर सिंह 1807 में रानी मेहताब कौर से बटाले में पैदा हुआ था। वह 1841 में खड़क सिंह की मृत्यु के पश्चात् लाहौर राज्य का महाराजा बना। 15 सितंबर 1843 को अजीत सिंह संधावालिया ने उसे गोली मार दी थी।

3. तारा सिंह भी 1807 में ही रानी मेहताब कौर से पैदा हुआ था। वह शेर सिंह का जुड़वां भाई था और अधिक समय शेर सिंह के साथ ही रहा। सितंबर 1859 में जिला होशियारपुर में दसूहा नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हुई।

4. ईशर सिंह सन् 1804 में रानी मेहताब कौर से पैदा हुआ और डेढ़ वर्ष की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई।

5. पिशौरा सिंह रानी दया कौर से पैदा हुआ था। अगस्त 1844 को रानी जिन्दां के भाई जवाहर सिंह, जो लाहौर दरबार में प्रधानमंत्री था, की आज्ञा से फतेह खां टिवाणा और सरदार चतर सिंह के हाथों अटक में मारा गया था।

6. कश्मीरा सिंह भी रानी दया कौर की कोख से पैदा हुआ था। महाराजा खड़क सिंह की मृत्यु के पश्चात् वह नौरंगाबाद के संत बाबा बीर सिंह के पास चला गया था, जहां जुलाई 1843 को लाहौर की सेना के द्वारा उसे कत्ल कर दिया गया था।

7. मुलताना सिंह 1819 में रतन कौर से पैदा हुआ। जिला अमृतसर के अजनाला परगने में विनैकी नामक स्थान पर उसे जागीर मिली हुई थी। 1846 में उसकी मृत्यु हो गई। उसके तीन पुत्र थे : किशन सिंह, केसर सिंह और अर्जुन सिंह।

8. दिलीप सिंह 6 सितंबर 1838 को रानी जिन्दां से पैदा हुआ था। महाराजा शेर सिंह की मृत्यु के पश्चात् 15 सितंबर 1843 को उसे महाराजा बनाया गया। अंग्रेजों और सिखों के दूसरे युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने 29 मार्च 1849 को उसे गद्दी से उतार दिया। फरवरी, 1850 में दिलीप सिंह को उत्तर प्रदेश में फतेह गढ़ नामक स्थान पर भेज दिया गया। 8 मार्च, 1853 को उसे ईसाई बनाया गया और 1854 में इंगलैंड पहुंचा दिया गया। दिलीप सिंह जनवरी, 1861 को अपनी मां रानी जिन्दां से मिलने के लिए भारत आया और वापिस जाते हुए उसे अपने साथ ही ले गया। रानी जिन्दां 46 साल की आयु में पहली अगस्त 1863 को स्वर्ग सिधार गई। जून 1864 में दिलीप सिंह ने एक जर्मन व्यापारी की बेटी बेबी मुलर से विवाह कर लिया जिससे दिलीप सिंह

www.9009.co.in

के तीन लड़के और तीन लड़कियाँ पैदा हुईं। दिलीप सिंह की पत्नी की 1887 में मृत्यु हो गई। 1889 में उसने पैरिस में ऐडा डगलस बैंदर हिल के साथ विवाह कर लिया। जिससे दो लड़कियां पैदा हुईं। 22 अक्तूबर, 1893 को पैरिस में ही दिलीप सिंह की मृत्यु हो गई।

www.9009.co.in

तृतीय अध्याय

मुलतान, कश्मीर, अटक, और पेशावर पर विजय

राज्यसत्ता संभालने के समय से ही रणजीत सिंह को उत्तर-पश्चिमी सीमांत विशेष रूप से अफगानिस्तान—से अपने राज्य को बचाने की समस्या ने चिन्तातुर कर रखा था। 1809 की अमृतसर की सन्धि के परिणामस्वरूप रणजीत सिंह सतलुज नदी से पूर्व की ओर अपने राज्य का विस्तार नहीं कर सकता था। वह अपने राज्य को बढ़ाने के लिए हिमाचल की पहाड़ियों, जम्मू और कश्मीर के क्षेत्र व पंजाब के उत्तर-पश्चिमी या दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों की ओर ही बढ़ सकता था। लेकिन काबुल के वजीर फतेह खां की दिन-प्रति-दिन बढ़ रही शक्ति महाराजा के लिए भारी खतरा पैदा कर रही थी। काबुल का वजीर पेशावर, अटक, डेराजात, मुलतान और कश्मीर को जो कभी अफगानिस्तान का भाग थे और अब अफगानिस्तान से लगभग स्वतंत्र थे फिर से अफगानिस्तान के अधीन करना चाहता था। पंजाब में बहुत से मुस्लिम राज्य भी थे जो रणजीत सिंह का प्रभुत्व मानने की बजाय अफगानिस्तान से जुड़ना पसंद करते थे। ऐसी स्थिति में यदि वजीर फतेह खां इन सभी क्षेत्रों को काबुल के साथ जोड़ने में सफल हो जाता तो वह रणजीत सिंह के राज्य के लिए एक महान् खतरा बन सकता था। इसलिए रणजीत सिंह इन सभी क्षेत्रों को अपने अधीन करना चाहता था जो कि बहुत कठिन कार्य था किन्तु महाराजा ने धीरे-धीरे इस कार्य में सफलता प्राप्त कर ली।

मुलतान पर विजय

मुलतान का प्रांत कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण था। रणजीत सिंह इस प्रान्त के राजनैतिक और व्यापारिक महत्व के कारण इस पर अधिकार करना चाहता था। यह कन्धार को जाने वाली सड़क पर स्थित था और भटिंडा के द्वारा दिल्ली से जुड़ा हुआ था। मुलतान भारत और मध्य एशिया के बीच एक बहुत महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। मुलतान का प्रान्त सन् 1752 तक मुगल साम्राज्य का भाग बना रहा। इसके बाद यह अफगानिस्तान के अधीन हो गया। 1772 से 1779 तक यह भंगी सरदारों के अधिकार में रहा। 1779 में अफगानिस्तान के शासक तैमूर शाह ने मुलतान पर अधिकार कर लिया और मुजफ्फर खां को वहां का सूबेदार नियुक्त कर दिया। मुजफ्फर खां शीघ्र ही अफगानिस्तान से स्वतंत्र हो गया।

www.9009.co.in

रणजीत सिंह का राज्य छोटे-छोटे मुसलमान राज्यों से घिरा हुआ था। मुलतान पर विजय प्राप्त करके रणजीत सिंह बहावलपुर और डेरा गाजी खां की रियासतों को एक दूसरे से अलग कर सकता था और इन मुसलमान राज्यों के संयुक्त मोर्चे को समाप्त कर सकता था। आर्थिक दृष्टि से भी मुलतान का प्रांत रणजीत सिंह के लिए बहुत लाभदायक था। रणजीत सिंह ने मुलतान पर विजय पाने के लिए पन्द्रह वर्ष की अवधि में सात आक्रमण किये।

प्रथम आक्रमण (1803 ई०)

कांगड़ा और कसूर के युद्धों से कुछ समय पूर्व ही लौटने के कारण रणजीत सिंह के सैनिक कुछ थके हुए थे किन्तु महाराजा ने मुजफ्फर खां पर तुरन्त आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। दीवान अमरनाथ के अनुसार मुलतान का सूबेदार मुजफ्फर खां रणजीत सिंह के विरुद्ध बगावत की योजनाएं बनाए बैठा था। इस कारण रणजीत सिंह ने अपनी सेना को उसके विरुद्ध सैनिक कारवाई करने का आदेश दे दिया। मुजफ्फर खां लाहौर की सेना के आने की सूचना पाकर भय-भीत हो गया और उसने महाराजा से मिलने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजे जो मुलतान से पच्चीस कोस की दूरी पर उससे मिले। रणजीत सिंह को कुछ नजराना दिया गया और वह वापिस लाहौर चला गया।[1] सोहनलाल सूरी, अलाउद्दीन मुफ्ती और बूटे शाह जैसे समकालीन लेखकों के अनुसार मुजफ्फर खां और रणजीत सिंह की सेना में घमासान युद्ध हुआ था। सिख सैनिक मुलतान में प्रविष्ट हो गये थे और भेंट स्वीकार करके वापिस लौट गये थे। रणजीत सिंह को धन की आवश्यकता थी और वह अपने राज्य काल के प्रारम्भ में ही अपनी सैनिक शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहता था। अलाउद्दीन मुफ्ती के अनुसार रणजीत सिंह को 50,000 रुपये और दस घोड़े भेंट के रूप में मिले थे।[2]

दूसरा आक्रमण (1805 ई०)

लाहौर राज्य की सेना ने 1805 में वर्षा ऋतु के पश्चात मुलतान पर दूसरी बार आक्रमण किया। महाराजा ने मुलतान से पंद्रह मील की दूरी पर मुहतम गांव के समीप डेरा लगाया। रणजीत सिंह ने मुजफ्फर खां के पास अपना दूत भेजा और नजराने की मांग की। उसी समय इंदौर का मराठा शासक जसवंत राव होलकर अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता लेने के लिए रणजीत सिंह के राज्य में प्रविष्ट हुआ। महाराजा मुलतान के शासक से भारी भेंट लेकर वापिस लौट गया।

1. अमरनाथ, पृष्ठ 22-23.
2. अलाउद्दीन मुफ्ती, भाग-1, पृष्ठ 407.

www.9009.co.in

तीसरा आक्रमण (1807 ई०)

कुछ समय से मुलतान का शासक मुजफ्फर खां कसूर के शासक निजामुद्दीन की गुप्त सहायता कर रहा था। उसने अहमद खां स्याल को भी अपने पास शरण दी थी जो लाहौर की सेना से पराजित होकर मुलतान भाग गया था। रणजीत सिंह मुजफ्फर खां को इस गद्दारी और बेईमानी के लिए सजा देना चाहता था। लाहौर की सेना ने मुलतान शहर के बाहर कुछ इमारतों को हानि पहुंचाई। मुजफ्फर खां ने रणजीत सिंह का मुकाबला करने के लिए बहावलपुर के नवाब से सहायता मांगी। बहावलपुर के नवाब ने किसी प्रकार की सैनिक सहायता करने की बजाए अपने राजदूत मुंशी धनपत राय को रणजीत सिंह के पास भेजा और सन्धि के लिए प्रार्थना की।[1] मुजफ्फर खां ने महाराजा को 70,000 रुपये की भारी रकम भेंट में दी और महाराजा की सेना वापिस लाहौर लौट गई।

चौथा आक्रमण (1810 ई०)

रणजीत सिंह ने फतेह सिंह अहलूवालिया और अन्य कई सरदारों को अपनी सेनाओं सहित मुलतान के विरुद्ध आक्रमण में सम्मिलित होने के लिए संदेश भेजे। 20 फरवरी, 1810 ई० को लाहौर दरबार की सेना मुलतान के लिए रवाना हुई और अगले तीन-चार दिनों में मुलतान के समीप जा पहुंची। रणजीत सिंह ने व्यक्तिगत तौर पर अपनी सेना की तैयारी की देख भाल की। इस युद्ध में विशेष कारनामे दिखाने वाले सरदारों को बड़े-बड़े पुरस्कार देने के वायदे किये। मुलतान के किले की दीवारों को तोड़ने के लिए लाहौर से प्रसिद्ध जमजमा तोप भी साथ ले जाई गई। 25 फरवरी, 1810 ई० को सिक्ख सेना मुलतान में प्रविष्ट हो गई और उसने किले को घेर लिया, जो शहर के अन्दर था। किले की पश्चिमी दीवार के नीचे सुरंग भी खोदी गई जिसमें बारूद भर कर आग लगा दी गई। इसके फटने से अतर सिंह घाटी, निहाल सिंह अटारी वाला और उनके कई साथियों की मृत्यु हो गई[2]। काफी दिनों तक घेरा पड़ा रहा। सिख सेना को किला जीतने में बहुत कठिनाई हो रही थी। दूसरी ओर नवाब मुजफ्फर खां ने बहुत परेशान होकर सन्धि के लिए सफेद झंडा लहरा दिया और अमरनाथ के अनुसार लड़ाई के खर्चे के रूप में एक लाख अस्सी हजार रुपया देना स्वीकार कर लिया[3]। लेपल ग्रिफन के अनुसार मुजफ्फर खां ने सहायता के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल के साथ भी बातचीत की, पर अंग्रेजों ने इस मामले में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। रणजीत सिंह भेंट लेकर वापिस लाहौर आ गया।

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 65.
2. सोहन लाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 99, अमरनाथ पृष्ठ 55.
3. अमरनाथ, पृष्ठ 55.

www.9009.co.in

पांचवां आक्रमण (1816 ई०)

1816 में मिसर दीवान चन्द ने महाराजा की आज्ञानुसार भारी सेना लेकर मुलतान पर आक्रमण किया। अकाली फूला सिंह भी अपनी निहंग सेना लेकर लाहौर की सेना में सम्मिलित हुआ। नवाब मुज़फ्फर खां ने लाहौर की सेना को 80,000 रुपये भेंट किये और अगले दो महीने में और धन देने का वचन दिया। सिक्ख सेना वापिस लाहौर आ गई।

छठा आक्रमण (1817 ई०)

नवाब की ओर से नजराने की कुछ रकम की अदायगी रुकी हुई थी जिसे वसूल करने के लिए सेना भेजी गई। अमरनाथ के अनुसार यह आक्रमण सफल न हो सका क्योंकि सेनापति भवानीदास ने मुलतान के नवाब से 10,000 रुपये रिश्वत ले ली थी[1] और बिना कोई कारवाई किए लाहौर वापिस चला आया था।

अंतिम आक्रमण और मुलतान पर अधिकार (1818 ई०)

इस बार महाराजा ने मुलतान पर अधिकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। महाराजा के प्रसिद्ध सेनापति दीवान मोहकम चन्द की अक्तूबर, 1814 में मृत्यु हो चुकी थी। अतः मिसर दीवान चन्द को इस अंतिम आक्रमण की कमान सौंपी गई, परन्तु कुछ सरदारों ने इस नियुक्ति पर अप्रसन्नता व्यक्त की। इस पर महाराजा ने कुंवर खड़क सिंह को अभियान का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त कर दिया। किन्तु सारी सैनिक कारवाई मिसर दीवान चन्द के हाथों में ही रखी गई। महाराजा ने सारी तैयारी की निगरानी अपने हाथों में रखी। सैन्य सामग्री मुलतान तक पहुंचाने के विशेष प्रबंधों के लिए समीपस्थ परगनों के कर्मचारियों को हिदायतें भेजी गईं कि वे खाने-पीने की सामग्री और आवश्यक सिक्का-बारूद मुलतान तक पहुंचाने का प्रबंध करें। 'तोप-भगिया' भी मुलतान पहुंचाई गई।

संक्षिप्त लड़ाई के पश्चात् ही लाहौर की सेना ने नवाब मुज़फ्फर खां के खानगढ़ और मुज़फ्फर गढ़ के किलों पर अधिकार करने के बाद मुलतान को घेर लिया। मुलतान के नवाब ने अपनी स्थिति को बचाने के लिए तीन पड़ावों में अपनी सुरक्षा की कारवाईयां कीं। सबसे पहले उसने लाहौर की सेना को मुलतान नगर के बाहर रोकने का प्रबंध किया। दूसरी कारवाई के रूप में शहर के अन्दर लाहौर की सेना के साथ सामना करने का प्रबंध किया और तीसरी कारवाई के रूप में किले के अंदर से अपने बचाव के लिए आवश्यक प्रबंध किये। मुज़फ्फर खां ने जेहाद (धर्मयुद्ध) का नारा लगाया जिससे प्रायः 20,000 गाज़ी उसके पास इकट्ठे हो गये। कई दिनों तक सिक्ख सेना मुलतान नगर के अंदर प्रविष्ट

1. अमरनाथ, पृष्ठ 102.

www.9009.co.in

होने के लिए लड़ती रही। इसके पश्चात् किले पर विजय प्राप्त करने का यत्न किया गया। नवाब ने भयभीत होकर संधि के लिये बातचीत करने का निश्चय किया। उसने अपने दूत के द्वारा कुंवर खड़क सिंह को 2,00,000 रुपये भेंट देने का प्रस्ताव रखा और वह अपने पुत्र सहित 300 घुड़सवारों को महाराजा की सेवा में लाहौर भेजने को भी तैयार था। पर महाराजा ने अपने इस निर्णय से मुजफ्फर खां को अवगत करवा दिया कि वे इस बार किले पर अवश्य ही अधिकार करेंगे और यदि नवाब स्वयं ही किला खाली कर दे तो उसके रहने के लिए शुजाहबाद का किला और भारी जागीर दे दी जाएगी। मुजफ्फर खां ने महाराजा की शर्तों को स्वीकार कर लिया और समझौते को अंतिम रूप देने के लिए अपने प्रतिनिधि को कुंवर खड़क सिंह के पास भेजा। मुजफ्फर खां समझौते पर हस्ताक्षर करने ही वाला था कि उसने अपने सैनिकों के दबाव के कारण समझौते को रद्द कर दिया और किला खाली करने से इन्कार कर दिया। युद्ध पुनः भड़क उठा। अकाली नेता साधु सिंह के नेतृत्व में निहंगों ने भी इस युद्ध में भाग लिया। अंत में नवाब मुजफ्फर खां अपने दो बेटों हक निवाज खां और शाह निवाज खां सहित लड़ते हुए मारा गया। कई लेखक भूल से नवाब मुजफ्फर खां के पांच पुत्रों के मारे जाने का उल्लेख करते हैं। नवाब के दो पुत्र सरफराज खां और जुलफिकार खां जीवित ही पकड़े गये थे। महाराजा ने अपने सैनिकों को मुलतान शहर या किले में लूटमार करने से बहुत कड़ाई से मना कर दिया था। ऐलान कर दिया गया था कि किले के अंदर का सारा सामान और धन-दौलत लाहौर सरकार की है। किले के अन्दर से बहुत सारी सोने की मोहरें, हीरे, जवाहरात, तलवारें, राइफलें आदि प्राप्त हुई थीं। ये सभी वस्तुएं लाहौर लेजा कर तोशेखाने में रखी गईं। मुलतान से लाहौर को कई मूल्यवान घोड़े, ऊंट और बड़ी मात्रा में तोपें भी हाथ लगी थीं।

रणजीत सिंह ने शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये 600 घुड़सवारों को मुलतान में ही रुके रहने की आज्ञा दी। मुलतान के राज्य-प्रबंध की निगरानी के लिए महाराजा ने दल सिंह नहेरना, जोध सिंह कलसिया और देवा सिंह दोआबिया को नियुक्त किया। विजय के पश्चात् लाहौर लौटने पर मिसर दीवान चन्द को 'जफर जंग बहादुर' की उपाधि दी गई और नवाब के कैद किये गये दो बेटों को शकरपुर में जागीर प्रदान की गई। महाराजा ने दीवान सुखदयाल को मुलतान का प्रथम सूबेदार नियुक्त किया।

मुलतान की इस विजय के कई महत्वपूर्ण परिणाम निकले। इस विजय के साथ महाराजा के मान-सम्मान में अत्यधिक वृद्धि हुई जिससे एक विजेता के रूप में महाराजा रणजीत सिंह बहुत प्रसिद्ध हो गया। दूसरे, इस विजय से बहावलपुर

www.9009.co.in

और डेरा गाजी खां में सीधा संपर्क टूट गया जिससे रणजीत सिंह के राज्य के इर्द गिर्द जो मुस्लिम राज्यों का एक घेरा-सा बना हुआ था, वह भी टूट गया। इस विजय ने बहावलपुर को सिंध से अलग कर दिया। मुलतान की विजय से अफगानों की सैनिक शक्ति और दबदबे को एक भारी चोट पहुंची। इस विजय के फलस्वरूप ही बहावलपुर और डेरा जात महाराजा का वर्चस्व स्वीकार करने के लिए विवश हो गए। इस विजय से रणजीत सिंह को आर्थिक दृष्टि से भी बहुत लाभ हुआ और इस प्रांत से कम से कम 7,00,000 रुपये की वार्षिक आय होने लगी। मुलतान भारत और मध्य एशियाई देशों के बीच एक बहुत शक्तिशाली व्यापारिक केन्द्र था और यह कन्धार से दिल्ली जाने वाली सड़क पर स्थित था। इसलिए व्यापारिक और सैनिक दृष्टि से मुलतान की विजय लाहौर दरबार के लिए अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुई। इस विजय से सिख सैनिकों का हौसला भी बहुत बढ़ गया और कश्मीर की विजय का कार्य जो कई वर्षों से खटाई में पड़ा हुआ था, अगले वर्ष ही अर्थात् सन् 1819 में निपटा लिया गया और कश्मीर भी लाहौर राज्य का भाग बन गया।

कश्मीर पर विजय

कश्मीर का प्रदेश बहुत समय तक हिन्दू शासकों के अंतर्गत रहा था। बाद में इस पर मुगलों ने अधिकार कर लिया और उसके बाद यह अफगानों के हाथ में आ गया। काबुल के शासकों में कई वर्षों तक आपसी झगड़े होने के कारण कश्मीर का सूबेदार अता मोहम्मद खां काबुल सरकार से स्वतन्त्र हो गया। 1809 में शाह शुजा को गद्दी से उतार कर और शाह महमूद को पुन: गद्दी पर आसीन करवा कर काबुल के वजीर फतेह खां ने अफगानिस्तान में स्थिति को सामान्य बनाने के यत्न प्रारंभ कर दिये। जो क्षेत्र या शासक अफगानिस्तान से पृथक हो गये थे, उन्हें पुन: काबुल के अंतर्गत लाने का बीड़ा उठाया गया। सूबेदार अता मोहम्मद खां को निकाल कर कश्मीर को पुन: अफगानिस्तान का अभिन्न भाग बनाने के लिए फतेह खां ने महाराजा रणजीत सिंह से सैनिक सहायता की मांग की जिससे रणजीत सिंह और फतेह खां के मध्य गठजोड़ हो गया।

फतेह खां और महाराजा के बीच गठजोड़

1809 में नीमला के युद्ध में पराजित होकर शाहशुजा पंजाब की ओर आया। फरवरी, 1810 को खुशाब नामक स्थान पर महाराजा रणजीत सिंह और शाहशुजा की भेंट हुई। महाराजा ने शाह शुजा को सुझाव दिया कि यदि वे दोनों मिल कर मुजफ्फर खां से मुलतान जीत लें तो वह मुलतान को शाह शुजा के सुपुर्द कर देगा। पर शाह शुजा को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। शुजा की शंका उचित भी थी। यदि वे दोनों मिल कर मुलतान पर विजय प्राप्त

www.9009.co.in

करते तो रणजीत सिंह अपना भारी नुक्सान करवा कर मुलतान को शुजा के सुपुर्द क्यों करता ? बाद में शाह शुजा अटक की ओर चला गया। वहां के सूबेदार जहांदाद खां और कश्मीर के सूबेदार अता मोहम्मद की सहायता से उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया और कुछ ही समय बाद शाह शुजा अपने भाई शाहमुहम्मद को काबुल के तख्त से उतार कर स्वयं वहां का बन बादशाह बैठा था। परन्तु चार महीने के पश्चात् शाह शुजा को काबुल में से निकाल दिया गया और शाह महमूद पुनः काबुल का बादशाह बन गया।

शाह शुजा भाग गया। अटक के सूबेदार जहांदाद खां ने यह समझा कि शुजा चोरी-चोरी काबुल के वजीर फतेह खां के साथ सांठ-गांठ करने का यत्न कर रहा है। इसलिए उसने शुजा को बंदी बना कर अपने भाई अता मोहम्मद के पास कश्मीर भिजवा दिया। काबुल का पिछला बादशाह शाहजमान जिसे अंधा कर दिया गया था, शाह शुजा की पत्नी वफ़ाबेगम के साथ लाहौर पहुंच गया जहां महाराजा ने उनके रहन-सहन का बढ़िया प्रबंध कर दिया।

काबुल की दुर्रानी सरकार काफी कमजोर हो चुकी थी। शाह महमूद और उसका वजीर फतेह खां अपने देश को फिर से अपने पांव पर खड़ा करना चाहते थे। पहली कारवाई के रूप में उन्होंने अटक के सूबेदार जहांदाद खां और उसके भाई और कश्मीर के सूबेदार अता मोहम्मद खां को अटक और कश्मीर से निकाल देने का फैसला किया। कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए अफगान सेना का अकेले जाना फतेह खां को खतरनाक प्रतीत हुआ। इसलिए उसने महाराजा रणजीत सिंह की ओर से सैनिक सहायता की आवश्यकता अनुभव की हालांकि फतेह खां को रणजीत सिंह और अता मोहम्मद खां के मध्य किसी गुप्त सांठगांठ का भी भय था। रणजीत सिंह भी कश्मीर के पहाड़ी प्रदेश के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता था। फतेह खां ने अपने एक विश्वसनीय वकील गोदड़मल को दिसम्बर, 1811 में रणजीत सिंह से मिलने के लिए लाहौर भेजा। नवंबर, 1812 में रोहतास नामक स्थान पर रणजीत सिंह और फतेह खां की भेंट हुई। इस भेंट के समय फतेह खां के सारे के सारे (18) भाई भी रोहतास में आये हुए थे और वे फतेह खां से भेंट के समय रणजीत सिंह को कत्ल कर देने की आज्ञा मांग रहे थे, परन्तु फतेह खां इस पर रजामन्द नहीं हुआ क्योंकि इससे लाहौर दरबार और अफगानिस्तान के संबंध गंभीर रूप से बिगड़ सकते थे। रणजीत सिंह और फतेह खां के बीच यह निर्णय हुआ कि लाहौर दरबार 12,000 सेना भेजेगा और कश्मीर से लौटने पर अफगान सेना मुलतान पर अधिकार करने में रणजीत सिंह की सहायता करेगी और कश्मीर की लूटपाट में से नौ लाख रुपया लाहौर दरबार को मिलेगा। यह भी कहा गया है कि कश्मीर की विजय के

www.9009.co.in

पश्चात् कश्मीर का एक तिहाई क्षेत्र लाहौर दरबार को देने का वायदा भी किया गया था।

जब शाह शुजा की पत्नी वफा बेगम को कश्मीर के इस अभियान का पता चला तो वह बहुत भयभीत हुई। उसे भय था कि फतेह खां कश्मीर में एक बंदी के रूप में रह रहे उसके पति शाह शुजा को मौत के घाट उतार देगा। इसलिए उसने फकीर अजीजुद्दीन और दीवान भवानी दास के द्वारा रणजीत सिंह से प्रार्थना की कि यदि सिख सेना उनके पति को अता मोहम्मद से मुक्त करवा कर सही-सलामत लाहौर ले आए तो वह महाराजा को कोहेनूर हीरा भेंट कर देगी।[1] रणजीत सिंह ने सिख सेना के सेनापति मोहकम चन्द को विशेष निर्देश दिया कि वह शाह शुजा को हर हालत में बचा कर अपने साथ लाहौर ले आये। सिक्ख सेना में मोहकम चन्द के अतिरिक्त सरदार दल सिंह, जीवन सिंह पिंडी वाला और जसरोटा, बसोली व नूरपुर के राजा भी सम्मिलित हुए थे।

सिख और अफगान सेना का कश्मीर पर संयुक्त आक्रमण (1813 ई०)

सिख और अफगान सेनाओं ने दिसंबर 1812 में जेहलम नदी पार की और भिम्बर, राजौरी और पीर पंजाल के रास्ते कश्मीर की घाटी में प्रविष्ट हो गई। अफगान सेना सिख सेना से आठ-दस मील आगे थी। अफगानों को पहाड़ी क्षेत्र में चलने का अभ्यास था, इसलिए वे जल्दी-जल्दी आगे बढ़ते गये। कश्मीर के गवर्नर अता मोहम्मद खां ने अपने किले शेरगढ़ के समीप इस सेना का सामना करने की कोशिश की पर वह असफल रहा। सिख और अफगान सेना ने शेरगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया और किले के अंदर से बहुत सारी सामग्री इनके हाथ लगी। शाह शुजा भी दीवान मोहकम चंद के हाथ आ गया। काबुल का वजीर फतेह खां शाह शुजा को अपने अधिकार में लेना चाहता था, पर मोहकम चन्द इसके लिए राजी नहीं हुआ। फतेह खां और मोहकम चन्द के बीच कुछ तकरार के बाद मोहकम चन्द शाह शुजा को साथ लेकर बहुत तेजी से फासला तय करते हुए लाहौर आ पहुंचा। दीवान अमरनाथ की मान्यता है कि रणजीत सिंह ने प्रकटत: तो फतेह खां की सहायता के लिए मोहकम चन्द को कश्मीर भेजा था किन्तु वास्तव में वह शाह शुजा को लेने गया था। शाह शुजा के वापिस लाहौर पहुंचने पर उसका यथोचित स्वागत किया गया। वफा बेगम के वादे के अनुसार रणजीत सिंह ने फकीर अजीजुद्दीन और भाई राम सिंह को कोहेनूर हीरा लेने के लिए वफा बेगम के पास भेजा। पर वफा बेगम और उसका पति शाह शुजा हीरा देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने महाराजा के पास संदेश भिजवाया कि उन्होंने कोहेनूर हीरा कन्धार में छह करोड़ रुपये में

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 131, अमरनाथ, पृष्ठ 71.

www.9009.co.in

गिरवी रखा है।[1] भाई राम सिंह ने कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग भी किया और तीन लाख रुपये नकद और 50,000 रुपये की वार्षिक जागीर देने का भी प्रस्ताव रखा। शाह शुजा ने हीरा देने के लिए कुछ मोहलत मांगी। मोहलत का समय बीतने के पश्चात् महाराजा के आदेशानुसार भाई गुरुबख्श सिंह और जमादार खुशहाल सिंह 31 मई 1813 को शाह शुजा के पास गये और हीरे की मांग की। शाह शुजा ने कहा कि महाराजा स्वयं आकर हीरा ले जायें। महाराजा के आने पर हीरा उन्हें सौंप दिया गया। सोहनलाल सूरी के अनुसार इस हीरे का वजन 42 माशे था। कुछ लेखक भूलवश लिखते हैं कि रणजीत सिंह ने शाह शुजा और वफा बेगम को डरा धमका कर यह हीरा ले लिया था। सच बात तो यह है कि वफा बेगम ने महाराजा से प्रार्थना की थी कि शाह शुजा को कश्मीर से सही सलामत ले आने पर वह कोहेनूर हीरा उनके सुपुर्द कर देगी। इस बात की पुष्टि समकालीन लेखकों, सोहनलाल सूरी और दीवान अमरनाथ ने अपने लेखों में की है। निस्संदेह, शाह शुजा के टालमटोल करने पर उसके निवास स्थान पर पहरा लगा दिया गया था और लोगों के अंदर आने-जाने की मनाही कर दी गई थी ताकि वह हीरे को इधर-उधर न खिसका दे या स्वयं ही लाहौर से न भाग जाये। इस घटना के एक वर्ष के पश्चात् तक शाह शुजा और उसका परिवार लाहौर में ही टिके रहे और बाद में भेष बदल कर सतलुज नदी पार करके अंग्रेजों की शरण में चले गये। शाह शुजा ईस्ट इंडिया कंपनी के पेंशनधारी के रूप में 1838 तक सतलुज के पार के क्षेत्र में टिका रहा। अंग्रेजों की सहायता से वह सन् 1839 में काबुल का बादशाह बन गया। पर अगले वर्ष ही उसे कत्ल कर दिया गया। सन् 1813 में फतेह खां की ओर से लाहौर दरबार को कुछ नहीं मिला था। फतेह खां के कार्यक्रम के अनुसार कश्मीर में अता मोहम्मद को हराने के बाद अटक में उसके भाई जहांदाद खां की बारी थी। वह फतेह खां से डर कर रणजीत सिंह से मिल गया। उसने अटक का किला रणजीत सिंह के सुपुर्द कर दिया। इसके बदले में रणजीत सिंह ने उसके गुजारे के लिए एक बड़ी जागीर दे दी।

कश्मीर पर दूसरा आक्रमण (1814 ई०)

सन् 1813 में अटक के किले पर कब्जा करने के पश्चात् रणजीत सिंह ने कश्मीर के विरुद्ध आक्रमण करने का निर्णय किया। लाहौर दरबार की सेना अलग-अलग हिस्सों में बंट गई। निहाल सिंह अटारीवाला, देवा सिंह मजीठिया, दीवान रामदयाल, हरी सिंह नलुआ और भैया राम सिंह अलग-अलग भागों के नेता थे पर तभी महाराजा रणजीत सिंह को सूचना मिली कि काबुल का वजीर

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृ० 140.

www.9009.co.in

फतेह खां डेराजात और मुलतान पर विजय प्राप्त करने के लिए तैयारियां कर रहा है। इस स्थिति को देखते हुए रणजीत सिंह ने कश्मीर के विरुद्ध भारी सैनिक कारवाई को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया। परन्तु बाईस वर्षीय युवक रामदयाल को जो दीवान मोहकम चन्द का पोता था सेना देकर कश्मीर के रास्तों की जानकारी प्राप्त करने के लिए रवाना किया। 1814 ई० में रणजीत सिंह ने कश्मीर के लिए कुछ और सेना भी तैयार की। महाराजा ने अपने कुछ अधीनस्थ शासकों को अपनी-अपनी सेना लेकर कश्मीर की ओर जाने वाली सेना की सहायता करने का आदेश दिया। लाहौर दरबार की सेना 11 जून, 1814 को राजौरी पहुंची। कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई सेना की कुल संख्या लगभग तीस हजार थी। इसके सेनापतियों में दीवान राम दयाल, सरदार दल सिंह, तोपखाने का दारोगा गौस खां, सरदार हरी सिंह नलुआ और मित सिंह भडाणियां शामिल थे। आक्रमण की निगरानी के लिए और अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाने के लिए कुछ सेना लेकर रणजीत सिंह भी कश्मीर की ओर रवाना हुआ। राजौरी के अगर खां ने जान-बूझ कर रणजीत सिंह को गलत रास्ते पर डाल दिया जिसके कारण उन्हें बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। रामदयाल और उसके साथी सरदारों ने बहराम गले पर अधिकार कर लिया। आगे चल कर 24 जून, 1814 को रामदयाल का मुकाबला कश्मीर के सूबेदार अजीम खां की सेना के साथ हुआ। इस लड़ाई के समय तेज बारिश के कारण राम दयाल को पीछे से आवश्यक सहायता न मिल सकी।

राम दयाल की सेना ने बहुत बहादुरी के साथ अजीम खां की सेना का सामना किया। दीवान अमर नाथ के अनुसार 2,000 अफगान रामदयाल की सेना के विरुद्ध लड़ते हुए हताहत हुए।[1] अजीम खां ने राम दयाल की बहादुरी से प्रभावित होकर उसके साथ संधि करने के उद्देश्य से महाराजा के लिए अनेक उपहार भिजवाये और रामदयाल को महाराजा के राज्य का शुभचिंतक होने का भरपूर विश्वास दिलाया।[2] बिसप की यह मान्यता ठीक नहीं है कि राम दयाल को—जो इस लड़ाई के समय अजीम खां के हाथ आ गया, अजीम खां ने इसलिए छोड़ दिया और लाहौर वापिस चले जाने दिया क्योंकि वह राम दयाल के दादा मोहकम चन्द की बहादुरी की बहुत कद्र करता था। रणजीत सिंह के अपनी सेना सहित वापिस लाहौर चले जाने के पश्चात् राम दयाल अपनी स्थिति को अधिक मजबूत नहीं समझता था। इसलिए दोनों पक्षों में युद्ध बंद करने के लिए समझौता हो गया। इस आक्रमण के पश्चात् अगले पांच वर्षों तक रणजीत सिंह मुलतान के विरुद्ध व्यस्त होने कारण कश्मीर की ओर ध्यान नहीं दे सका।

1. अमरनाथ, पृष्ठ 189.
2. वही, पृष्ठ 184.

www.9009.co.in

कश्मीर पर तृतीय और अंतिम आक्रमण (1819 ई०)

सन् 1816 से 1818 तक लाहौर दरबार की सेना मुलतान के विरुद्ध व्यस्त थी। इसलिए कश्मीर के विरुद्ध की जाने वाली कारवाई को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया गया था। 1818 ई० में काबुल के वज़ीर फतेह खां की हत्या हो गयी और उसका स्थान ग्रहण करने के लिए उसका भाई कश्मीर से काबुल चला गया। वह अपनी बढ़िया सेना को भी अपने साथ काबुल ले गया। उसके स्थान पर एक अयोग्य व्यक्ति जब्बार खां को कश्मीर के मामलों की देख-रेख के लिए नियुक्त किया गया। मई 1819 को लाहौर दरबार की भारी सेना वजीराबाद में एकत्रित हुई। इस सेना को तीन भागों मे बांटा गया। एक भाग का नेतृत्व मिसर दीवान चंद व शाम सिंह अटारीवाला के सुपुर्द किया गया। दूसरे भाग की कमान कुंवर खड़क सिंह को दी गई और सेना के तीसरे भाग को सुरक्षित सेना के रूप में वजीराबाद में ही रखने का निश्चय किया गया। अभियान के नेतृत्व व निगरानी के लिए महाराजा स्वयं भी वजीराबाद में उपस्थित था। कश्मीर के इस युद्ध की समूची कमान कुंवर खड़क सिंह के सुपुर्द की गई। रणजीत सिंह ने भिवर के राजा सुलतान खां को बंदीगृह से मुक्त करके सेना के साथ कश्मीर भेजा। उसने इस आक्रमण में अत्यन्त लाभदायक सेवा की। राजौरी का राजा अगर खां लाहौर दरबार के साथ अपने समझौते का उल्लंघन कर भाग गया और उसका भाई रहीमुल्ला खां महाराजा के सामने उपस्थित हुआ। महाराजा ने उसे राजौरी का शासक नियुक्त कर दिया और राजा की उपाधि प्रदान की[1]।"

पुंछ के शासक जबर्दस्त खां ने लाहौर दरबार की सेना को आगे बढ़ने से रोका पर शीघ्र ही उसे हथियार डाल देने के लिए विवश होना पड़ा। कश्मीर का सूबेदार जब्बार खां 12,000 घुड़सवार और पैदल सैनिक लेकर सिक्ख सेना का सामना करने के लिए आया। इस युद्ध में फूला सिंह के नेतृत्व में निहंग सेना ने भी भाग लिया। जब्बार खां घायल होकर पेशावर की ओर भाग गया। लाहौर दरबार की सेना 4 जुलाई 1819 को श्रीनगर में प्रविष्ट हुई। सिक्ख फौज के सेनापतियों ने ज़ोरदार शब्दों में ऐलान किया कि सैनिक-नगर के निवासियों को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचायें और नगर में पूर्णतया शांति रखी जाये। वहां के निवासियों ने अफगान शासकों के हाथों अत्यन्त कष्ट सहे थे और अब सिक्ख सेना के अधिकार कर लेने के पश्चात् लोगों को सुख की सांस लेने का अवसर मिला था। अलग-अलग स्थानों का प्रबंध करने के लिए अलग-अलग लोगों की नियुक्ति की गई और मोती राम को कश्मीर का प्रथम सूबेदार

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 254, अमरनाथ, पृष्ठ 120.

www.9009.co.in

नियुक्त किया गया। 20,000 सैनिक कश्मीर में रखे गये। बाद में हरी सिंह नलुआ, दीवान कृपाराम, कुंवर शेर सिंह और मीहां सिंह आदि बारी-बारी से कश्मीर में सूबेदार के पद पर कार्य करते रहे।

कश्मीर की विजय से रणजीत सिंह के राज्य का बहुत विस्तार हुआ और लेह, लासा और करा कोरम के पर्वतों के पार तक महाराजा की सत्ता की धाक जम गई। यह विजय व्यापारिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। श्रीनगर शालों के उद्योग का मुख्य केन्द्र था। कश्मीरी शालें, केशर और फल पंजाब में आकर बिकते थे। कश्मीर से रणजीत सिंह को छत्तीस लाख रुपये की वार्षिक आय होती रही। कश्मीर पर लाहौर राज्य के अधिकार के परिणाम-स्वरूप अफगानों को सैनिक व आर्थिक दृष्टि से बहुत हानि हुई।

अटक पर विजय

अटक पंजाब के उत्तर-पश्चिम की ओर सिन्ध नदी के किनारे स्थित है। कई शताब्दियों से अफगानिस्तान की ओर से आने वाले आक्रमणकारी अटक से नदी पार करके पंजाब में आते रहे थे। कश्मीर पर रणजीत सिंह के पहले आक्रमण के समय जहांदाद खां अटक का सूबेदार था। यह कश्मीर के सूबेदार अता मोहम्मद का भाई था। अटक और कश्मीर के सूबेदार अफगानिस्तान की सरकार से स्वतंत्र हो गये थे, पर अफगानिस्तान की सरकार अपने इन क्षेत्रों को पुन: अपने वर्चस्व में लाना चाहती थी। जब फतेह खां सेना लेकर अता मोहम्मद के विरुद्ध कश्मीर की ओर गया तो जहांदाद खां को महसूस हुआ कि वहां से लौटते समय काबुल की सेना अटक पर आक्रमण करके उसे बंदी बना लेगी। इसलिए जहांदाद खां ने इसी में अपना बचाव समझा कि एक जागीर के बदले में अटक का किला रणजीत सिंह के सुपुर्द कर दे।

अटक पर अधिकार (1813 ई०)

जहांदाद खां ने फतेह खां की ओर से खतरा अनुभव करते हुए रणजीत सिंह के साथ सांठगांठ कर ली। जहांदाद खां ने एक लाख रुपया वार्षिक जागीर के बदले में अटक का किला रणजीत सिंह को सौंप दिया। रणजीत सिंह के लिए यह एक लाभदायक सौदा था, किन्तु अफगानिस्तान की सरकार अटक पर रणजीत सिंह का अधिकार स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हो सकती थी। रणजीत सिंह की इस कारवाई के कारण ही फतेह खां ने कश्मीर की विजय और लूट में से कुछ भी देने से इन्कार कर दिया।

हजरो की लड़ाई (1813 ई०)

अटक के किले को सदा से ही भारत प्रवेश द्वार समझा जाता रहा है। अफगान सरकार ने एक भारी सैनिक कारवाई करके अटक के किले पर पुन:

www.9009.co.in

अधिकार करने का दृढ़ निश्चय किया। काबुल के वज़ीर फतेह खां ने छच्छ और हज़ारे के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध जिहाद करने का आदेश दिया। दूसरी ओर रणजीत सिंह ने अटक के किले में आवश्यक युद्ध-सामग्री व रसद एकत्रित कर ली। उसने हरी सिंह नलुआ, दीवान मोहकमचन्द और जोध सिंह रामगढ़िया जैसे प्रसिद्ध सेनापतियों के नेतृत्व में सेना को अटक की ओर भेजा। अटक से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर हज़रो नामक स्थान पर 26 जून 1813 को एक घमासान युद्ध हुआ। इसे छच्छ की लड़ाई भी कहा जाता है। प्रारंभ में अफगानों का पलड़ा भारी था। पर बाद में सिख सैनिकों ने युद्ध का नक्शा ही उलट दिया। इस युद्ध में लगभग दो हज़ार अफगान सैनिक मारे गए। फतेह खां व दोस्त मोहम्मद युद्ध भूमि से भाग गये। यह निर्णयात्मक युद्ध था जिसके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले। अटक पर महाराजा रणजीत सिंह का पक्का अधिकार हो गया। खुशवंत सिंह के शब्दों में, "परंपरानुसार अटक के किले को भारत का पहरेदार माना जाता था। 1000 ई० में महमूद गज़नवी ने राजा जयपाल से अटक छीन लिया था। तभी से यह आक्रमणकारियों के हाथों में ही रहा था। इस पर पुन: अधिकार हो जाने से उत्तरी भारत को अफगानों के खतरे से मुक्ति मिल गई।"[1]

हज़रो या छच्छ की लड़ाई अफगानों और सिखों के बीच पहला घमासान युद्ध था जिसमें महाराजा की विजय हुई और जिसके परिणामस्वरूप महाराजा के मान-सम्मान में बहुत वृद्धि हुई। पठानों के अजेय सैनिक होने का भ्रम टूट गया और सिखों के हौसले बहुत बढ़ गए। अफगानों की इस पराजय के साथ उनकी सैनिक शक्ति के पतन की शुरुआत हो गयी। यदि इस युद्ध में सिख पराजित हो जाते तो यह पंजाब में एक महान् परिवर्तन लाने वाला युद्ध सिद्ध होता।

डेराजात पर विजय

डेरा गाज़ी खां पर अधिकार (1820 ई०)

1820 ई० में महाराजा रणजीत सिंह ने सिन्ध नदी के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों को जीतने का निश्चय किया। डेरा गाज़ी खां का हाकिम जमान खां लगभग स्वतंत्र था और नाममात्र के लिए ही काबुल सरकार का वर्चस्व स्वीकार करता था। जमादार खुशहाल सिंह को सेना देकर जमान खां के विरुद्ध भेजा गया। सिख सेना ने डेरा गाज़ी खां पर अधिकार कर लिया। महाराजा ने यह क्षेत्र बहावलपुर के नवाब को सौंप दिया और उससे वार्षिक कर प्राप्त करना स्वीकार कर लिया।

1. खुशवन्त सिंह, रणजीत सिंह: पृष्ठ 115.

www.9009.co.in

डेरा इस्माइल खां और मनकेरा पर अधिकार (1821 ई०)

इन क्षेत्रों पर अहमद खां का राज्य था। कुछ समय पहले अहमद खां ने महाराजा को 70,000 रुपये भेंट किये थे। इस हाकिम के विरुद्ध लड़ने के लिए महाराजा ने मिसर दीवान चन्द को सेना की कमान देकर भेजा। नवाब अहमद खां ने शीघ्र ही हथियार डाल दिये और महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। मनकेरा के क्षेत्र को महाराजा ने अपने अधिकार में कर लिया पर डेरा इस्माइल खां को अहमद खां के पास ही रहने दिया। डा० सिन्हा के अनुसार मनकेरा की विजय से उन सभी क्षेत्रों के लिए सिन्ध सीमा को सुरक्षित किया गया जिन पर महाराजा का सीधा अधिकार था।

पेशावर पर विजय

प्रथम आक्रमण (1818 ई०)

महाराजा ने यह अनुभव कर लिया था कि जब तक वह पेशावर को अपने अधिकार में नहीं ले लेता तब तक उत्तर-पश्चिमी सीमा पर शांति स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए रणजीत सिंह पेशावर पर आक्रमण करने के अवसर की ताक में था। काबुल के बादशाह शाह मोहम्मद के पुत्र कामरान और वजीर फतेह खां के मध्य झगड़ा हो गया जिसके कारण सन् 1818 में कामरान ने वजीर को कत्ल करवा दिया। रणजीत सिंह ने इसे उपयुक्त अवसर समझ कर अपनी सेना को अटक की ओर जाने का आदेश दिया। वह सेना रोहतास, रावलपिंडी और हसन अब्दाल से निकल कर अटक की ओर बढ़ी जिससे खटक पठानों को बहुत गुस्सा आया और उन्होंने 7000 सैनिक इकट्ठे करके सिखों पर आक्रमण कर दिया जिसमें कई सिख सैनिक कत्ल कर दिये गये। रणजीत सिंह ने स्वयं सेना लेकर चढ़ी हुई अटक नदी को पार किया। बहुत सारे पठान कत्ल कर दिये गये और जो बाकी बचे उन्होंने संधि के लिए सफेद झण्डा फहराया। अकाली फूला सिंह इस युद्ध में बहुत ही बहादुरी से लड़ा।

दूसरा आक्रमण (1819 ई०)

सिख सेना के पेशावर से वापिस आने के पश्चात् यार मोहम्मद खां ने पेशावर पर पुनः आक्रमण कर दिया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। इस घटना की सूचना मिलने पर महाराजा ने कुंवर खड़क सिंह और मिसर दीवान चन्द के नेतृत्व में 12000 सैनिकों की भारी सेना को पेशावर की ओर रवाना किया। काबुल के दोस्त मोहम्मद खां ने अपने एक वकील के द्वारा महाराजा को संदेश भिजवाया कि यदि वे पेशावर को उसके सुपुर्द कर दें तो वह लाहौर सरकार को एक लाख रुपया वार्षिक कर देगा।[1] महाराजा ने दोस्त

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 239.

www.9009.co.in

मोहम्मद खां के अनुरोध को स्वीकार करके पेशावर को अफगानों के पास ही रहने दिया।

तीसरा आक्रमण, नौशहरे की लड़ाई (1823 ई०)

जैसा कि ऊपर बताया गया है पेशावर के यार मोहम्मद ने एक भारी कर अदा करना स्वीकार कर लिया था। पर यार मोहम्मद के भाई अजीम खां को जो काबुल का वजीर था, यह बात पसंद नहीं आई। अजीम खां रणजीत सिंह के कश्मीर और अटक पर अधिकार जमा लेने से अत्यंत क्रोधित था। वह महाराजा के साथ एक निर्णयात्मक युद्ध करना चाहता था। महाराजा ने दिसम्बर 1822 में यार मोहम्मद से कर मांगा। यार मोहम्मद ने उपहार के रूप में कुछ अच्छे घोड़े लाहौर दरबार को भेजे। यार मोहम्मद का भाई मोहम्मद खां एक भारी सेना लेकर पेशावर की ओर आया। यार मोहम्मद ने पेशावर खाली कर दिया। क्योंकि वह अपने आपको अफगान सेना का सामना करने में समर्थ नहीं समझता था। वह पहाड़ों में जा छिपा। पेशावर पर काबुल की सेना का अधिकार हो गया और सिखों के विरुद्ध जिहाद की एक लहर-सी चल पड़ी। ऐसी स्थिति देख कर रणजीत सिंह ने शेर सिंह और दीवान कृपा राम के नेतृत्व में अफगानों का मुकाबला करने के लिए एक सेना भेजी और कुमुक पहुंचाने के लिए हरी सिंह नलुआ को आदेश दिया गया। महाराजा, अकाली फूला सिंह, देसा सिंह मजीठिया और फतेह सिंह अहलूवालिया को साथ लेकर स्वयं अटक के समीप पहुंचे। इसी समय एक संक्षिप्त-सी लड़ाई के पश्चात् कुंवर शेर सिंह और हरी सिंह नलुआ ने जहांगीरा के किले पर अधिकार कर लिया। अफगान जहांगीरा का किला छोड़ कर भाग गये। अहमद शाह बटालिया के अनुसार अफगान इतने डरे हुए थे कि वे सिखों के साथ युद्ध नहीं करना चाहते थे। मोहम्मद अजीम खां जो अभी पेशावर में ही टिका हुआ था जहांगीरा पर सिख सेना के अधिकार की सूचना पाकर अत्यंत परेशान हुआ। जिहादियों की भारी सेना मोहम्मद खां और जब्बार खां के नेतृत्व में सिखों के विरुद्ध रवाना हुई। जहांगीरा के समीप बहुत रक्तरंजित युद्ध हुआ। महाराजा के सैनिक घोड़ों पर चढ़ कर या तैर कर नदी पार कर गये। सिख सेना को देख कर पठान भाग खड़े हुए। जयसिंह अटारी वाला जो 1821 में महाराजा से अलग हो कर भाग गया था, पुनः उनकी शरण में आ गया और उसने इस आक्रमण में भाग लिया। अफगान सेना ने स्वयं को पुनः एकजुट होकर सिखों का सामना करने की तैयारी की। सिखों ने भी अपनी सेना को अलग-अलग भागों में बांट लिया और एक गहन युद्ध नीति के अनुसार पठानों का सामना किया। 14 मार्च 1823 को अटक और पेशावर के मध्य नौशहरे का ऐतिहासिक युद्ध हुआ जिस में व्यापक रक्तपात हुआ।

www.9009.co.in

इसे टिब्बी-टेहरी की लड़ाई भी कहते हैं । इसमें दोनों ओर की सेना की संख्या प्राय: बीस-बीस हज़ार थी । जब घमासान युद्ध हो रहा था तो महाराजा रणजीत सिंह एक ऊंची-सी जगह पर खड़े होकर इस युद्ध की निगरानी कर रहे थे। अकाली फूला सिंह, गरभा सिंह, करम सिंह चाहल, बलभद्र और अन्य कई प्रसिद्ध सैनिक इस युद्ध में काम आए जिससे रणजीत सिंह को हार्दिक दु:ख हुआ । एक बार तो रणजीत सिंह स्वयं इस घमासान युद्ध में आ धमके जिससे उस के सैनिकों के हौसले और भी बुलंद हो गये । अजीम खां और उसके साथी हिम्मत हार बैठे और मैदान से भाग खड़े हुए । इस युद्ध में बहुत-सी युद्ध-सामग्री सिखों के हाथ लगी और 17 मार्च 1824 ई० को महाराजा रणजीत सिंह पेशावर नगर में प्रविष्ट हुए । महाराजा ने एक आम ऐलान के द्वारा नगर को पूरी तरह सुरक्षित रखने का आदेश दिया और उसे लूटने की सख्त मनाही की[1] । कुछ दिनों के पश्चात यार मोहम्मद खां महाराजा से मिला और प्रार्थना की कि पेशावर उसके सुपुर्द कर दिया जाए और वह महाराजा की इच्छानुसार कर देता रहेगा । एक लाख रुपये वार्षिक कर निर्धारित करके यार मोहम्मद को पेशावर का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया । महाराजा 27 अप्रैल 1824 को लाहौर वापिस आ गये ।

सैयद अहमद खां के विरुद्ध आक्रमण (1822-31 ई०)

1827 ई० में पेशावर से खबर आई कि सैयद अहमद खां नामक एक व्यक्ति ने पेशावर से अगले क्षेत्र में जिहाद छेड़ा हुआ है । सैयद अहमद खां का पहला नाम मीर अहमद था और वह बरेली का निवासी था । प्रारम्भ में वह अमीर खां रुहेला की सेना में नौकर था और बाद में वहाबी मत का धार्मिक नेता बन गया । बहुत सारे लोग उसके अनुयायी बन गए जिनमें कई प्रसिद्ध विद्वान भी थे । वह शिकारपुर के मार्ग से काबुल पहुंचा और उसने आसपास के क्षेत्र में मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध धर्मयुद्ध के लिए भड़काना प्रारम्भ कर दिया । रणजीत सिंह ने संधांवालिये सरदारों की कमान में अहमद के विरुद्ध सेना भेजी । लाहौर दरबार की सेना ने खलीफा के लगभग 6000 अनुयायियों को मौत के घाट उतार दिया । खलीफा ने 40,000 गाज़ियों को एकत्र करके पेशावर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया । यार मोहम्मद युद्ध में मारा गया और उसका तोपखाना सैयद अहमद के हाथ आ गया । पेशावर में सैयद अहमद और उसके गाज़ियों की कुछ कारवाइयों से मुसलमान भी उनके विरोधी हो गये । सैयद अहमद ने एक फतवा जारी किया जिसके द्वारा पेशावर के पूरे क्षेत्र में सभी मुसलमान विधवा औरतों को विवाह कर लेने का आदेश दिया गया

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृ० 205. अमरनाथ, पृ० 155. बूटेशाह, भाग-5 पृ० 202.

www.9009.co.in

और इस आज्ञा का पालन न करने की स्थिति में उनके घरों को आग लगा देने की धमकी दी गई। कुछ दिन बाद कुंआरी लड़कियों से सम्बन्धित एक और फतवा जारी किया गया जिसके अनुसार उन्हें बारह दिन के अन्दर-अन्दर विवाह कर लेने का आदेश दिया गया और ऐसा न करने पर लड़कियों को गाजियों के सुपुर्द कर देने का भय दिखाया गया। ऐसे फतवों से सैयद अहमद और उसके गाजी मुसलमानों की हमदर्दी गंवा बैठे। सैयद अहमद के पेशावर पर अधिकार कर लेने से महाराजा अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने कुंवर शेरसिंह और जरनैल वैनतूरा को पेशावर पर अधिकार करने का आदेश दिया। हरीसिंह, शाम सिंह निहंग, अतर सिंह कालियां वाला आदि को कुमुक पहुंचाने के लिए आज्ञा जारी हुई। पेशावर में एक घमासान युद्ध के पश्चात सैयद अहमद और उसके साथी पेशावर छोड़ कर भाग गये। महाराजा ने यार मोहम्मद के भाई सुलतान मोहम्मद खां को पेशावर का सूबेदार नियुक्त किया। पेशावर से सिख सेना के वापिस लौटने पर खलीफा ने मई, 1831 में वहां फिर से अत्याचार शुरू कर दिये। खलीफा और उसका सलाहकार मौलवी इस्माईल सिखों के साथ एक झड़प में मारे गये। दीवान अमरनाथ के अनुसार कुंवर शेर सिंह ने खलीफा की लाश अपने सामने मंगवा कर उसका चित्र बनवा कर महाराजा को भिजवाया। महाराजा ने अपने बहादुर शत्रु की अत्यंत प्रशंसा की[1]।

पेशावर को लाहौर राज्य में सम्मिलित करना (1834 ई०)

जनवरी 1834 में शाहशुजा काबुल के हाकिम दोस्त मोहम्मद से पराजित होकर भारत की ओर भाग आया। महाराजा को पेशावर के सूबेदार सुलतान मोहम्मद की ओर से शक हो रहा था कि वह कहीं काबुल के साथ न मिल जाय और इस प्रकार यदि पेशावर दोस्त मोहम्मद के हाथों में चला गया जो दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली हो रहा था तो उसे पुनः प्राप्त कर पाना कठिन होगा। पेशावर को सीधे अपने अधिकार में लेने का निर्णय करके हरी सिंह नलुआ और जरनैल वैनतूरा की कमान में लाहौर की सेना पेशावर की ओर भेजी गई। सुलतान मोहम्मद खां और उसके भाई पीर मोहम्मद ने अपने परिवारों को पेशावर से भेज दिया। पेशावर के पठान सूबेदार ने लाहौर दरबार की सभी मांगें स्वीकार कर लीं पर हरी सिंह नलुआ को विशेष आज्ञा थी कि वह पेशावर के शहर पर हर हालत में अधिकार करे। इसलिए उसने सुलतान मोहम्मद ने तत्काल स्वीकार कर लिया। सिखों ने 6 मई, 1834 ई० को पेशावर पर अधिकार कर लिया। हरी सिंह नलुआ और वेनतुरा की सहायता से पेशावर का राज्य-प्रबंध चलाने के

1. अमरनाथ, पृ० 194-95।

www.9009.co.in

लिए कुंवर नौनिहाल सिंह को नियुक्त किया गया। इस प्रकार कुंवर नौनिहाल सिंह पेशावर का प्रथम सिक्ख सूबेदार बना। वह उस समय केवल चौदह वर्ष का था। काबुल का बादशाह दोस्त मोहम्मद खां अपने भाई के पेशावर खाली कर देने पर अत्यधिक क्रुद्ध था और वह स्वयं एक बहुत बड़ी सेना लेकर पेशावर की ओर रवाना हुआ। उसने सिखों के विरुद्ध जिहाद का नारा लगाया और कंदूज, कंधार, डेराजात, बहावलपुर आदि से सहायता की मांग की परन्तु उसे उनकी ओर से सहायता न मिल सकी क्योंकि कोई भी अपने आप को खतरे में नहीं डालना चाहता था। रणजीत सिंह ने अपने दो प्रतिनिधियों—हारलों जो एक अमरीकी था और फकीर अजीजुद्दीन को दोस्त मोहम्मद के पास भेजा। लाहौर दरबार के ये वकील प्रकटत: तो दोस्त मोहम्मद खां के साथ सन्धि की बात करने के लिए भेजे गये थे किन्तु अन्दर ही अन्दर वे दोस्त मोहम्मद खां के सरदारों को किसी न किसी प्रकार अपनी ओर मिलाना चाहते थे। दोस्त मोहम्मद ने इन दोनों को रोक लिया पर वे एक चाल चल कर दोस्त मोहम्मद की हिरासत में से निकल आये। सोहनलाल के अनुसार दोस्त मोहम्मद खां ने महाराजा रणजीत सिंह को एक पत्र लिखा कि "महाराजा साहिब, यदि आप कृपापूर्वक पेशावर हमारे सुपुर्द कर दें तो हम आपको उतना ही कर देते रहेंगे जितना सुलतान मोहम्मद खां देता था। पर यदि महाराजा अहंकारवश हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान नहीं देंगे तो मैं अपनी कमर कस कर आपके विरुद्ध लड़ाई लड़ूंगा और आपके गुलिस्तान का एक कांटा बन जाऊंगा। मैं जिहादियों की एक सेना एकत्रित करूंगा जो मर मिटने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानती। मैं हर ओर तूफान मचा दूंगा और हर जगह कयामत का ही दृश्य दिखाई देगा[1]।" एक संक्षिप्त उत्तर में रणजीत सिंह ने लिखा—"हमने बहुत से बागी शासकों के सिर तोड़े हैं और अपने शत्रुओं के पैरों में बेड़ियां डाली हैं। यदि दोस्त मोहम्मद किसी लालचवश अपनी छोटी सी सेना लेकर हमसे युद्ध करना चाहता है तो उसे आने की इजाजत है और हम उससे रणभूमि में टक्कर लेंगे।"[2] दोस्त मोहम्मद पेशावर पर अधिकार करने का साहस न कर पाया। रणजीत सिंह ने मच्छनी और शंकरगढ़ में दो किले बनवाये। हरी सिंह नलुआ को पेशावर में सैनिक प्रबन्ध और राजा गुलाब सिंह को राजस्व विभाग की देख रेख के लिए नियुक्त किया। दोस्त मोहम्मद के दो भाइयों सुलतान मोहम्मद खां और पीर मोहम्मद खां को कोहाट और हस्त नगर में तीन लाख रुपया वार्षिक की जागीरें प्रदान कीं।

---

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तृतीय पृष्ठ 216, कन्हैयालाल, रणजीत नामा, पृष्ठ 485.
2. कन्हैयालाल रणजीत नामा, पृष्ठ 486.

www.9009.co.in

हरी सिंह नलुआ ने कबाइली लोगों की विध्वंसक कारवाईयों को रोकने के लिए सख्त कदम उठाये। उसने अफगानों को यह कह कर भयभीत कर दिया कि वे बगावत की कारवाईयों से बाज नहीं आये तो वह काबुल तक अपनी सेना का नेतृत्व करेगा। सन् 1836 में हरीसिंह ने जमरूद नामक स्थान पर एक मजबूत किला बनवाना प्रारम्भ किया जिसे पठानों ने अपने देश की सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा समझा। 30 अप्रैल 1837 को सिखों और अफगानों के मध्य एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें हरी सिंह नलुआ की मृत्यु हो गई। अफगान न तो सिखों से जमरूद छीन सके और न ही पेशावर। पर सिख इस लड़ाई में अपने सबसे शूरवीर और सबसे योग्य सेनापति हरी सिंह नलुआ को खो बैठे। रणजीत सिंह ने हरी सिंह से कहा था—"किसी देश पर राज्य करने के लिए शासक के पास तुम्हारे जैसे लोगों को होना अत्यधिक आवश्यक है।"

रणजीत सिंह की उत्तर-पश्चिमी सीमा संबंधी नीति

भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा की समस्या पंजाब और भारत की सरकार के लिए सदा से ही एक भारी चिन्ता का विषय बनी रही है। सीमांत क्षेत्र में रहने वाले कबाइली लोग स्वभाव से ही अनुशासन-विरोधी थे। डा० एन० के० सिन्हा ने रणजीत सिंह की उत्तर-पश्चिमी सीमा संबंधी नीति को चार भागों में बांटा है। पहला, अफगानिस्तान और भारत के आपसी संबंधों की समस्या; दूसरा, सीमांत के कबीलों के साथ पूरी तरह निपट सकने की समस्या; तीसरा, सैनिक दृष्टि से सीमांत क्षेत्रों की समस्या और चौथा, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के शासन की समस्या।

सन् 1809 में अमृतसर की संधि के परिणामस्वरूप अंग्रेजों और रणजीत सिंह के मध्य सतलुज नदी एक सीमा के रूप में निश्चित हो गई। इसके अनुसार रणजीत सिंह अपनी पूरी शक्ति से उत्तर-पश्चिमी सीमा की समस्या को सुलझाने के लिए स्वतंत्र हो गया। काबुल के तख्त के लिए होने वाले झगड़ों ने भी काबुल को काफी कमजोर कर दिया। कबाइली अफगानों के साथ निपटने के लिए रणजीत सिंह को अपनी समस्त सेना और अकालियों या निहंगों सहित अपनी समूची प्रजा की ओर से पूरा सहयोग मिला।

महाराजा ने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों पर अधिकार जमाने की योजना प्रारम्भ से ही बना रखी थी। वह जानता था कि यदि वजीर फतेह खां की पंजाब से लगते हुए अपने क्षेत्रों के बारे में जो काबुल से स्वतंत्र हो चुके थे—योजनाएं पूरी हो जाने दी गई तो रणजीत सिंह के राज्य को उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर से सदा खतरा बना रहेगा। फतेह खां मुलतान, अटक, कश्मीर, डेराजात आदि को पुन: काबुल सरकार के अधिकार में लाना चाहता था। यदि उसे इस

www.9009.co.in

योजना में सफल होने दिया जाता तो काबुल की सरकार किसी समय लाहौर पर अपना पिछला हक जतला कर कब्जा करने की मांग भी कर सकती थी। इस लिए यह रणजीत सिंह के हित में था कि वह सिन्ध नदी के उस ओर के पठान क्षेत्रों पर ही अधिकार न करे बल्कि सिन्ध नदी के पार सुलेमान की पहाड़ियों तक के क्षेत्र को भी अपने अधिकार में लाये। अत: रणजीत सिंह ने सीमांत क्षेत्रों पर अधिकार करने की योजनाए बनाई, जिनमें उसे अत्यधिक सफलता भी मिली। सन् 1813 में महाराजा ने अटक पर अधिकार कर लिया। 1818 में पेशावर पर अधिकार जमा कर इसे अफगान सूबेदार के अधीन ही रहने दिया। 1818 ई० में ही मुलतान को लाहौर राज्य के अधीन किया। 1819 में कश्मीर को लाहौर राज्य का हिस्सा बना लिया। सन् 1823 में नौशहरा के ऐतिहासिक युद्ध में विजय प्राप्त की। 1834 में पेशावर को लाहौर राज्य में सम्मिलित कर लिया। रणजीत सिंह अफगानिस्तान पर अधिकार नहीं करना चाहता था। उसे मालूम था कि समूचे अफगान प्रदेश को अपने अधीन रख पाना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कई बार उसके सैनिक अधिकारी काबुल पर आक्रमण करने की सलाह देते थे पर वह सदा ही टाल दिया करता था। केवल एक बार जब पठानों के हाथों हरी सिंह नलुआ की मृत्यु हुई थी तो रणजीत ने अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए गंभीरता से सोचा था, परन्तु शीघ्र ही गुस्सा कम होने पर उसने आक्रमण करने का विचार त्याग दिया था। महाराजा तीन-पक्षीय संधि में सम्मिलित होकर अफगानिस्तान पर बिलकुल आक्रमण नहीं करना चाहता था, पर एक विवशता के कारण उसे इस संधि में सम्मिलित होना पड़ा था।

रणजीत सिंह उत्तर-पश्चिमी सीमा के साथ लगते कबाइली क्षेत्रों को अवश्य अपने अधिकार में करना चाहता था। इसलिए उसने एक-एक करके पेशावर, बन्नू, कोहाट, डेराजात और हजारा को, जिन में बहुत सारे कबीले रहते थे, अपने अधिकार में लिया था। उन कबीलों में खटक, यूसुफजई, मोहम्मदजई, दाऊदजई आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। वे सदा ही गड़बड़ करते रहते थे। स्वतंत्रता प्रेमी होने के कारण वे किसी की भी अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहते थे। वे सदा अपने प्राण हथेली पर लिए फिरते थे। खलीफा अहमद खां जैसे लोगों ने उनकी धार्मिक भावनाओं को भड़का कर कई वर्षों तक सीमांत क्षेत्रों में गड़बड़ मचाये रखी। रणजीत सिंह ने इन कबीलों के विरुद्ध प्रभावशाली कारवाईयां करने वाले अपने सैनिक सरदारों को ऊंचे पद और जागीरें प्रदान कीं।

अपनी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए महाराजा ने पेशावर के प्रांत में

www.9009.co.in

बहुत सारे किले या तो नये बनवाये या पुराने किलों को इस्तेमाल के योग्य बनवाया। सिन्ध नदी और सीमा की अन्य नदियों को पार करने के लिए किश्तियों के पुल तैयार करवाये गये। महाराजा ने सीमांत क्षेत्र की देखभाल और प्रबंध करने के लिए बहुत अनुभवी और शूरवीर सेनापतियों को नियुक्त किया। इन सभी कारवाईयों के बावजूद सीमांत क्षेत्र में शांति स्थापित रख सकने में लाहौर दरबार को काफी कठिनाइयां पेश आती रहीं। डा० बी० जे० हसरत के शब्दों में "सिन्ध पार के क्षेत्रों पर लाहौर दरबार का निष्कंटक प्रभाव स्थापित नहीं हो सका और इन क्षेत्रों के लोग इतने उपद्रवी थे कि अधिकारी और कर्मचारी उन्हें वफादार बना कर अपने अधीन नहीं रख सके।"[1]

पेशावर का प्रांत पांच परगनों में विभाजित था और ये परगने बड़े-बड़े इजारेदारों या ठेकेदारों को दिये गए थे। रणजीत सिंह ने इस क्षेत्र के राज्य-प्रबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। वह वहां के पुराने कानून और परम्परा के अनुसार ही अपना काम चलाता रहा। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र की स्थानीय प्रभुसत्ता को कायम रखा। हर खान अपने क्षेत्र में पहले की तरह ही महत्वपूर्ण बना रहा।

रणजीत सिंह ने सीमांत क्षेत्र में वहां के कानून और शासन-प्रणालियों को कायम रख कर गहरी सूझ-बूझ का प्रमाण दिया। उसने कबाइली क्षेत्र के लोगों का विश्वास प्राप्त करने का हर सम्भव यत्न किया पर वह कबाइलियों और उनके क्षेत्रों को अपने राज्य का अभिन्न अंग न बना सका। निस्संदेह रणजीत सिंह की उत्तर-पश्चिमी नीति को हम एक सफल नीति कह सकते हैं। वास्तव में रणजीत सिंह के लिए पठान क्षेत्रों पर अधिकार करना इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि अपने राज्य के लिए एक मजबूत उत्तर-पश्चिमी सीमा को स्थापित करना जो कभी भी उसके राज्य की सुरक्षा के लिए कोई खतरा न पैदा होने दे। अपनी इस आकांक्षा में वह काफी हद तक सफल भी हुआ था।

1. B.J. Hasrat, Life and Times of Ranjit Singh, Page 138.

www.9009.co.in

चतुर्थ अध्याय

अंग्रेज़ों के साथ संबंध

महाराजा रणजीत सिंह सन् 1800 में पहली बार अंग्रेज़ों के सम्पर्क में आये। ईस्ट इंडिया कंपनी का एक प्रतिनिधि एक खतरनाक स्थिति के विषय में महाराजा से बातचीत करने के लिए लाहौर आया था, पर अंग्रेज़ों की आशंका गलत निकली। अतः उनका प्रतिनिधि राजनैतिक समस्याओं पर चर्चा किये बिना ही लाहौर से वापिस चला गया। अंग्रेज़ों के साथ रणजीत सिंह के संबंधों को दो कालखण्डों में विभाजित किया जा सकता है – सन् 1800 ई० से 1809 ई० तक और सन् 1809 से 1839 तक।

पहला कालखण्ड (1800-1809 ई०)

काबुल के शासक शाह जमान की ओर से आक्रमण के भय के कारण ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल वैलेज़ली के कहने पर सन् 1800 ई० में यूसुफ अली खां को लाहौर भेजने के लिए चुना गया। जार्ज टामस ने यूसुफ अली को जींद तक पहुंचा दिया। मालवा के क्षेत्र में सिख सरदारों ने यूसुफ अली को शंकित दृष्टि से देखा। यूसुफ अली लाहौर पहुंच गया। उसे रणजीत सिंह के साथ यह तय करना था कि यदि शाह जमान पंजाब और हिन्दुस्तान की ओर आये तो उसका वही हाल किया जाये जो अंग्रेज़ों के हाथों टीपू सुल्तान का हुआ था जिसने "योरोप के दुर्रानियों" अर्थात् फ्रांसीसियों की सहायता ली थी। यूसुफ अली के पंजाब की ओर आने के दौरान ही जमान शाह को काबुल के सिंहासन से उतार कर अंधा कर दिया गया था और इस प्रकार अफगानिस्तान के आक्रमण का खतरा टल गया था। यूसुफ अली कुछ दिन लाहौर में रह कर वापिस चला गया। अंग्रेज़ों के प्रतिनिधि के इस मिशन के समय दोनों पक्षों की ओर से उपहारों का आदान प्रदान किया गया। इस प्रकार रणजीत सिंह और अंग्रेज़ों के बीच यह पहला सम्पर्क हुआ।

अंग्रेज़ों का दिल्ली पर अधिकार (1803 ई०)

सन् 1803 में अंग्रेज़-मराठा संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। अंग्रेज़ सेनाएँ 1823 ई० में दिल्ली में प्रविष्ट हो गई और मराठे दिल्ली, आगरा, रोहतक, हिसार, सिरसा और गुड़गांव छोड़ देने के लिए विवश हो गये। मालवा के सिंख सरदार इस संघर्ष में तटस्थ रहे। रणजीत सिंह इन दिनों पिंडी भट्टियां, झंग

www.9009.co.in

और साहीवाल को अपने अधिकार क्षेत्र में लाने की कारवाई में व्यस्त था। वह मालवा के क्षेत्र पर अधिकार करना चाहता था किन्तु दिल्ली व इसके आस-पास के क्षेत्र से मराठों का अधिकार समाप्त हो जाने के बाद अंग्रेज और रणजीत सिंह सीधे एक दूसरे के सामने जा खड़े हुए। अंग्रेज समझते थे कि वे इस क्षेत्र में मराठों के उत्तराधिकारी बन गये हैं।

जसवंत राव होलकर की पंजाब-यात्रा (1805 ई०)

इंदौर का शासक जसवंत राव होलकर अंग्रेजों से पराजित होकर रणजीत सिंह से सहायता लेने के लिए पंजाब की ओर आया। अमृतसर को जाते हुए होलकर पटियाला में से होकर गुजरा जहां उसे हमदर्दी तो मिली किन्तु वह कोई ठोस सहायता न प्राप्त कर सका। अपने साथी अमीर खां रुहेला सहित जसवंत राव अमृतसर पहुंच गया। रणजीत सिंह उस समय चिनाब और सिंध नदियों के मध्य कुछ सैनिक कारवाईयों में लगा हुआ था। जसवंत राव के आने की सूचना पाकर वह तुरन्त वापिस आ गया। महाराजा ने उसकी बहुत आवभगत की।

दूसरी ओर जनरल लेक जसवंत राव का पीछा करते हुए पंजाब पहुंच गया। लेक भी पटियाला में से गुजरा। जींद का शासक भाग सिंह उसके साथ अमृतसर के लिए रवाना हुआ ताकि वह महाराजा रणजीत सिंह को जसवंत राव की सहायता न करने के लिए रजामंद कर सके।[1] रणजीत सिंह ने पंजाब के कुछ प्रमुख सरदारों के साथ इस स्थिति पर विचार-विमर्श किया। उन सभी ने यह सलाह दी कि अंग्रेजों के विरुद्ध जसवंत राव की सहायता करना खतरे से खाली नहीं होगा। राजा भाग सिंह ने भी इस बात पर जोर दिया। रणजीत सिंह ने जसवंत राव की सहायता न करने का निश्चय किया। सोहन लाल सूरी के अनुसार रणजीत सिंह के निर्णय पर सिख सैनिकों को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा कि महाराजा अंग्रेजों के कुछ पक्षधरों के कहने पर अपने धर्म के विरोधी फिरंगियों से मिल गया है। अपने सैनिकों की ऐसी बातों से प्रेरित होकर रणजीत सिंह जसवंत राव की सहायता करने के लिये तैयार हो गया पर अंत में राजा भाग सिंह के दबाव डालने पर रणजीत सिंह ने अपना निर्णय पुनः बदल लिया और मराठा शासक की सहायता करने का विचार त्याग दिया।[2] कनिंघम के अनुसार रणजीत सिंह ने मराठा सरदार से कसूर के पठानों के विरुद्ध सहायता मांगी जो कि वह न दे सका। जी० एल० चोपड़ा की मान्यता है कि

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 58.
2. वही, पृष्ठ 58–59,

www.9009.co.in

महाराजा अंग्रेजों की सेना की शक्ति को देखते हुए जसवंत राव की सहायता करने के लिए तैयार नहीं हो सका। मोहम्मद लतीफ के अनुसार सिख सरदारों ने रणजीत सिंह को मराठा सरदार और अंग्रेजों के बीच मध्यस्थता करने की सलाह दी।[1] जसवंत राव ने लाचार होकर जनरल लेक के साथ संधि कर ली।

इसी बीच लार्ड वैलेजली की जगह कार्नवालिस ईस्ट इंडिया कम्पनी का नया गवर्नर जनरल बना। कार्नवालिस मराठों के साथ समझौता करने के पक्ष में था। इस प्रकार जसवंत राव होलकर और अंग्रेजों के बीच 24 दिसम्बर 1805 ई० को एक समझौता हो गया जिसके परिणामस्वरूप होलकर को उसके कई क्षेत्र वापिस कर दिये गये।

रणजीत सिंह व अंग्रेजों के बीच मित्रता की संधि (1806 ई०)

जसवंत राव होलकर के अंग्रेजों की शर्तें मानने के शीघ्र बाद ही पहली जनवरी, 1806 ई० को अंग्रेजों और सिखों के बीच मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर हुए। अंग्रेजों ने यह संधि रणजीत सिंह और फतेह सिंह आहलूवालिया के साथ की जिस पर अंग्रेजों की ओर से जान मैल्कम ने हस्ताक्षर किये। संधि की मुख्य शर्तें थीं :

1. रणजीत सिंह और फतेह सिंह अहलूवालिया, जसवंत राव होलकर और उसके साथी अमीर खां की सहायता नहीं करेंगे और उन्हें शीघ्र ही वापिस चले जाने के लिए कहेंगे।
2. भविष्य में भी सिख मराठों के साथ कोई संबंध नहीं रखेंगे।
3. जब तक सिख अंग्रेजों के शत्रुओं के साथ कोई मेल-जोल नहीं करेंगे, अंग्रेज सिखों के क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं होंगे। यह थी एक छोटी-सी पहली संधि जो रणजीत सिंह और अंग्रेजों के बीच हुई।

कुछ इतिहासकार मराठा सरदार की सहायता न करने और अंग्रेजों से मित्रता की संधि करने के लिए रणजीत सिंह की आलोचना करते हैं। रणजीत सिंह का राज्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही था और अंग्रेजों से व्यर्थ ही शत्रुता मोल लेना उसके राज्य के हित में नहीं था। दूसरी ओर जसवंत राव मराठा और उसके साथी अमीर खां रुहेला पर रणजीत सिंह को विश्वास नहीं था। जसवंत राव और उसका मुसलमान साथी कसूर के मुसलमान शासक के विरुद्ध रणजीत सिंह की सहायता करने के लिए तैयार नहीं हुए थे। अतः इन परिस्थितियों में होलकर की सहायता करना रणजीत सिंह के लिए बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं था।

1. Mohammad Latif, History of the Punjab, P. 363.

www.9009.co.in

मालवा पर आक्रमण (1806-7 ई०)

दुलद्दी गांव के विषय में—जो नाभा शहर से डेढ़ मील की दूरी पर है पटियाला और नाभा रियासतों में झगड़ा हो गया। पटियाला का राजा साहिब सिंह और नाभा का राजा जसवंत सिंह दोनों ही इस गांव के दावेदार थे। थे। पटियाला के शासक के प्रतिनिधि तारा सिंह को दुलद्दी गांव में कत्ल कर दिया गया। इससे नाभा और पटियाला के संबंध बिगड़ गये। जींद के राजा भाग सिंह ने नाभा का और थानेश्वर के महताब सिंह और कैथल के भाई लाल सिंह ने पटियाला का पक्ष लिया। साहिब सिंह ने रणजीत सिंह से सहायता मांगी। रणजीत सिंह तुरंत पटियाला पहुंचा। कपूरथला का फतेह सिंह अहलूवालिया भी उनके साथ था और महाराजा के साथ आई सेना चौधरी कादरबख्श की कमान में थी। रणजीत सिंह ने पटियाला आते हुए रास्ते में करतारपुर से नजराना प्राप्त किया। जालंधर के सरदार बुध सिंह ने भी कई घोड़े और कुछ नकद धन रणजीत सिंह को दिया। नकोदर के शासक तारा सिंह गैबा ने रणजीत सिंह को 25,000 रुपये भेंट किये।[1] रणजीत सिंह ने सतलुज नदी पार करके लुधियाना और जगरांव के किलों पर अधिकार कर लिया। पटियाला पहुंचने पर उनका भारी स्वागत किया गया। दुलद्दी के विषय में रणजीत सिंह ने पटियाला के पक्ष में निर्णय दिया। नाभा के राजा को प्रसन्न करने के लिए उसने तलवण्डी और इकतीस गांवों सहित जगरांव उसे दे दिये जहां से 24,000 रुपये वार्षिक आय होती थी। जींद के राजा को लुधियाना दे दिया गया। फतेह सिंह अहलूवालिया को मालवा के क्षेत्र में कई गांव दिये गये।

इस बार रणजीत सिंह अम्बाला, बूड़ीया और थानेश्वर तक भी गया। सन् 1807 में रणजीत सिंह पटियाला के साहिब सिंह की पत्नी के निमंत्रण पर दूसरी बार मालवा के क्षेत्र में आया। रानी आस कौर चाहती थी कि साहिब सिंह के पश्चात् उसका पुत्र करम सिंह उसका उत्तराधिकारी बने। पटियाला के कुछ सरदार आस कौर का पक्ष ले रहे थे। यह भी कहा जाता है कि कैथल के भाई लाल सिंह और जींद के राजा भाग सिंह के कहने पर राजा साहिब सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह को निमंत्रित किया था जिससे उनकी सहायता से साहिब सिंह के विरोधियों को डराया जा सके और रानी आसकौर व उसके पुत्र को पटियाला से निकाल दिया जाये।[2] रणजीत सिंह के पटियाला आने की सूचना पाकर आस कौर ने भय के कारण अपने पति की सभी शर्तें मान लीं।[3]

1. सोहन लाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 61.
2. वही, पृष्ठ 65-66.
3. वही, पृष्ठ 66.

www.9009.co.in

रणजीत सिंह के क्रोध से बचने के लिए आस कौर ने उसे बहुमूल्य हीरों का एक हार और इक्कीस कपड़ों की एक खिलअत भेंट की। इसके अतिरिक्त अन्य उपहार भी दिये। साहिब सिंह ने पीतल की एक तोप दी। कैथल के भाई लाल सिंह ने 12,000 रुपये और मालेरकोटला के नवाब ने 40,000 रुपये का नजराना महाराजा को भेंट किया।[1]

सिरमौर का राजा किशन सिंह महाराजा की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए महाराजा ने नारायण गढ़ के किले को घेर लिया। युद्ध में रणजीत सिंह के अनेक सरदार मारे गये जिनमें फतेह सिंह कालिया वाला, मोहन सिंह कुमदान और दीवान सिंह भंडारी भी शामिल थे। रणजीत सिंह ने बहुत रोष में आकर जोरदार आक्रमण किया। राजा किशन सिंह किले में से बच कर निकल गया और किले पर महाराजा रणजीत सिंह का अधिकार हो गया। नारायण गढ़ का क्षेत्र फतेह सिंह अहलूवालिया को दे दिया गया। लौटते समय रणजीत सिंह ने तारा सिंह गैबा के क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया।

मालवा के सरदारों द्वारा अंग्रेजों से सहायता मांगना

रणजीत सिंह के दो बार मालवा में आने और उपहार एकत्रित करने से मालवा के सरदार घबरा गये। उन्होंने मार्च 1808 में पटियाला राज्य के समाना नामक कस्बे में एक गुप्त बैठक की जिसमें पटियाला राज्य का दीवान और जींद और कैथल के शासक भी उपस्थित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि दिल्ली जाकर अंग्रेज रेजीडेंट सीटन से सहायता मांगी जाए। ये सरदार दिल्ली गये और मिस्टर सीटन से रणजीत सिंह की आक्रामक कारवाईयों के विरुद्ध बचाव की मांग की। सीटन इन सिख सरदारों को कोई संतोषजनक भरोसा न दिलवा सका। एक तो इस कारण कि अंग्रेज सरकार भारतीय रियासतों के संबंध में एक निष्पक्ष नीति अपनाना चाहती थी। दूसरे, फ्रांस की ओर से भय के कारण अंग्रेज रणजीत सिंह के पास अपना एक राजदूत भेजना चाहते थे। वे मालवा के सिख सरदारों की हिमायत खुल्लमखुल्ला विश्वास दिल कर रणजीत सिंह को नाराज नहीं करना चाहते थे। तीसरे, सीटन ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर व्यक्तिगत रूप से निर्णय नहीं ले सकता था। इसलिए मिस्टर सीटन ने मालवा के सरदारों के साथ वादा किया किया कि उनकी प्रार्थना गवर्नर जनरल के पास कलकत्ता भेज दी जाएगी। मिस्टर सीटन के इस उत्तर से उन सरदारों की संतुष्टि नहीं हुई।

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीया, पृष्ठ 66.

www.9009.co.in

ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो को जब इस स्थिति का पता चला तो उसने पंजाब के मामलों में दखल देने का निश्चय किया। अंग्रेज भारत पर फ्रांसीसियों के आक्रमण से बहुत डरते थे। भले ही लार्ड मिंटो ने इंगलैंड की सरकार को विश्वास दिलाया था कि फ्रांसीसी ईरान और अफानिस्तान में से होकर भारत पर आक्रमण नहीं कर सकते पर फिर भी ब्रिटेन की सरकार के दिल में से भय नहीं गया।

इस स्थिति को देखते हुए लार्ड मिण्टो ने लाहौर और काबुल में अपना मिशन भेजने का निर्णय लिया।

मैटकाफ़ मिशन (1808 ई०)

चार्ल्स मैटकाफ को लाहौर और एलफिंस्टन को काबुल भेजने का निर्णय किया गया। जब रणजीत सिंह को पता चला कि अंग्रेज काबुल की ओर भी अपना मिशन भेज रहे हैं तो उसने इस बात को पसंद नहीं किया। मैटकाफ़ के लाहौर मिशन का मुख्य उद्देश्य यह था कि फ्रांस की ओर से आक्रमण होने की स्थिति में महाराजा अंग्रेजों का साथ दे। मैटकाफ़ रणजीत सिंह को यह भी बताना चाहता था कि इस गठजोड़ में रणजीत सिंह का भी लाभ है। मैटकाफ को तेईस वर्ष की अवस्था में इतने नाजुक मिशन पर लाहौर भेजा गया। दूसरी ओर भी एक बहुत कुशल महाराजा था जो आयु में मैटकाफ से थोड़ा-सा बड़ा था। मैटकाफ 28 जुलाई 1808 को दिल्ली से चला और मार्ग में पटियाला भी ठहरा। पांच सितम्बर को ब्यास नदी पार करके वह लेमकरन पहुंचा। रणजीत सिंह ने फतेह सिंह अहलूवालिया और दीवान मोहकम चन्द को भेजा कि वे लेमकरन में मैटकाफ का स्वागत करके उसे कसूर ले आयें जहां महाराज ठहरे हुए थे। लाहौर सरकार के 10,000 सैनिकों ने मैटकाफ का स्वागत किया पर मैटकाफ ने इससे यह समझा कि रणजीत सिंह अपनी सेना के दिखावे से उसे डराना चाहता है। मैटकाफ 12 सितम्बर 1808 को महाराजा से मिला। महाराजा बहुत सम्मान के साथ उसे अंदर ले गया पर मैटकाफ ने अपनी सरकार को एक अत्यंत ही क्रोधपूर्ण रिपोर्ट दी जिसमें लिखा कि महाराजा रणजीत सिंह की ओर से उसे यथोचित सम्मान नहीं मिला है। मैटकाफ आशा करता था कि रणजीत सिंह उससे मिलने के लिए उसके कैम्प में आयेगा। सोहनलाल सूरी के कथनानुसार रणजीत सिंह ने मैटकाफ का अधिकाधिक स्वागत किया और उपहार के रूप में दुशाले, कीमखाब, गुलबदन और हीरों से जड़ा कण्ठा, एक हाथी, सोने की काठी वाला एक घोड़ा और हजारों रुपये नकद दिये।[1] स्वागत की

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 73; बूटेशाह, भाग-5, पृष्ठ 49.

www.9009.co.in

रस्मों के पश्चात् रणजीत सिंह ने मैटकाफ से पूछा कि इतनी सख्त गर्मी के मौसम में जब नदियां बाढ़ के कारण चढ़ी हुई थीं और बरसात लगातार हो रही थी, उसने इतनी जल्दी में पंजाब की ओर आने का कष्ट क्यों किया।[1] चार्ल्स मैटकाफ ने रणजीत सिंह के साथ पहली मुलाकात में ही भांप लिया कि रणजीत सिंह एक बहुत शक्तिशाली शासक है और वह पटियाला के राजा साहिब सिंह की तरह चापलूसी नहीं कर सकता। मैटकाफ की प्रार्थना पर रणजीत सिंह 16 सितम्बर को मैटकाफ के कैम्प में जाकर मिला था। 18 सितम्बर को मैटकाफ ने रिपोर्ट भेजी कि महाराजा उसके मिशन को संदेहपूर्ण दृष्टि से देख रहा था और उसका भरपूर स्वागत भी नहीं किया गया। कसूर में मैटकाफ गुप्त रूप से कुछ सिख सरदारों से भी मिला था। रणजीत सिंह ने इस बात को बहुत बुरा समझा। मैटकाफ ने गवर्नर जनरल की चिट्ठी 19 सितम्बर को महाराजा के सामने पेश की जिसमें फ्रांसीसी आक्रमण के भय पर खास जोर दिया गया था। महाराजा फ्रांसीसी आक्रमण के डर वाली बात से प्रभावित नहीं हुआ।

मालवा पर तीसरा आक्रमण (1808 ई०)

महाराजा रणजीत सिंह सन् 1808 के अन्त में ब्यास नदी की ओर रवाना हुआ और उसने मैटकाफ को अपने पीछे आने के लिए कहा। पहली अक्तूबर को रणजीत सिंह ने फरीदकोट पर अधिकार कर लिया और वहां से मलेरकोटला की ओर रवाना हुआ, जहां के पठान सरदार से उसने एक लाख रुपये की भेंट स्वीकार की। इसके पश्चात् महाराजा ने शाहबाद और अम्बाला पर अधिकार कर लिया। मैटकाफ गुंगराणा में महाराजा की वापिसी की प्रतीक्षा करता रहा। अंग्रेज सरकार ने मालवा पर रणजीत सिंह के तीसरे आक्रमण को एक गलत कारवाई समझा और अपने राजदूत मैटकाफ को भी डांटा कि उसने महाराजा को ऐसी कारवाई से क्यों नहीं रोका जबकि वह मालवा की रियासतों को अपनी रक्षा में लेने के सम्बन्ध में रणजीत सिंह से बातचीत करने गया था। अंग्रेज सरकार ने कर्नल आक्टर लोनी को जो इलाहाबाद में गैरीजन कमांडर था और पहले दिल्ली में रेजीडेण्ट रह चुका था आज्ञा दी कि वह तुरन्त मालवा की ओर रवाना हो। आक्टर लोनी की सैनिक टुकड़ी यमुना पार करके मालवा के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई। जींद के राजा भाग सिंह ने रणजीत सिंह और अंग्रेजों के बीच मध्यस्थता करना स्वीकार किया। उसने आक्टर लोनी से कहा कि महाराजा लड़ाई करना नहीं चाहते। चार्ल्स मैटकाफ 12 दिसम्बर 1808 ई० को रणजीत सिंह से मिला और उससे कहा कि वे सारे गांव जिन पर उन्होंने सन् 1808 के युद्ध में अधिकार किया था छोड़ दें, क्योंकि मालवा की सभी

1. लाल लाल गुप्ती, दफ्तर द्वितीय, पृष्ठ 73, बूटेशाह भाग-5 पृष्ठ 49.

www.9009.co.in

रियासतें ईस्ट इंडिया कम्पनी की सुरक्षा में हैं । आक्टर लोनी 4 फरवरी 1809 ई० को पटियाला के समीप पहुंच गया और उसने लाहौर की सेना से अम्बाला खाली कर देने के लिए कहा । लाहौर के सैनिकों ने अम्बाला छोड़ दिया जो यहां की रानी दया कौर के अधिकार में आ गया । आक्टर लोनी ने अपने स्तर पर लाहौर सरकार से गुप्त बातचीत प्रारम्भ की जिसे अंग्रेज सरकार ने उचित नहीं समझा क्योंकि महाराजा के साथ राजनीतिक बातचीत करने के लिए चार्ल्स मैटकाफ को पहले से ही नियुक्त किया जा चुका था । आक्टर लोनी की गुप्त कार्रवाई के परिणामस्वरूप अंग्रेज सरकार उसे पदमुक्त करना चाहती थी । आक्टर लोनी ने 7 अप्रैल 1809 ई० को अपने पद से इस्तीफा दे दिया पर साथ ही जोरदार शब्दों में कहा कि उसकी नीति से चार्ल्स मैटकाफ को उस के मिशन में सहायता ही मिली थी, किसी प्रकार की हानि नहीं हुई थी । आक्टर लोनी का इस्तीफा स्वीकार नहीं किया गया ।

अमृतसर की सन्धि (25 अप्रैल 1809 ई०)

महाराजा रणजीत सिंह और चार्ल्स मैटकाफ की आपसी बातचीत के फलस्वरूप 25 अप्रैल 1809 ई० को अमृतसर की सन्धि पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो गये जिसके अनुसार सतलुज नदी को अंग्रेजों और रणजीत सिंह के अधिकार क्षेत्रों के मध्य सीमा मान लिया गया । मालवा की रियासतों को अंग्रेजों ने अपनी सुरक्षा में लेने का ऐलान किया और अंग्रेजों और रणजीत सिंह के एक दूसरे का मित्र हो जाने की भी घोषणा की गयी । यह बात भी स्पष्ट की गई कि यदि दोनों पक्षों में से कोई भी सन्धि की उपर्युक्त धाराओं का उल्लंघन करेगा तो यह सन्धि भंग समझी जायेगी ।

डा० एन० के० सिन्हा का मत है कि इस सन्धि के कारण रणजीत सिंह को अंग्रेजों के हाथों राजनीतिक पराजय का मुंह देखना पड़ा था । वास्तव में रणजीत सिंह ऐसी सन्धि करने के लिए विवश था और आगे चल कर यह सन्धि उसके लिए अत्यंत लाभदायक भी सिद्ध हुई । इस सन्धि से रणजीत सिंह को कुछ हानि भी अवश्य हुई थी । महाराज बहुत समय से समूची सिख आबादी को अपने अधिकार में कर पाने का स्वप्न देख रहा था । पर उसका यह सपना अधूरा ही रह गया । कनिंघम के शब्दों में रणजीत सिंह समूची सिख आबादी को एक झण्डे के नीचे लाकर एक शक्तिशाली और नियमित राज्य बनाने का यत्न कर रहा था । रणजीत सिंह के मालवा के क्षेत्र पर दावे का कारण यह था कि वहां की आबादी आम तौर पर सिख थी और अंग्रेज मालवा के क्षेत्र पर इसलिए अपना दावा जतला रहे थे कि यह क्षेत्र पहले मराठों के अधिकार में था और

www.9009.co.in

जब अंग्रेजों ने मराठों को पराजित कर दिया तो मालवा का क्षेत्र अपने आप ही विजेता शासकों के अधिकार में आ गया था।

अंग्रेजों ने लुधियाना में अपनी एजेंसी स्थापित कर ली जिससे वे लाहौर के बहुत निकट आ गये और हर समय पंजाब पर अपनी चौकस नजर रखने लगे। यह भी समझा जाता है कि रणजीत सिंह को इस सन्धि से बहुत लाभ पहुंचा। सतलुज नदी के पूर्व की ओर अंग्रेजों के स्थित हो जाने से रणजीत सिंह की यह सीमा सुरक्षित हो गई और वह उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों की ओर या शिवालिक और जम्मू व कश्मीर के पर्वतीय प्रदेशों की ओर अपनी सैनिक कार्रवाइयां करने के लिए स्वतंत्र हो गया। यदि अंग्रेजो के साथ तनाव की स्थिति रहती तो उसे अपनी बहुत सारी सेना सतलुज के साथ-साथ लगाए रखनी पड़ती और उस दशा में रणजीत सिंह अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी सीमांत के कबीलों के प्रति ऐसी सशक्त नीति नहीं अपना सकता था। यदि अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध अच्छे न होते तो अफगान उसका लाभ उठा कर रणजीत सिंह के राज्य में किसी न किसी जगह अवश्य ही गड़बड़ मचाये रखते। अंग्रेजों के साथ तनाव की स्थिति में रणजीत सिंह के लिए कश्मीर, अटक, पेशावर, डेराजात, मुलतान आदि प्रांतों पर अधिकार कर लेना असम्भव ही था। सिन्हा का यह विचार उचित नहीं है कि रणजीत सिंह को अंग्रेजों के साथ युद्ध करना चाहिए था। अंग्रेजों के साथ अच्छे सम्बन्ध रख कर रणजीत सिंह ने जो उपलब्धियां प्राप्त कीं, वे मालवा के हाथ से निकल जाने से कहीं अधिक बड़ी थीं और अंग्रेजों के साथ मालवा के लिए झगड़ा करके इस बात की भी क्या गारंटी थी कि मालवा उसके अधिकार में आ ही जाता? अंग्रेजों को नाराज करने पर अफगानों के पक्ष को और अधिक शक्ति मिलती। इस लिए निस्संदेह रणजीत सिंह ने सन् 1809 की संधि करके अपने लिए एक विशुद्ध लाभ प्राप्त करने की शुरुआत की।

सी. एच. पेन के अनुसार यह सन्धि सिख शासक के लिए कोई बुरा सौदा नहीं था। भले ही इसके द्वारा उसे मालवा का क्षेत्र अपने अधिकार में कर पाने की आशाएं त्यागनी पड़ी थीं, पर उसे यह एक महान लाभ हुआ था कि भविष्य में उस ओर की सीमा की रक्षा के लिये अंग्रेज सरकार का एक शब्द ही रणजीत सिंह के लिए पूरी गारंटी था और रणजीत सिंह को यह पता लग गया था कि अंग्रेजों पर विश्वास किया जा सकता है। उसने सन्धि की शर्तों का पूरी तरह से पालन किया और जब से उसने इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे, वह अंग्रेजों का घनिष्ठ मित्र बन गया था।[1] इस सन्धि के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की

1. C H. Pyne, A Short History of the Sikhs, pp. 84–85.

www.9009.co.in

सीमा भी यमुना नदी से बढ़ कर सतलुज नदी तक पहुंच गई और अंग्रेजों को पर्याप्त लाभ पहुंचा। मालवा के सरदारों से अंग्रेज सदा सैनिक सहायता लेते रहे।

अमृतसर की सन्धि का रणजीत सिंह के मन पर तुरन्त अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। शुरू-शुरू में उसके मन में अंग्रेजों के प्रति एक भय की भावना उत्पन्न हो गई जिस कारण उसने सतलुज के समीप फिलौर में एक किला बनवाया जो अंग्रेजों की एजेन्सी से मात्र पांच-छह मील की दूरी पर था। दीवान मोहकमचन्द और अकाली फूला सिंह प्रारम्भ से ही इस सन्धि के विरुद्ध थे। पर सन् 1812 में खड़क सिंह के विवाह के समय जब डाक्टर लोनी लाहौर आया तो दोनों के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। इसके बाद भी मालवा के इलाके में लाहौर दरबार के कुछ क्षेत्रों के विषय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से कुछ झगड़े होते रहे।

बदनी का मामला

बदनी एक मुसलमान जमींदार मियां नोधा के अधिकार में था। 1807 में रणजीत सिंह के मालवा पर आक्रमण के समय रानी सदा कौर ने बदनी को रणजीत सिंह के अधिकार में आने से बचाया था। मियां नोधा सदा कौर के संरक्षण में आ गया। सन् 1808 के आक्रमण के समय भी सदा कौर ने बदनी की रक्षा की थी। 1808 में एक सनद के द्वारा महाराजा ने बदनी के क्षेत्र को सदा कौर के सुपुर्द कर दिया। सन् 1817 में नोधा की मृत्यु के पश्चात् बदनी को सदा कौर ने अपने अधिकार में कर लिया। 1821 में जब महाराजा ने सदा कौर को बंदी बनाया तो उसने बदनी के अपने क्षेत्र में शरण लेने के लिए अंग्रेज सरकार से प्रार्थना की। अंग्रेजों ने सदा कौर की प्रार्थना स्वीकार कर ली पर रणजीत सिंह ने बदनी पर सदाकौर के अधिकार को स्वीकार नहीं किया। कैप्टन वेड ने जो लुधियाना में राजनैतिक एजेंट था, रणजीत सिंह का समर्थन किया और कहा कि सदा कौर प्रभुसत्ता सम्पन्न होने के नाते अंग्रेजों के सम्पर्क में नहीं आई बल्कि सदैव रणजीत सिंह के लोग ही उसे अंग्रेजों से परिचित करवाते रहे हैं। कुछ समय बाद रानी सदा कौर की मृत्यु हो गई और उसके मालवा के क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में चले गये। 1827 में लाहौर सरकार ने बदनी के मामले को पुनः छेड़ा और उस पर रणजीत सिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

आहलूवालियों के क्षेत्र

फतेह सिंह आहलूवालिया रणजीत सिंह का परम मित्र था और उसके पास सतलुज के पार मालवा के क्षेत्र में बहुत सारे गांव थे जो रणजीत सिंह ने उसे दिये हुए थे। फतेह सिंह के दरबारियों ने रणजीत सिंह के प्रति उसके मन में

www.9009.co.in

कुछ शंकाएं उत्पन्न कर दीं जिसके परिणाम स्वरूप वह सन् 1825 में मालवा के क्षेत्र की ओर भाग गया और अंग्रेजों से शरण मांगी। मैटकाफ ने अपनी राय देते हुए कहा कि फतेह सिंह को मालवा के उन क्षेत्रों में शरण दी जा सकती है जो क्षेत्र उसे अपने पुरखों से विरासत में मिले हों या उसने स्वयं जीते हों, पर उसे उन क्षेत्रों में शरण नहीं मिल सकती जो महाराजा ने उसे दिये थे। रणजीत सिंह ने कहा कि मालवा में अहलूवालिया सरदारों के पास जो 454 गांव थे, वे उसने फतेह सिंह को दिये थे और जगरांव के नारायण गढ़ के क्षेत्र भी रणजीत सिंह के ही थे। वेड ने रणजीत सिंह का पक्ष लिया। दूसरी ओर रणजीत सिंह ने फतेह सिंह को विश्वास दिलाया कि वह अहलूवालिया सरदार के साथ सदा की तरह ही मित्रता बनाए रखना चाहता है। इस आश्वासन पर फतेह सिंह वापिस अपने राज्य में चला गया और रणजीत सिंह से साथ पुनः पूर्ववत संबंध स्थापित हो गये।

इसी प्रकार कई अन्य क्षेत्रों जैसे हरी सिंह कंग का क्षेत्र, आनन्दपुर, माखोवाल और माछीवाड़े के विषय में भी कुछ झगड़े उठे पर शीघ्र ही सुलझ गये थे।

रोपड़ की भेंट (26 अक्तूबर 1831 ई०)

सन् 1831 के प्रारम्भ में लाहौर दरबार से तीन व्यक्तियों का एक मिशन जिसमें फकीर अज़ीज़ुद्दीन, दीवान मोती राम और हरी सिंह नलुआ थे, शिमला में लार्ड विलियम बेंटिक से मिला। गवर्नर जनरल ने इनका यथोचित स्वागत किया। इसके शीघ्र बाद ही लार्ड बेंटिक ने कैप्टन वेड को लाहौर भेजा ताकि वह मालूम करे कि क्या महाराजा रणजीत सिंह उससे मिलना चाहेंगे। वेड रणजीत सिंह से अदीना नगर नामक स्थान पर 22 मई 1831 ई० को मिला। रणजीत सिंह ने बेंटिक के प्रति मित्रता की भावना व्यक्त की परन्तु उसके साथ भेंट के लिए कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। जुलाई सन् 1831 को जब अलेक्जेंडर बर्न्ज इंगलैंड से चार घोड़ियां और एक घोड़ा लेकर लाहौर आया तो वेड भी उस अवसर पर लाहौर पहुंचा। इस समय रणजीत सिंह और विलियम बेंटिक के मध्य भेंट का निश्चय किया गया। महाराजा पहले बेंटिक से मिलने जाने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे और चाहते थे कि गवर्नर जनरल उन्हें पहले आकर मिले पर बाद में रणजीत सिंह बेंटिक से पहले मिलने जाने के लिए तैयार हो गये। लगभग एक सौ बड़े-बड़े सरदार और रईस लाहौर से रणजीत सिंह के साथ रोपड़ गये, जिनमें जींद, लाडवा और कैथल के शासक भी थे। इनके अतिरिक्त लाहौर सरकार के मंत्री, शहज़ादे, डोगरा सरदार, अटारी वाले, मजीठिये, संधावालिये और कालियांवाले सरदार, ऐलार्ड, कोर्ट

www.9009.co.in

आदि भी इनमें सम्मिलित थे। उनके साथ 16,000 चुने हुए घुड़सवार और 6000 पैदल सैनिक थे।

रणजीत सिंह 26 अक्तूबर सन् 1831 को लार्ड बेंटिक से मिले और दूसरे दिन बेंटिक महाराजा रणजीत सिंह से मिलने के लिए गया। अत्यंत मूल्यवान उपहारों का आदान-प्रदान किया गया। इस भेंट के समय रणजीत सिंह के अंग्रेजों के प्रति खुशामदी रवैये की लाहौर दरबार के कई सरदारों और निहंगों ने आलोचना की। सोहनलाल सूरी के अनुसार एक निहंग तलवार खींच कर रणजीत सिंह की ओर दौड़ा किन्तु रणजीत सिंह के अर्दलियों ने उसे पकड़ लिया और महाराजा के सामने पेश किया।[1]

अंग्रेजों और सिखों की सिंध के प्रति नीति

रणजीत सिंह बहुत समय से यह अनुभव करते आ रहे थे कि सिन्ध के साथ उनका एक बहुत नजदीकी संबंध है। इसलिए सिंध को अवश्य उसके राज्य का भाग होना चाहिए। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि सिंध के पंजाब राज्य में मिल जाने के परिणामस्वरूप महाराजा को अरब सागर तक मार्ग मिल जाएगा और इस प्रकार वह समुद्र पार के देशों से संबंध रख सकेगा। काफी पहले मूरक्राफ्ट ने अंग्रेजों को सुझाव दिया था कि जहाजरानी के लिए उपयुक्त होने के कारण सिंध को नौकाओं और समुद्री बेड़ों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। पर रणजीत सिंह की सिंध के प्रति नीति का अंग्रेजों के साथ सीधा टकराव हुआ, क्योंकि अंग्रेज सिंध को अपने अधिकार में लेना चाहते थे। लार्ड विलियम बेंटिक यह जानना चाहता था कि क्या सिंध नदी को जहाजरानी के लिए खोला जा सकता था? बर्न्ज को, जो महाराजा के लिए इंगलैंड के सम्राट् की ओर से उपहार ला रहा था, यह हिदायत दी गई थी कि वह देख कर सूचना दे कि सिंध नदी मे जहाज और बेड़े चल सकते हैं अथवा नहीं। सिंध के अमीरों ने बहुत कठिनाई से बर्न्ज को सिंध नदी से रास्ता दिया था। चार्ल्स मैटकाफ ने अंग्रेजों की इस चाल को अनुचित कहा था।

बर्न्ज ने रिपोर्ट दी कि सिंध नदी व्यापार के लिए अत्यंत लाभदायक है। इस रिपोर्ट के पश्चात् गवर्नर जनरल ने निश्चय किया कि सिंध नदी को भारतीय और यूरोपीय व्यापार के लिए खोलने के लिए संबंधित पक्षों को राजी किया जाए। अंग्रेज यह भी जानते थे कि जब तक लाहौर सरकार इस योजना से संबंधित नहीं होती तब तक यह योजना सफल नहीं हो सकती क्योंकि सिंध नदी सिंध के क्षेत्र में लगभग डेढ़ सौ मील तक बहती थी और पंजाब में से लगभग एक

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर, तृतीय पृष्ठ 93.

www.9009.co.in

हजार मील की लम्बाई में से निकलने वाली नदी उपयोग के क्षेत्र से बाहर रह जाती थी। किन्तु यह योजना महाराजा से गुप्त रखी गई। जब रणजीत सिंह रोपड़ में विलियम बेंटिक से मिला था तो उसने सुझाव दिया था कि सिंध के विरुद्ध कोई संयुक्त कारवाई की जाये पर बेंटिक ने कहा कि अंग्रेजों को सिंध में कोई दिलचस्पी नहीं है।

हैदराबाद का अमीर मुराद अली पोटिंगर के मिशन के बिलकुल विरुद्ध था। लेकिन पोटिंगर ने बहुत होशियारी से उसे समझाया कि सिंध के अमीरों के लिए यह उचित नहीं कि वह अंग्रेजों और अन्य पड़ोसी राज्यों को सिंध के बीच में से जहाजरानी की आज्ञा न दें। उसने मुराद अली को यह भी बताया कि वह अंग्रेजों को नाराज करके रणजीत सिंह की साजिशों का शिकार हो जाएगा और साथ ही उसने यह भी कहा कि खैरपुर, बहावलपुर व लाहौर के राज्य सिंध की जहाजरानी के लिए अंग्रेजों के साथ शामिल हो गए हैं। बड़ी कोशिशों के बाद पोटिंगर हैदराबाद और खैरपुर के साथ अलग-अलग संधियां करने में सफल हुआ। इन दोनों राज्यों के शासकों ने भारतीय व्यापारियों को सिंध नदी और सड़कों के द्वारा अपना माल ले जाने की आज्ञा दे दी। अंग्रेज व्यापारियों को सिंध में आबाद होने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया गया। महाराजा को जब अंग्रेजों की इन कारवाईयों की सूचना मिली तो उनके दिल पर इसका बहुत गहरा प्रभाव हुआ। महाराजा की सिंध के प्रति शंकाएं दूर करने के लिए कैप्टन वेड लाहौर गया पर रणजीत सिंह ने उसका बहुत ठंडा स्वागत किया। रणजीत सिंह ने वेड से पूछा कि सिंध में ऐसी कारवाईयां करके क्या अंग्रेज 1809 ई० की संधि को भंग करना चाहते हैं? वेड ने बहुत होशियारी के साथ महाराजा को अंग्रेजों की मित्रता का विश्वास दिलाया। किन्तु जहाजरानी संबंधी करों के विषय में कई प्रकार के मतभेद हो जाने से यह योजना सफल न हो सकी। बम्बई, कच्छ, मुलतान, बहावलपुर और सिंध के व्यापारियों को सिंध नदी में से अपना सामान ले जाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। सिंध नदी की जहाजरानी की योजना के आरम्भ में ही इसकी असफलता के बीज थे। सिंध के शासक इस योजना को मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हो रहे थे।

सन् 1836 से 1838 तक सिंध के विषय में खींचातानी चलती रही। लाहौर सरकार सिंध को अपने लिए इतना ही महत्वपूर्ण समझती थी जितना पेशावर और कश्मीर के क्षेत्रों को, और अंग्रेज धीरे-धीरे इसे पूर्णतया अपने अधिकार क्षेत्र में लाना चाहते थे। शिकारपुर सिंध का एक धनाढ्य व्यापारिक नगर था और यह हैदराबाद, मीरपुर और खैरपुर के संयुक्त अधिकार में था।

www.9009.co.in

लाहौर सरकार ने सन् 1820 से ही इसे अपने अधिकार में लेने का इरादा कर रखा था। सिंध के एक लुटेरे कबीले मजारी के लोग रणजीत सिंह के राज्य में लूटमार की कारवाईयां करते रहते थे। 1834 में लाहौर सरकार ने मजारियों के विरुद्ध सेना भेज कर उनके क्षेत्र को नष्ट कर दिया। मजारियों के सरदार बहराम खां ने मुलतान के सूबेदार सावनमल की अधीनता स्वीकार कर ली। 1836 में मजारियों ने पुन: लूटमार की कारवाईयां प्रारम्भ कर दीं। लाहौर सरकार ने समझा कि मजारियों से यह सब कुछ अंग्रेज करवा रहे हैं। महाराजा ने लाहौर में स्थित सिंध के वकीलों पर सख्त निगरानी आरम्भ कर दी। अंग्रेजों ने सिंध के मामले में जोरदार दखल देने और रणजीत सिंह को शिकारपुर की ओर बढ़ने से रोकने का निश्चय किया। रणजीत सिंह का दावा था कि शिकारपुर पेशावर के अधीन एक क्षेत्र था और पेशावर के शासक रणजीत सिंह के अधीन थे। अंग्रेज रणजीत सिंह के इस दावे से सहमत नहीं हुए लेकिन आकलैण्ड ने खुल्लमखुल्ला यह भी माना कि सिंध के संबंध में अंग्रेज रणजीत सिंह के साथ पूरा इन्साफ नहीं कर रहे। अंग्रेजों के जोर डालने पर रणजीत सिंह ने शिकारपुर के विरुद्ध अपनी कारवाई रोक दी किन्तु सिंध के विषय में महाराजा ने अपनी नीति नहीं बदली। इसके साथ-साथ महाराजा अंग्रेजों के साथ भी अपने संबंध नहीं बिगाड़ना चाहता था। अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को यह भी बता दिया कि चूंकि उनके सिंध के साथ मित्रतापूर्ण संबंध थे इस कारण सिंध पर आक्रमण की दशा मे अंग्रेज सरकार अवश्य हस्तक्षेप करेगी। सिंध से सिख सेना को वापिस बुलाये जाने से लाहौर सरकार को बहुत हानि पहुंची। महाराजा स्वयं भी इसके कारण बहुत परेशान रहा। उसके दरबारी उस पर दबाव डाल रहे थे कि वह अंग्रेजों के सामने बिलकुल न झुके किन्तु महाराजा अंग्रेजों से टक्कर नहीं लेना चाहता था। अंग्रेज सरकार ने रणजीत सिंह के विरुद्ध सिंध के शासकों की सहायता के लिए हैदराबाद में अपना रेजीडेंट नियुक्त किया और वहां उसके अधीन सेना भी रखी गई। अंग्रेज सरकार ने यह कह कर सिंध शासकों को अपने देश में अंग्रेजों की सेना रखने के लिए रजामंद कर लिया कि सेना रखने पर ही वे रणजीत सिंह से कह सकते थे कि सिंध अंग्रेजों की शरण में है। अंग्रेजों ने सिंध के शासकों को एक सामान्य संधि करने के लिए भी विवश किया और उन्हें यह भी बता दिया कि लाहौर दरबार से सिंध के वकीलों को भी वापिस बुलाना पड़ेगा और सिंध के अमीरों या शासकों को रणजीत सिंह के साथ सभी राजनैतिक बातें अंग्रेज सरकार के माध्यम से करनी पड़ेगी। सिंध के शासकों ने अंग्रेजों की सभी शर्तें मान लीं और अंग्रेज सरकार ने रणजीत सिंह पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह सिंध के मजारियों का क्षेत्र खाली कर दें जिससे

www.9009.co.in

महाराजा के सिंध के शासकों के साथ झगड़े निपटाये जा सकें। रणजीत सिंह इसके लिए राजी हो गये। सिंध के शासक अंग्रेजों के साथ हुई संधि से बच निकलना चाहते थे किन्तु अंग्रेजों ने उन्हें यह कह कर काबू में रखा कि यदि वे संधि की शर्तों का पालन नहीं करेंगे तो अंग्रेज रणजीत सिंह के विरुद्ध सिंध के शासकों की सहायता नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार अंग्रेजों ने सिंध को सिखों के अधिकार से बचा लिया और धीरे-धीरे सिंध अंग्रेजी साम्राज्य का शिकार हो गया।

फिरोजपुर की समस्या

फिरोजपुर अंग्रेजों के लिए हर दृष्टि से महत्वपूर्ण था। यहां बैठ कर अंग्रेज रणजीत सिंह को मालवा की ओर बढ़ने से रोक सकते थे। दूसरी ओर रणजीत सिंह फिरोजपुर को अपने अधीन रखना चाहता था किन्तु अंग्रेज इस पर से अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहते थे। इस लिए अंग्रेजों ने इस बात का पक्का फैसला कर लिया कि फिरोजपुर उनके अधिकार में ही रहेगा। मरे ने लिखा है कि लाहौर की राजधानी फिरोजपुर से मात्र चालीस मील की दूरी पर थी और केवल एक नदी ही पार करनी पड़ती थी। फिरोजपुर का किला अंग्रेजों के लिए बहुत लाभदायक था। इन बातों को ध्यान में रख कर सन् 1835 में अंग्रेजों ने फिरोजपुर शहर पर अधिकार कर लिया और 1838 में उसे छावनी में परिवर्तित कर दिया जिसके विरुद्ध लाहौर दरबार की ओर से बहुत सारी आपत्तियां की गई क्योंकि इससे अंग्रेज लाहौर के बहुत नजदीक आ गये थे। लेकिन अंग्रेजों पर इन आपत्तियों का कोई असर नहीं हुआ। रणजीत सिंह ने जवाबी कार्रवाई के रूप में कसूर में छावनी बनाने का निश्चय किया।

त्रिपक्षीय सन्धि (1838 ई०)

1836 के प्रारम्भ में लार्ड आकलैंड ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नया गवर्नर जनरल बन कर भारत आया। इन दिनों रूस और ईरान इकट्ठे होकर अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। इन दोनों देशों की सीमाएं अफगानिस्तान के साथ लगती थीं। रूस और इंगलैंड के मध्य शत्रुता थी। इसलिए अपने पड़ोसी देश अफगानिस्तान पर बढ़ रहा रूस का प्रभाव अंग्रेजों के लिए चिन्ता का कारण बन रहा था। इन दिनों में ही काबुल के बादशाह दोस्त मोहम्मद खां ने रूस के राजनैतिक एजेंट का बहुत गर्मजोशी से स्वागत किया था। अंग्रेजों ने अनुभव किया कि काबुल का बादशाह रूस की ओर झुकता जा रहा है। अंग्रेजों ने अलेग्जेंडर बर्न्ज को काबुल भेजा ताकि अंग्रेजों और अफगानिस्तान के बीच मित्रता की सन्धि हो जाय किन्तु दोस्त मोहम्मद ने ऐसी सन्धि के लिए एक आवश्यक शर्त यह रखी कि अंग्रेज रणजीत सिंह से पेशावर का क्षेत्र अफगानिस्तान

www.9009.co.in

को वापिस करवा दें । बर्न्स ने अफगानिस्तान की यह शर्त नहीं मानी और कहा कि पेशावर रणजीत सिंह के कानूनी अधिकार में है क्योंकि उसने पेशावर पर विजय प्राप्त की थी । किन्तु बर्न्स ने कहा कि यदि अफगानिस्तान रूस के साथ किसी प्रकार के सम्बन्ध न रखे तो वह पेशावर छोड़ने के लिए रणजीत सिंह पर दबाव डालेंगे । कैप्टन वेड ने भी रणजीत सिंह पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह अफगानिस्तान के प्रति शत्रुता की भावना को त्याग दे और पेशावर पर अपना अधिकार छोड़ दे क्योंकि पेशावर को लाहौर दरबार का भाग बनाये रखना एक बहुत ही खर्चीला और कठिन कार्य था किन्तु रणजीत सिंह अंग्रेजों की यह बात सुनने को तैयार नहीं था और न ही वह पेशावर पर अपना अधिकार छोड़ने को तैयार था ।

मैक्नौटन पहले दीना नगर और फिर लाहौर गया और उसने महाराजा को बताया कि अंग्रेज शाहशुजा को काबुल के सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं । इस कार्य के लिए उसने अंग्रेजों, शाहशुजा और लाहौर दरबार के मध्य एक त्रिपक्षीय सन्धि का सुझाव दिया । रणजीत सिंह इस प्रकार की सन्धि के पक्ष में नहीं था क्योंकि वह समझता था काबुल से दोस्त मोहम्मद खां को हटा कर शाहशुजा को उसके स्थान पर नियुक्त करने से अफगानिस्तान के सिंहासन पर अंग्रेजों का एक पिट्ठू बैठ जायेगा । महाराजा यह भी जानता था कि यदि वह इस सन्धि में सम्मिलित न हुआ तो भी अंग्रेज शाहशुजा को काबुल का बादशाह बनाने में सफल हो जायेंगे । रणजीत सिंह को यह भी भय था कि यदि अंग्रेज शाहशुजा के साथ सन्धि की अपेक्षा दोस्त मोहम्मद के साथ समझौता कर लें तो रणजीत सिंह की स्थिति और भी कमजोर हो जाएगी । रणजीत सिंह ने इस सन्धि में सम्मिलित होने के लिए कुछ शर्तें रखीं । पहली शर्त यह कि शाह सिखों की सेवा के लिए दो लाख रुपये वार्षिक कर देने का वचन दे । दूसरे, महाराजा अंग्रेजों से यह भी जमानत लेना चाहता था कि शाह शुजा काबुल का बादशाह बन कर लाहौर दरबार के साथ अच्छा व्यवहार करेगा । तीसरे, रणजीत सिंह ने सिन्ध के अमीरों से मिलने वाले बीस लाख रुपयों में से अपने मुनासिब हिस्से की मांग की और चौथे, महाराजा ने जलालाबाद और शिकारपुर के क्षेत्रों की मांग की ।

रणजीत सिंह की शर्तों के सम्बन्ध में मैक्नौटन ने कहा कि अफगानिस्तान के विरुद्ध आक्रमण के खर्चों के रूप से लाहौर सरकार के हिस्से का समुचित प्रबन्ध किया जाएगा और नये शाह के व्यवहार की जमानत दी जाएगी । सिन्ध के शासकों की ओर से मिलने वाले बीस लाख रुपये में से पन्द्रह लाख रुपये रणजीत सिंह को दिये जायेंगे । चौथी मांग के विषय में मैक्नौटन ने कहा कि

www.9009.co.in

जलालाबाद और शिकारपुर के क्षेत्र रणजीत सिंह को नहीं दिये जा सकते क्योंकि यह काबुल को जीतने का अभियान नहीं था। इसका सीमित उद्देश्य दोस्त मोहम्मद की जगह शाहशुजा को काबुल के सिंहासन पर बैठाना था।

अन्ततः 26 जून 1838 ई० को अंग्रेजों, सिखों और शाहशुजा के मध्य यह सन्धि हो गई। इस सन्धि की मुख्य धाराएं इस प्रकार थीं :

1. शाहशुजा और उसके उत्तराधिकारी सिन्ध नदी के दोनों ओर नदी के साथ लगते हुए क्षेत्र पर अपना अधिकार नहीं जतलायेंगे और पेशावर पर रणजीत सिंह का अधिकार मान लिया जायगा।
2. इस त्रिपक्षीय सन्धि के भागीदार देशों के किसी भी भगोड़े को बाकी के दो देशों में शरण नहीं दी जाएगी।
3. रणजीत सिंह को अपने फतेह गढ़ के किले के लिए खैबर की नदियों से से पानी लेने की इजाजत होगी।
4. शाहशुजा को सिन्ध के विषय में अंग्रेजों और सिखों के बीच हुए सभी समझौते स्वीकार होंगे।
5. सिन्ध के साथ लगते लाहौर दरबार के सभी क्षेत्रों पर रणजीत सिंह का अधिकार मान लिया जायगा।
6. ये तीनों ही शक्तियां एक दूसरे के साथ बराबरी के आधार पर व्यवहार करेंगी।
7. अफगानिस्तान के व्यापारियों को लाहौर अमृतसर के व्यापारिक केन्द्रों के साथ व्यापार करने की छूट होगी और लाहौर सरकार की ओर से उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होगी।
8. अफगानिस्तान और पंजाब के मध्य हर प्रकार के मिशनों का प्रबन्ध किया जायगा।
9. अफगानिस्तान और पंजाब—इन दोनों ही देशों में होने वाली बगावतों और बाहरी खतरों की दशा में एक दूसरे की सहायता करेंगे और एक देश के शत्रुओं को दूसरा देश अपना शत्रु समझेगा।
10. शाहशुजा को सिंहासन पर बैठाने के लिए रणजीत सिंह 5000 सैनिक देगा जिसके बदले में उसे दो लाख रुपये दिये जायेंगे।
11. शाहशुजा अंग्रेजों और सिखों की आज्ञा के बिना किसी देश के साथ राजनैतिक सम्बन्ध नहीं रखेगा।
12. अंग्रेज शाहशुजा की सहायता के लिए सेना नहीं भेजेंगे बल्कि सेना तैयार करने के लिए शाहशुजा को आर्थिक सहायता देंगे। पर सेना के प्रशिक्षण और नेतृत्व के लिए शाहशुजा को अंग्रेज अधिकारी दिये जायेंगे।

www.9009.co.in

रणजीत सिंह को ये सभी शर्तें स्वीकार थीं पर बाद में जब उसे यह पता चला कि शिकारपुर पर उसका दावा नहीं माना जाएगा और सिंध त्रिपक्षीय संधि की तीनों ही शक्तियों से पृथक रहेगा और जलालाबाद भी उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आ सकेगा तो उसने इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया किन्तु बाद में उसे अंग्रेजों की बात माननी पड़ी और 26 जून 1838 को इस पर हस्ताक्षर किये गये । भले ही इसके अनुसार अफगानों के उस क्षेत्र पर जो लाहौर दरबार के अधीन था रणजीत सिंह का पूरा दावा मान लिया गया था और अफगानिस्तान और पंजाब के मध्य व्यापार से दोनों को लाभ होने वाला था पर महाराजा इस संधि से संतुष्ट नहीं हुआ । स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण रणजीत सिंह अंग्रेजों के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने की स्थिति में नहीं था । डा० एन० के० सिन्हा के अनुसार रणजीत सिंह ने कई विरोधी परिस्थितियों के सम्मुख विवश होकर अपनी इच्छा के विरुद्ध इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे । डा० बी० जे० हसरत इससे सहमत नहीं है । उनकी मान्यता है कि रणजीत सिंह ने अपनी अस्वस्थता की चिन्ता करते हुए सन्धि की बातचीत में असाधारण कार्य शक्ति का परिचय दिया था और उसने अनुभव कर लिया था कि इस सन्धि के प्रस्ताव को मानने उसे बहुत सारे लाभ होने वाले थे और इसमें उसे अधिक उत्तरदायित्व भी नहीं लेना था ।[1] डा० हसरत का विचार पूरी तरह सही नहीं माना जा सकता । यह ठीक है कि रणजीत सिंह को इस सन्धि के द्वारा कुछ लाभ होने वाले थे परन्तु निश्चय ही वह अफगानिस्तान के साथ कोई लड़ाई नहीं छेड़ना चाहता था अंग्रेज के दबाव देने पर विवश होकर उसे सन्धि में सम्मिलित होना पड़ा था ।

रणजीत सिंह और अंग्रेजों के संबंधों का मूल्यांकन

इस विषय में निर्णय देने से पहले कुछ लेखकों की सम्मति पर विचार करना उचित होगा । डा० एन० के० सिन्हा के कथनानुसार रणजीत सिंह अपने जीवन के अंतिम दशक में एक अत्यन्त ही दयनीय, निराश्रय और साहसहीन व्यक्ति था और अंग्रेजों के प्रति उसने कोई प्रशंसनीय साहस या राजनीति नहीं प्रदर्शित की । अंग्रेजों के साथ टक्कर को टालने की जगह महाराजा को चाहिए था कि उनके साथ युद्ध कर लेता किन्तु उसने सदा ही झुकने की नीति अपनायी ।[2]

प्रो० सैयद अब्दुल कादिर के अनुसार रणजीत सिंह अपने सीमित साधनों के प्रति सचेत था । उसकी सेना और सैन्य-सामग्री में अंग्रेजों की अपेक्षा कम

1. B J. Harrat, Anglo-Sikh Relations, P. 172.
2. N K. Sinha, Ranjit Singh, PP. 88-89 (ed. 1945)

www.9009.co.in

थी। इसलिए उसने अंग्रेजों के साथ टक्कर लेने का मार्ग नहीं चुना। इस बात से ही उसकी राजनैतिक सूझ-बूझ प्रकट होती है। डा० जी० एल० चोपड़ा इस संबंध में लिखते हैं कि रणजीत सिंह अंग्रेजों की शक्ति से डरता था इसलिए उसने उनके प्रति सदा नरम नीति अपनाई। यह अंग्रेजों के प्रति किसी सच्ची और सहृदय भावना के कारण नहीं था जैसा कि कई लेखक समझते हैं।[1] सैयद मोहम्मद लतीफ के अनुसार रणजीत सिंह के भारत की अंग्रेज सरकार के साथ बहुत अच्छे संबंध थे। भले ही शुरू-शुरू में उसके मन में उनके विषय में अनेक शंकाएं उत्पन्न हुई थीं किन्तु इसके पश्चात् उसने अपनी मृत्युपर्यन्त अंग्रेजों के साथ अच्छे संबंध बनाये रखे।[2] सी० एच० पेन के अनुसार रणजीत सिंह ने अपनी मृत्यु तक इस तथ्य को अपनी आंखों से ओझल नहीं किया कि न केवल उसके राज्य की बेहतरी वरन् उसका अस्तित्व भी अंग्रेजों की मित्रता पर निर्भर था।[3]

इसी प्रकार अन्य कई लेखकों की सम्मतियां दी जा सकती हैं किन्तु उपरोक्त सम्मतियों से जो बातें सामने आती हैं, वे हैं –(1) उनकी अंग्रेजों के साथ मित्रता उनके हित में थी। (2) वह अंग्रेजों के मुकाबले अपने आपको बहुत कमजोर, लाचार और शक्तिहीन समझते थे और उन्होंने अंग्रेजों के प्रति कोई साहस या राजनीति प्रदर्शित नहीं की। (3) वह अंग्रेजों की महान् शक्ति से डरते थे। (4) वह एक बहुत बड़ा राजनीतिवेत्ता थे। अपनी सीमित शक्ति का उन्हें ज्ञान था वह स्थिति की वास्तविकता को समझते थे।

यह समझना सही नहीं है कि महाराजा ने अंग्रेजों के प्रति दुर्बल और समर्पण की नीति अपनाई थी। निस्संदेह महाराजा अंग्रेजों को एक शक्तिशाली, अधिक योग्य और श्रेष्ठतर एवं संगठित राज्य के स्वामी समझता था। जिनके सैनिक और आर्थिक साधन रणजीत सिंह के साधनों की अपेक्षा कहीं अधिक थे पर इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि रणजीत सिंह अपने आप को कभी भी अंग्रेजों से युद्ध करने के योग्य नहीं समझते थे। महाराजा ने अपनी सेना को ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना के बराबर ला खड़ा किया था। यह कहना भी उचित नहीं होगा कि रणजीत सिंह सदैव ही अंग्रेजों के साथ अपनी मित्रता को उत्तम समझते रहे थे और उस मित्रता के लिए अपने सभी हितों का बलिदान देने के लिए तैयार थे।

सन् 1827 के पश्चात् महाराजा को अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर से बहुत कठिनाइयां उठानी पड़ीं। दोस्त मोहम्मद जबरदस्ती पेशावर पर अपना

1. G.L. Chopra, Punjab as a Sovereign State, P. 48 (ed. 1960)
2. Muhammad Latif, History of the Punjab, P. 496 (ed. 1964)
3. C.H. Payne, A Short History of the Sikhs, P. 135 (ed. 1970)

www.9009.co.in

अधिकार जमाना चाहता था। अत: रणजीत सिंह को अंग्रेजों के विषय में प्रत्येक निर्णय करने से पहले उत्तर-पश्चिमी सीमा की समस्या को ध्यान में रखना पड़ता था। रणजीत सिंह फिरोजपुर के संबंध में या शिकारपुर के विषय में, जहाज-रानी की संधि के विषय में या त्रिपक्षी संधि पर हस्ताक्षर करने के विषय में निर्णय करने के साथ-साथ इस तथ्य को हमेशा ध्यान में रखता था कि अंग्रेजों के साथ युद्ध करना उसके हितों के विरुद्ध था। अत: अंग्रेजों के साथ लड़ाई लड़ने से पहले रणजीत सिंह का काबुल के बादशाह दोस्त मोहम्मद के साथ समझौता करना आवश्यक था, किन्तु यह समझौता पेशावर छोड़ देने के अतिरिक्त किसी भी तरह सम्भव नहीं था पेशावर छोड़ने की दशा में अफगान सिंध नदी पार करके महाराजा के राज्य में आ सकते थे। यदि रणजीत सिंह अंग्रेजों के साथ लड़ाई शुरू कर देते तो अफगान सरकार कश्मीर, अटक, डेराजात और मुलतान पर अधिकार करने के अवसर को कभी भी न गंवाती। इस प्रकार रणजीतसिंह व्यर्थ ही दो पाटों में पिस जाते। अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए रणजीत सिंह के लिए अफगानों की मित्रता आवश्यक थी पर वह उस मित्रता पर विश्वास नहीं कर सकता था। दूसरी ओर अंग्रेजों की मित्रता अमृतसर की संधि (1809) ई० से लेकर, एक प्रकार की परीक्षा से गुजरती रही थी। इसलिए अंग्रेजों के प्रति रणजीत सिंह की नीति निस्संदेह एक बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण और परिस्थितियों के अनुकूल थी। यदि महाराजा अपने जीवन में कभी भी इस नीति के विपरीत जाने का यत्न करता तो सम्भव था कि बहुत परिश्रम से बनाया उसका राज्य बरबाद हो जाता।

www.9009.co.in

पंचम अध्याय

रणजीत सिंह के राज्य का नागरिक और सैनिक प्रबंध

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य सत्ता सम्भालने के शीघ्र ही बाद उसने एक शक्तिशाली एवं केन्द्रित राज्य की आवश्यकता अनुभव की जो बाह्य और आंतरिक खतरों का सामना कर सके। उसने एक केन्द्रीय सचिवालय और एक मंत्रिमण्डल की स्थापना की किन्तु कोई संसद या विधानसभा स्थापित नहीं की गई। वह स्वयं सभी कानूनों और प्रबंध संबंधी कार्यों के लिए बनाये गये नियमों का स्रोत था।

यह सच है कि रणजीत सिंह अपने राज्य को विशेष संविधान नहीं दे सका। उसे कोई सम्पूर्ण शासन प्रणाली या शासन के प्रति कोई प्रमाणित नियम आदि विरासत में नहीं मिले। अट्ठारहवीं शताब्दी में सिख सरदार दशकों तक अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध में व्यस्त रहे। इन परिस्थितियों में कोई विशेष शासन प्रणाली लागू नहीं की जा सकती थी। रणजीत सिंह को एक राज्य बनाने और उसे मजबूत करने में पर्याप्त समय लगा। इसलिए उसने शासन प्रणाली को राज्य की आवश्यकता तक ही सीमित रखा। पर फिर भी इस संबंध में काफी कुछ किया गया था। अलेक्जैंडर बर्न्स जिसने रणजीत सिंह की सरकार के विषय में लिखा है, "एक संगठित क्षेत्र में उसने ऐसी उन्नति की ओर ध्यान दिया जो महान् व्यक्तियों के अंदर से उत्पन्न होती है। महाराजा के राज्य में बिना किसी सख्ती या निर्दयता के हम एक मानवीय राज्य को प्रफुल्लित होते देखते हैं। उसने अपनी शासन प्रणाली में कई ऐसी बातें शामिल कीं, जो इस देश के लिए बिलकुल नई थीं।"[1]

शासन के विषय में रणजीत सिंह के विचार

दयालुता पूर्ण शासन

शहामत अली जो रणजीत के समय लाहौर गया था, लिखता है कि लाहौर की सरकार पूर्णतया निरंकुश सरकार थी और विदेशी और आंतरिक मामलों में सम्पूर्ण दिशा-निर्देश महाराजा की ओर से मिलते थे। भले ही उसके अनेक दरबारी गहरी सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे जिनसे वह आवश्यकता अनुभव करने पर सलाह ले सकता था पर वह स्वयं एक जागरूक दिमाग का स्वामी था और उसे

1. Alexander Barnes, Travels into Prokhara Vol. I, P. 285.

www.9009.co.in

अपनी बुद्धि एवं निर्णय पर पूर्ण विश्वास था। वह बिना किसी की सलाह लिए बहुत सफलता के साथ अपना सरकारी कारोबार चला सकने में समर्थ था।[1] भले ही सारी राज्य सत्ता महाराजा के अपने हाथों में थी, पर वह दयालु और मेहरबान महाराजा था।

महाराजा की राजनैतिक शक्ति

रणजीत सिंह अपने राज्य में सबसे अधिक सत्ता का स्वामी बन गया था। उसके मुंह में से निकला शब्द राज्य के लिए कानून था। राज्य सत्ता के सारे अधिकार उसके हाथों में थे। देश के लिए कानून बनाने, युद्ध का ऐलान करने या युद्ध बन्द करने का निर्णय करने और लोगों पर कर लगाने व उन्हें हर प्रकार की सजा देने का अधिकार उसे प्राप्त था। उसकी प्रजा में से कोई भी व्यक्ति उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था। एक फ्रांसीसी यात्री विक्टर जैकमो जो महाराजा से लाहौर में मिला था, लिखता है—"उसकी प्रजा उसकी आज्ञा का जितना पालन करती थी उतना तो मुगलों की प्रजा उस समय भी मुगल बादशाहों (जब वे अपनी शक्ति के शिखर पर थे) की आज्ञा का पालन नहीं करती थी।"[2] रणजीत सिंह ने लाहौर का शासक बन जाने के पश्चात् भी अपनी प्रजा के साथ पूरा ताल-मेल बनाये रखने का यत्न किया। वह अपने लिए 'भाई साहब' का सम्बोधन सुन कर बहुत प्रसन्न होता था। उसके बहुत सारे साथी यह समझते थे कि रणजीत सिंह एक साधारण स्थिति से उठ कर महाराजा बना था और वह उन्हीं में से एक था। रणजीत सिंह भी स्वयं को अपनी प्रजा का एक अभिन्न अंग समझा था।

महाराजा और खालसा

महाराजा ने अपने नाम पर या अपनी मिसल और खानदान के नाम पर राज्य नहीं किया। उसने सारी राज्य सत्ता का उपयोग खालसा के नाम पर ही किया था। वह 'सिंह साहब' के सादे नाम से पुकारा जाना पसंद करता था एक किंवदंती के अनुसार एक बार प्रधानमंत्री ध्यान सिंह ने महाराजा से कहा कि वह अपनी कमर के आसपास सेवादारों की तरह से पटका न बांधा करें। महाराजा ने उससे पूछा, "राज्य में सिक्का किसके नाम का चलता है?" ध्यान सिंह ने उत्तर दिया कि गुरु नानक साहब के नाम का। महाराजा ने मुस्करा कर दिया कि देश का शासक वही है जिसके नाम का सिक्का चलता हो न कि रणजीत सिंह। महाराजा सदा यह महसूस करता था कि उसे गुरु महाराज की अपार कृपा के कारण पंथ की सेवा करने के लिए राज्य मिला था। वह सदा

1. Shahamat Ali, The Sikhs and Afghans. P. 14.
2. Jacquement, Letters from India, Vol. I Page. 399 (ed. 1835)

www.9009.co.in

अपने आपको गुरु और पंथ का सेवक समझता था। उसने कभी ऊंचे पद या उपाधियां धारण नहीं कीं। अपने लिए केवल 'सरकार' शब्द का ही प्रयोग किया। महाराजा शाहजादों को हमेशा "खालसा" के नाम से बुलाता था जैसे खालसा खड़क सिंह और खालसा शेर सिंह।

अपनी सरकार के लिए वह सदैव "खालसा जी" या "सरकार-ए-खालसा" के शब्दों का प्रयोग करता था। उसकी ओर से जारी होने वाले सभी पत्र खालसा के नाम जारी होते थे। उसके सिक्कों पर न तो उसकी तस्वीर थी और न ही नाम। भले ही रणजीत सिंह अपने राज्य में सर्वोच्च राज्यसत्ता का उपभोग करता था पर फिर भी उस पर कुछ पाबंदियां थीं। खालसा बहुत शक्तिशाली था और महाराजा सदा इसके सामने झुकता रहा क्योंकि गुरु गोविंद सिंह ने खालसा को महानता और पवित्रता प्रदान की थी। कुछ इतिहासकार खालसा पंथ के प्रति महाराजा के आदर को सही रूप से समझ नहीं सके। वे समझते हैं कि महाराजा खालसा पंथ का दिल से सम्मान नहीं करता था बल्कि केवल अपने स्वार्थ के लिए ऊपरी मन से आदर करता था। किन्तु यह विचार सच्चाई के विपरीत है। महाराजा सिख परम्परा की ही उपज था और खालसा पंथ और गुरु साहिबान के लिए उसके मन में अगाध श्रद्धा व सम्मान था। खालसा पंथ ने रणजीत सिंह के राज्य प्रबंध में दखल नहीं दिया क्योंकि वे जानते थे कि महाराजा पंथ की शान के लिए सभी कुछ कर रहा था। उसकी मृत्यु के बाद जब उसके उत्तराधिकारी खालसा या सिख आदर्शों की रक्षा करने में समर्थ नहीं रहे तो सैनिक पंचायतों ने राज्य प्रबंध में दखल देना शुरू कर दिया था।

रणजीत सिंह ने उस सिद्धांत को अस्वीकार किया था कि शासक कभी भूल नहीं करता। वह मानता था कि हर व्यक्ति भूल कर सकता है, केवल परमात्मा ही एक ऐसा है जो कभी भी भूल नहीं करता। लाहौर के फकीर परिवार के घर में और बहुत सारे रिकार्डों के अतिरिक्त दो फरमान भी सुरक्षित पड़े हैं जिनके द्वारा सैयद फकीर नुरुद्दीन और सरदार अमीर सिंह को यह अधिकार दिये गये थे कि यदि महाराजा, शाहजादों, प्रधानमंत्री या बड़े सरदारों की ओर से कोई ऐसा फरमान जारी होता है, जो लोगों के हित में न हो तो उसे तुरंत रोक दिया जाए। इतिहास में किसी भी बादशाह द्वारा जारी किए गए सम्भवतः यही दो फरमान ऐसे हैं जिनके द्वारा महाराजा ने अपनी आज्ञा लागू होने से रोकने का अधिकार अपने अधीनस्थ अधिकारियों को दिया हो।

प्रजा की भलाई

रणजीत सिंह को अपनी प्रजा की भलाई में गहरी दिलचस्पी थी। सन्

www.9009.co.in

1831 में बैनतूरा और लहणा सिंह मजीठिया को बहावलपुर के नवाब से बकाया कर वसूल करने का आदेश देते समय उन्हें यह हिदायत दी गई थी कि वे कमजोर लोगों का विशेष ध्यान रखें और इस बात को भी सामने रखें कि कोई व्यक्ति भी इन से तंग आकर अपना घर-बार छोड़ कर न चला जाय[1]। सन् 1833 में जब जमादार खुशहाल सिंह कश्मीर से बहुत सारा धन लेकर लाहौर पहुंचा तो उस समय कश्मीर में अकाल पड़ा हुआ था। महाराजा जमादार खुशहाल सिंह पर नाराज हुआ कि उसने वसूली के समय लोगों की तंगी का ध्यान नहीं रखा। महाराजा ने हजारों खच्चरों पर अनाज लदवा कर कश्मीर भेजा जो मस्जिदों और मंदिरों के द्वारा लोगों को बांटा गया।[2] अवीताबले (जो अबूताबेला के नाम से प्रसिद्ध था) पेशावर का सूबेदार था तो उसने नगर के खत्रियों से बहुत सा धन लिया था और उनके घर भी गिरा दिये थे। रणजीत सिंह ने अवीताबले को आज्ञा जारी की कि वह उनका धन वापिस लौटा दे और उन खत्रियों के संतुष्ट हो जाने का पत्र लेकर महाराजा को भेजे। जिनके घर गिरा दिये गये थे, अबूताबले अपनी जेब से पैसे खर्च करके उनके घर बनवा दे।[3]

रणजीत सिंह सदैव ही पराजित शासकों के प्रति बहुत उदारता से पेश आता था। उसके मन में कभी भी किसी के प्रति निरंतर बनी रहने वाली शत्रुता नहीं होती थी। जिन शासकों या सरदारों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली उसने उनके बढ़िया गुजारे का प्रबंध किया और राज दरबार में उन्हें मान-सम्मान भी दिया।

(अ) केन्द्रीय सरकार

रणजीत सिंह जब अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भ में क्षेत्रों को जीतने और विजित क्षेत्रों को मजबूत बनाने में व्यस्त था तो उसने पुराने राज्य प्रबंध को ही जारी रखा। पर समय बीतने पर अपने शासन प्रबंध में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता रहा।

सन् 1808 ई० में महाराजा ने भवानीदास की सेवाएं प्राप्त कर लीं जो उस समय काबुल के बादशाह शाहशुजा की सरकार में वित्त अधिकारी के रूप में कार्य कर रहा था। उसके पिता और दादा भी काबुल सरकार के वित्त विभाग में नौकरी करते रहे थे। काबुल का बादशाह किसी बात पर भवानी दास से नाराज हो गया। जब वह पंजाब की सीमा के साथ लगते क्षेत्र से कर वसूल करने के लिए इधर आया तो बच कर लाहौर आ पहुंचा। महाराजा ने उसे

1. सोहन लाल सूरी दफ्तर तृतीय, पृष्ठ 20-21.
2. अमरनाथ, पृष्ठ 225.
3. सोहन लाल सूरी, तृतीय, भाग-4, पृष्ठ 116.

www.9009.co.in

वित्त विभाग का प्रमुख अधिकारी नियुक्त कर दिया। भवानीदास की नियुक्ति से पहले रणजीत सिंह ने अपनी राजधानी में कोई सचिवालय स्थापित नहीं किया था। भवानीदास ने बहुत स्थानों पर खजाने खोले और आय-व्यय का विवरण रखने का प्रबंध किया। ऐसा लगता है कि उसने काबुल सरकार की शासन प्रणाली के अनुसार वित्त विभाग को स्थापित किया था। उसने केन्द्रीय प्रबंध को अलग-अलग भागों में बांट दिया और लाहौर में एक केन्द्रीय सचिवालय स्थापित किया। उसने सन् 1813 में दीवान गंगाराम को और 1815 में दीवान दीनानाथ को दिल्ली से मंगवा लिया। क्योंकि वित्त विभाग की सरकार को तुरंत आवश्यकता थी। इसलिए सारे राज्य की आय और व्यय का विवरण तैयार करने के लिए आवश्यक आंकड़े एकत्र किये गये।

अट्ठारहवीं शताब्दी में सिख सरदारों के राज्य में किसी लम्बे-चौड़े सचिवालय की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, केवल दीवान, तोशाखानियां और कुछ मुंशियों से ही सरकार का काम चल जाता था।

दीवान भवानीदास ने वित्त विभाग को कई भागों में बांट दिया था : –

1. **दफ्तर-ए-अबवाल-उल-माल**

यह विभाग राज्य की आय का हिसाब-किताब रखता था। यह चार भागों में विभाजित था।

(अ) **जमा-खर्च-ए-तालुकात या परगनाजात** :—इस भाग में परगनों और ताल्लुकों से वसूल किए जाने वाले भू-राजस्व का हिसाब रखा जाता था।

(आ) **बाजूहात-ए-मुकर्ररी** :—इस भाग में अदालती कर, दफ्तरी कर, आबकारी कर और अफीम, भांग, शराब व अन्य नशीली चीज़ों की बिक्री से होने वाले आय का हिसाब रखा जाता था।

(इ) **जमाखर्च-ए-संरात** : इसके अंतर्गत चुंगी कर, नमक की खदानों से आय आदि का हिसाब रखा जाता था।

(ई) **नजर व नजराना** : –इसमें उपहारों या अधीनस्थ शासकों से प्राप्त होने वाले करों और आय का विवरण रखा जाता था। नजरानों के अतिरिक्त महाराजा को बहुत सारी नजरें भी मिलती थीं। महाराजा के दरबार में जो कोई भी आता था वह नजर के रूप में कुछ न कुछ महाराजा को भेंट करता था और कई बार महाराजा के सिर पर से न्यौछावर आदि भी की जाती थी।

2. **दफ्तर-ए-अबवाल-उल-तहवील**

रणजीत सिंह ने सभी परगनों में छोटे खजाने स्थापित किये और वहां

www.9009.co.in

आवश्यक कर्मचारी नियुक्त किये। परगने के कर्मचारियों को परगने के स्थानीय खजाने में से ही वेतन मिलता था। इस स्थानीय खजाने के प्रभारी को तहवीलदार कहते थे। इस कार्यालय में तहवीलदारों की ओर से प्राप्त सारे विवरण रखे जाते थे।

3. तौजीहात

इस विभाग की दो बड़ी और बहुत सी छोटी शाखाएं थीं। एक शाखा में राज्य के सारे खर्चों का विवरण रखा जाता था जैसे दिये जाने वाले उपहार, नई खरीदी हुई चीजों, सरकारी इमारतों, हाथी, घोड़ों, जागीरों, लंगरों आदि संबंधी खर्च। इस विभाग की दूसरी शाखा जिसे दफ्तर-ए-मवाजिब कहते थे, वेतनों और पेंशनों का हिसाब रखती थी।

4. दफ्तर-ए-रोजनामचा

इस विभाग में प्रति दिन की आमदनी और खर्च का हिसाब रख जाता था।

5. दफ्तर-ए तोशाखाना

तोशाखाना स्टोर या एक कमरा था जहां दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तुएं सम्भाल कर रखी जाती थीं। यह कार्यालय भी दो विभागों में बंटा हुआ था।

(i) तोशाखाना खास और (ii) तोशाखाना बहला।

तोशाखाना खास के प्रभारी को तोशाखानिया कहा जाता था। उसके तोशाखाने में मूल्यवान वस्त्र, जेवर, सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात व दुर्लभ वस्तुएं रखी जाती थीं। तोशाखाने में ही सरकारी संधियां आदि के कागज़ात सम्भाल कर रखे जाते थे। कोहेनूर हीरा भी तोशाखाने की ही शोभा था। छोटे तोशाखाने में सामान्य उपयोग की वस्तुएं रखी जाती थीं जिन्हें महाराजा दरबार में आने वालों को उपहार के रूप में दिया करता था। छोटे तोशाखाने में सोने-चांदी के जेवर, पशमीने के वस्त्र और कश्मीरी शालें आदि रखी जाती थीं। तोशाखाने का बहुत सारा सामान अमृतसर के गोबिंद गढ़ किले में और लाहौर के शेखूपुर के किलों मे रखा जाता था। मिसर बस्ती राम और बाद में बेलीराम और अंत में मिसर मेघराज ने बड़ी कुशलता से तोशाखाने की देख-रेख की थी।

इन विभागों में इनके अतिरिक्त और भी अनेक छोटे-छोटे विभाग थे। कभी इन की संख्या बढ़ जाती थी और कभी दो विभागों को इकट्ठा करके एक विभाग बना दिया जाता था। जब शहामत अली रणजीत सिंह के राज्य के अंतिम दिनों में लाहौर गया तो उस समय रणजीत सिंह के सचिवालय में बारह कार्यालय थे।

लाहौर सरकार में बहुत बुद्धिमान और अनुभवी कर्मचारी और दरबारी थे।

www.9009.co.in

महाराजा

राज्य के नागरिक प्रबंध में प्रमुख राज्य सत्ता महाराजा के हाथों में थी। सरकार के सारे विभाग उसके अधीन थे और वह अपने राज्य में सब से शक्तिशाली व्यक्ति था। वह स्वयं ही अपने मंत्रियों, उच्च नागरिक और सैनिक अधिकारियों, सूबेदारों व कारदारों की नियुक्तियां करता था। वह लोगों की अपीलें सुनने के लिए अंतिम न्यायालय था। वह अपनी सेना का सर्वोच्च सेनापति भी था। उसने अपने सिर पर रखने के लिए कोई ताज नहीं बनवाया और न ही स्वयं को सुशोभित करने के लिए कोई सिंहासन बनवाया। उसने सदैव ही अपनी प्रजा के साथ अभिन्नता बनाए रखी।

मंत्रिमण्डल

रणजीत सिंह अपने मंत्रियों की नियुक्ति जीवन भर के लिए नहीं करता था। वह जब भी चाहता उन्हें बदल सकता था। वह किसी राज्य के किसी पद को पुश्तैनी नहीं बनने देना चाहता था। उसके मंत्री सदा उसके प्रति वफादार थे। मंत्रियों की नियुक्ति के लिए किसी शैक्षणिक योग्यता की कोई शर्त नहीं थी। मंत्री अपने विभागों की किसी नई नीति संबंधी निर्णय स्वयं नहीं कर सकते थे। उन्हें महाराजा से आदेश लेने पड़ते थे।

वज़ीर (प्रधानमंत्री)

राज्य के बड़े मंत्री को वज़ीर कहा जाता था। रणजीत सिंह ने ध्यान सिंह को उस पद पर नियुक्त करके उसे 'राजा' की उपाधि भी और बाद में उसे राजा-ए-कलां की उपाधि दी गई थी। प्रधानमंत्री राज्य के कार्यकलापों को सही ढंग से निपटाने के लिए महाराजा की सहायता करता था और अन्य मंत्रियों के कार्यों की निगरानी भी करता था। वह अपील और शिकायतें करने वालों को दरबार में महाराजा के सामने पेश करता था। वह सभी राजनैतिक मामलों में महाराजा को सलाह देता था। उसे महाराजा की ओर से अत्यधिक संरक्षण व शक्ति प्राप्त थी। सभी सरकारी कागजों को महाराजा के सामने प्रस्तुत करने से पहले राजा-ए-कलां उनकी पड़ताल करता था। महाराजा की ओर से दिये जाने वाली सारी आज्ञाओं का पालन प्रधानमंत्री के द्वारा होता था।

विदेशमंत्री

विदेशमंत्री लाहौर दरबार के विदेशों के साथ, विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कम्पनी, सिंध आदि के साथ संबंधों की निगरानी करता था। बहुत सारे पड़ोसी राज्यों के वकील लाहौर में रहते थे और उनके द्वारा उनकी सरकार के साथ बातचीत होती थी। फकीर अज़ीज़ुद्दीन महाराजा का विदेशमंत्री था। बाहरी

www.9009.co.in

देशों की ओर से आने वाले पत्र महाराजा को पढ़ कर सुनाए जाते थे। जो पत्र गुप्त रखने योग्य होते थे, महाराजा उन्हें एकांत में ही पढ़वाता था और जो गुप्त रखने योग्य नहीं होते वे दरबार में ही पढ़ कर सुनाए जाते थे। महाराजा उन पत्रों के उत्तर के संबंध में उसी समय आदेश दे दिया करता था और पत्र लिखे जाने के पश्चात् उन्हें भेजने से पहले स्वीकृति के लिए महाराजा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था।

दीवान (वित्त मंत्री)

दीवान राज्य का एक उच्चाधिकारी होता था जो राजस्व एकत्रित करने और सरकारी खर्च के सारे विवरणों की पूरी जानकारी रखता था। सभी विभागों के खर्च आदि संबंधी कागज पड़ताल के लिए पहले दीवान के समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे। भले ही सभी मामलों में महाराजा की राय के बिना कुछ भी नहीं हो सकता था पर खर्च संबंधी मामलों के विषय में दीवान की राय को शायद ही कभी नजरदाज किया जाता हो। दीवान अपने विभाग संबंधी अर्थात् आय-व्यय के विषय में प्रतिदिन की वास्तविक स्थिति से महाराजा को परिचित करवाता था। हर प्रकार के खर्च के लिए महाराजा की आज्ञा ली जाती थी।

दारोगा-ए-ड्योढ़ी

महाराजा ने अपने महलों के लिए एक मंत्री नियुक्त किया हुआ था जिसे सदर-ए-ड्योढ़ी या ड्योढ़ी वाला कहते थे। वह महाराजा के महलों के लिए पहरेदारों का प्रबंध करता था। उसकी आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति महलों के अंदर नहीं जा सकता था। महल के अंदर महाराजा की किसी से भेंट करवाना या न करवाना उसी के हाथ में था। महलों में होने वाली सभी रस्में और रीतियां भी उसी की देख-रेख में हुआ करती थीं। यह एक महत्वपूर्ण पद था और अत्यंत विश्वासपात्र व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त किया जा सकता था। सन् 1808 तक जमादार खुशहाल सिंह इस पद पर रहा और बाद में यह पद ध्यान सिंह को दे दिया गया। यह भी कहा जाता है कि 'ड्योढ़ी वाला' और 'वजीर' एक ही पद के दो नाम थे और ये दोनों ही पद पहले जमादार खुशहाल सिंह के पास थे और बाद में ध्यान सिंह के हाथों में चले गये।

रणजीत सिंह स्वयं ही अपनी सेना का रक्षामंत्री और सेनापति था। उसने अलग से किसी को युद्ध अथवा रक्षामंत्री नियुक्त नहीं किया था। अलग-अलग आक्रमणों के समय अलग-अलग व्यक्तियों को सेनापति नियुक्त करके भेजा जाता था। महाराजा के राज्यकाल में दीवान मोहकम चन्द, मिसर दीवान चंद और हरी सिंह नलुआ विभिन्न आक्रमणों में उसके सेनापति रहे। बड़े-बड़े आक्रमणों के प्रबंध की महाराजा स्वयं निगरानी करता था। उसने अपनी सेना के पुनर्गठन

www.9009.co.in

के लिए यूरोपीय जरनैलों को उच्च पदों पर नियुक्त किया था। महाराजा ने कुछ व्यक्तियों को जरनैल की उपाधि भी दी थी। सन् 1835 में वैनतूरा को जरनैल-ए-आज़म की उपाधि दी गई थी।

प्रान्तों का प्रबंध

महाराजा ने अपने राज्य को चार प्रान्तों में विभाजित किया हुआ था। (1) सूबा-ए-लाहौर (2) सूबा-ए-मुलतान (3) सूबा-ए-कश्मीर (4) सूबा-ए-पेशावर। पहाड़ी क्षेत्रों में वहां के पिछले शासकों से चौथवसूल करके अपने-अपने क्षेत्रों में ही नियुक्त कर दिया था। वे लाहौर दरबार को निर्धारित कर देते थे। आजकल के कुछ विद्वान समझते हैं कि शेष प्रान्तों की तरह लाहौर कोई प्रान्त नहीं था। यह पृथक्-पृथक् भागों में बंटा हुआ था और ये भाग अपने शासन में शेष प्रान्तों की तरह ही प्रबंध संबंधी अधिकारों का उपभोग करते थे। किन्तु समकालीन लेखों में लाहौर प्रान्त का बार-बार उल्लेख आता है और यह प्रान्त सीधे महाराजा के अधीन था।

सभी प्रान्तों को परगनों में विभाजित किया गया था। परगना आजकल के जिले की भांति होता था। हर परगना ताल्लुकों में बंटा हुआ था और हर ताल्लुके में पचास से सौ तक कस्बे या गांव होते थे। ताल्लुका आजकल की तहसीलों के समान माना जा सकता है। कई बार कुछ परगनों को एकत्रित करके बड़े परगने बनाये जाते थे जैसे जालंधर दोआब, कांगड़ा, वजीराबाद और गुजरात। इन बड़े परगनों को छोटे प्रान्त समझ लिया जाता था।

नाज़िम (सूबेदार)

प्रान्तों का प्रबंध चलाने की जिम्मेदारी नाज़िम या सूबेदार के जिम्मे होती थी। नाज़िम या सूबेदार महाराजा का प्रतिनिधि होता था। बहुत ही जिम्मेदार, बुद्धिमान और अनुभवी व्यक्तियों को नाज़िम नियुक्त किया जाता था। कई बार राजकुमारों को भी नाज़िम नियुक्त किया जाता था जिससे उन्हें शासन के संबंध में अनुभव प्राप्त हो जाए। किन्तु उनकी सहायता के लिए बहुत सुयोग्य सलाहकार और प्रबंधक नियुक्त किये जाते थे। नाज़िम आमतौर से नीचे की अदालतों की अपीलें सुनता था। जब कभी भी किसी नाज़िम को अयोग्य या अपने कर्त्तव्यों के प्रति असावधान देखा जाता था तो उसे तुरन्त हटा दिया जाता था। सामान्यत: नाज़िम की नियुक्ति बहुत लम्बे समय तक के लिए नहीं की जाती थी। कश्मीर में सन् 1819 से 1845 तक ग्यारह नाज़िम नियुक्त हुए थे। नाज़िम के पास बहुत सारे अधिकार थे किन्तु अपने प्रान्तों के विषय में महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले नाज़िम को महाराजा की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। प्रान्त में शांति-व्यवस्था बनाये रखना उसकी जिम्मेदारी थी।

www.9009.co.in

नाज़िम के पास एक छोटी-सी सेना भी होती थी। नाज़िम की नियुक्ति के समय महाराजा उसे विशेष हिदायतें देता था। उसे उसके काम, उसकी जिम्मेदारियां, अधिकारों और सीमाओं से परिचित करवाया जाता था।

नाज़िम को काफी भारी वेतन मिलता था। उदाहरणार्थ सुखदयाल को, जो सन् 1820 में मुलतान का नाज़िम था, 36000 रुपये वार्षिक वेतन मिलता था। अवीताबले के पेशावर का सूबेदार नियुक्त होने के समय उसे 41,000 रुपये वार्षिक वेतन मिलता था। जब दीवान कृपाराम को कश्मीर का नाज़िम नियुक्त किया गया तो उसे एक लाख रुपये वार्षिक वेतन दिया गया। यह उसका निजी वेतन या खर्च था। नाज़िम बहुत शान-शौकत से रहता था। महाराजा अयोग्य नाज़िम को तुरंत ही पदमुक्त कर देता था। असफल नाज़िमों को जेल यात्रा भी करनी पड़ती थी। बहुत सुयोग्य और लोकप्रिय नाज़िमों में देसा सिंह मजीठिया, लहणा सिंह मजीठिया, मिसर रूप लाल, मोहां सिंह और दीवान सावनमल के नाम लिए जा सकते हैं।

परगने का शासन प्रबंध

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि हर प्रान्त कई परगनों में बंटा हुआ होता था।

कारदार

यह परगने का एक महत्वपूर्ण अधिकारी था। कारदार की स्थिति उसके अधीन क्षेत्र के अनुसार बदलती रहती थी। कारदार आजकल के डिप्टी कमिश्नर की तरह होता था और अपने नित्य कामकाज के संबंध में प्रतिदिन लोगों के सम्पर्क में आता था। उसे कई प्रकार के कर्त्तव्य निभाने पड़ते थे। राजस्व एकत्रित करना, खज़ाने की पड़ताल करना और अपने क्षेत्र में लोगों को न्याय देना उसके कर्त्तव्यों में सम्मिलित थे। वह अपने अंतर्गत क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्तियों से मिलता-जुलता रहता था। महाराजा ने अपने राज्य में जगह-जगह पर अनाज के भण्डार स्थापित किये हुए थे और कारदारों का यह कर्त्तव्य होता था कि नई फसल आने पर वह आवश्यकतानुसार अनाज को इन भण्डारों तक पहुंचाने का प्रबंध करें। उदाहरण के लिए अमृतसर के क़िले गोबिंद गढ़ में 3000 मन अनाज का एक भण्डार रखा जाता था और अमृतसर के आस-पास के कारदारों को यह आदेश था कि वह आवश्यकतानुसार अनाज को गोबिन्द गढ़ के क़िले में पहुंचायें। जब सेनाएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती थीं तो उनकी आवश्यकतानुसार अनाज और खाने-पीने की वस्तुओं का प्रबंध कारदारों को ही करना पड़ता था कारदार की नियुक्ति के साथ उसे उसके कर्त्तव्यों और अधिकारों से परिचित करवाया जाता था और उन्हें विशेष हिदायत दी

www.9009.co.in

जाती थी कि उनके क्षेत्र में से कोई कृषक अपनी भूमि छोड़ कर बाहर चला जायेगा तो यह बात कारदार के विरुद्ध समझी जाएगी।

कारदार को पचास रुपये मासिक से लेकर डेढ़ सौ रुपये तक वेतन मिलता था। उसके वेतन का संबंध उस राजस्व के साथ था जो वह अपने क्षेत्र से एकत्रित करता था। कारदारों को अपने अंतर्गत क्षेत्रों में वस्तुओं के मूल्य भी नियत करने पड़ते थे।

कानूनगो

वह माल महकमे में एक महत्वपूर्ण कर्मचारी था। मुगलों के समय हर परगने में एक कानूनगो होता था। किन्तु सिख राज्य के समय कई बार दो या तीन कानूनगो भी होते थे। उपज के योग्य भूमि, भूमि का कब्जा, पैदावार, सरकारी हिस्सा और किसान की वस्तुओं के मूल्य के विवरण उसके कार्यालय में रखे जाते थे। उसके कार्यालय में ही किसानों से प्राप्त होने वाले लगान और उसकी वसूली का हिसाब रखा जाता था। मुगलों के समय कानूनगो को वसूली का दो प्रतिशत भाग उसके वेतन के रूप में दिया जाता था। रणजीत सिंह के समय उसे तीस रुपये मासिक वेतन मिलता था।

चौधरी, मुकादम और पटवारी

रणजीत सिंह के राज्य काल में हर परगना कई ताल्लुकों में और हर ताल्लुका कई सारे तपों में बंटा हुआ था। हर तपे मे लगान की वसूली के लिए एक चौधरी नियुक्त किया जाता था। रणजीत सिंह ने चौधरी के पद को पुश्तैनी नहीं होने दिया।

हरगांव में एक मुकद्दम (नंबरदार) होता था। कई बार तपों के चौधरी अपने-अपने गांवों के मुकद्दम भी होते थे। कई बार एक गांव में एक से अधिक मुकद्दम कार्य करते थे जिनकी नियुक्ति गांव की पातियों के अनुसार होती थी। चौधरियों और मुकद्दमों को उनकी सेवाओं के बदले में बिना लगान के जमीन दी जाती थी। 'खालसा दरबार' रिकार्ड में बहुत सारे उल्लेख मिलते हैं जहां हम देखते हैं कि रणजीत सिंह ने चौधरियों को माफी की जमीनें दी हुई थीं। उन्हें लगान की वसूली में से भी कुछ हिस्सा मिलता था। इन कर्मचारियों को वसूली में से प्रतिशत कमीशन देने का अक्सर उल्लेख मिलता है।

पटवारी का मुख्य कार्य अपने अधीनस्थ गांव के राजस्व का रिकार्ड रखना होता था। रणजीत सिंह के समय में एक तपे में तीन से लेकर आठ तक गांव होते थे और एक पटवारी सारे तपे का रिकार्ड रखता था। पटवारी को उसके अधीनस्थ गांवों में से हुई वसूली का एक से दो प्रतिशत तक हिस्सा मिलता था।

www.9009.co.in

गांव का प्रबंध

गांव जिन्हें मौजा कहा जाता था, राज्य-प्रबंध में सबसे छोटी इकाई था। गांव का मुकद्दम सरकार और गांव के मध्य में एक कड़ी का कार्य करता था। गांव का चौकीदार रात को पहरा देता था। गांव के बहुत सारे झगड़े गांव की पंचायत द्वारा तय होते थे। गांव के लोग सामाजिक बहिष्कार के भय से पंचायत के फैसलों को मानने के लिए विवश होते थे। यदि कभी कोई पंचायत के निर्णय को मानने से इन्कार करता था तो उसका उस गांव में रहना लगभग असम्भव ही हो जाता था।

लाहौर नगर का प्रबन्ध

लाहौर महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी था। यह नगर अलग-अलग मोहल्लों में बंटा हुआ था और मोहल्ले के कार्य प्रभारी को मोहल्लादार कहते थे जो मोहल्ले में शान्ति बनाये रखने के लिए जिम्मेदार होता था। वह अपने मोहल्ले के स्वास्थ्य व सफाई का भी ध्यान रखता था। नगर का कोतवाल या थानेदार अपने सिपाहियों की सहायता से रात में शहर की निगरानी करता था और नगर में शान्ति की व्यवस्था के लिए जिम्मेदार होता था। 20 दिसंबर, 1810 को महाराजा के पास सूचना पहुंची की पिछली रात डाकुओं ने लाहौर के कुछ सुनारों को लूट लिया है। महाराजा ने नगर के थानेदार बहादुर सिंह को आदेश दिया कि वह तुरन्त पड़ताल करे और डाकुओं को उनके सामने प्रस्तुत करे। यदि वह ऐसा न कर सका तो यह बात उसके विरुद्ध जाएगी। बहादुर सिंह ने 22 दिसम्बर को रिपोर्ट दी कि उसने डाकुओं को गिरफ्तार कर लिया है और वह दो या तीन व्यक्तियों को साथ लेकर आया। रणजीत सिंह ने थानेदार की इस कार्रवाई के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए कहा कि वह (थानेदार) डाकुओं के साथ लूटा हुआ माल भी उनके सामने हाजिर करे नहीं तो यह बात थानेदार के विरुद्ध समझी जाएगी।[1] इससे पता चलता है कि महाराजा राज्य में अमन-चैन रखने के लिए तुरन्त कार्रवाई करने के लिए सदा तैयार रहता था। कोतवाल के कार्यालय में प्रतिदिन नगर में आने वाले व बाहर जाने वाले लोगों का रिकार्ड रखा जाता था। मोहल्लेदार अपने गुप्त एजेंटों के द्वारा मोहल्ले के विषय में सारी जानकारी कोतवाल को पहुंचाता था। कोतवाल चीजों की बिक्री, तोल और माप आदि पर भी नजर रखता था। यह देखना भी उसका कर्तव्य था कि सरकार के बनाये हुए कानूनों का लोगों के द्वारा पालन हो रहा है अथवा नहीं। महाराजा अत्यधिक विश्वसनीय व्यक्ति को ही कोतवाल के

1. H.L.O. Garrett (Ed.) Events at the Court of Ranjit Singh pp. 12, 15.

www.9009.co.in

पद पर नियुक्त करता था। राज्य के बड़े-बड़े नगरों में कोतवाल नियुक्त किए गये थे। लाहौर नगर के लिए मंत्री के पद का एक प्रबन्धक नियुक्त किया गया था जिसे मंत्री का पद प्राप्त था। रणजीत सिंह के राज्य काल में अधिकतर समय यह कर्तव्य फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन के छोटे भाई फ़क़ीर नूरुद्दीन ने निभाया था।

महाराजा के स्थानीय शासन प्रबन्ध का मूल्यांकन

कुछ यूरोपीय लेखकों ने कारदारों का किसानों के प्रति व्यवहार के विषय में गलत राय बनाई है और किसानों से बहुत अधिक कर वसूल करने का दोष लगाया है, पर कुछ लेखकों ने कारदारों की कार्य प्रणाली की प्रशंसा भी की है। चार्ल्स मेसन ने न केवल केन्द्रीय पंजाब और इसमें सम्मिलित क्षेत्रों में प्रबन्ध की प्रशंसा की है वरन् दूर स्थान क्षेत्रों में सिखों के राज्य-प्रबंध को भी सराहा है। कनिंघम के अनुसार महाराजा ने किसानों पर भूमि कर का भार काफी हलका कर दिया था और यदि कोई सरकारी कर्मचारी कृषकों के साथ दुर्व्यवहार करता था तो उसे सजा दी जाती थी।[1] राजधानी के समीप के कारदारों और अन्य स्थानीय सरकार कर्मचारियों पर केन्द्रीय सरकारी की ओर से बड़ी निगरानी रखी जाती थी। सीमांत क्षेत्रों में भले ही सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्य पालन में किसी प्रकार की कमी कर जाते होंगे और लोगों के प्रति कठोर और निर्दयी हो सकते होंगे पर महाराजा लोगों की तकलीफों की ओर से या कर्मचारियों की ज्यादतियों की ओर से लापरवाह नहीं होता था। वह ज्यादतियों की जांच करके दोषी व्यक्ति को तुरन्त नौकरी से निकाल दिया करता था। महाराजा कृषकों के प्रति बुरे व्यवहार के लिए अपने बड़े से बड़े अधिकारियों बल्कि राजकुमारों तक को क्षमा नहीं करता था। महाराजा विभिन्न क्षेत्रों से अपने कर्मचारियों के व्यवहार और कृषकों की दशा के विषय में सूचनाएं मंगवाता रहता था। कई बार अपने जिम्मेदार दरबारियों को दूरस्थ क्षेत्रों का दौरा करने के लिए भी भेजता था। वह स्वयं भी अकसर बाहर जाता था। महाराजा ने छूट दे रखी थी कि कोई भी समीप से या दूर-दूर के गांवों में से सीधा महाराजा के दरबार में हाजिर होकर अपनी फरियाद कर सकता था। ऐसे फरियादियों को नीचे की अदालतों या अधिकारियों के द्वार खटखटाने की जरूरत नहीं थी। सावधानी के तौर पर महाराजा कारदारों व अन्य स्थानीय कर्मचारियों का जल्दी-जल्दी स्थानांतरण करता रहता था। महाराजा के राज्य-प्रबन्ध के विषय में पेन का कहना है—"इस में कोई भी खराबी क्यों न हो, यह एक स्थिर सरकार थी जिससे पंजाब के लोगों को निश्चय ही बहुत लाभ पहुंचा था। लोगों पर कर भले ही अधिक होंगे पर ऐसा नहीं था कि लोग उन करों के भार के नीचे दब गये थे। रणजीत

2. Cunnigham, A History of the Sikhs, P. 151 (ed, 1955)

www.9009.co.in

सिंह एक ऐसा शासक अवश्य था जो जानता था कि वह अपनी प्रजा को निर्धन बनाकर शक्तिशाली नहीं हो सकता था। यदि उसने करों के रूप में लोगों से कुछ लिया था तो उसके बदले में देश की आंतरिक सुख-समृद्धि और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा की शक्ल में उन्हें लौटाया भी बहुत कुछ था।[1]

आर्थिक प्रबंध

महाराजा रणजीत सिंह के समय कर प्रणाली बहुत साधारण थी। सरकार साल भर के लिए कोई बजट तैयार नहीं करती थी। लाहौर की सरकार अपने व्यय को सदा अपनी आय के अन्दर ही रखती थी। यदि कभी किसी कारण सरकार को कम आय होती थी तो वह अपने खर्चों को भी उसके अनुसार कम कर लेती थी। उस समय सरकारों में अपने लोगों से कर्ज लेकर अपने खर्च पूरे करने का रिवाज नहीं था।

भूमि कर प्रणाली

महाराजा की आय का सबसे बड़ा साधन भूमि का लगान था। सारे साधनों से होने वाली आय लगभग तीन करोड़ रुपए थी जिसमें से लगभग दो करोड़ रुपये भूमि कर के रूप में इकट्ठे होते थे। इस प्रकार राज्य की आय का अधिकांश भाग किसानों की ओर से ही प्राप्त होता था।

भूमि कर निर्धारण के ढंग

भूमि कर निर्धारित करने के लिए सरकार की ओर से निम्नलिखित ढंग व साधन उपयोग में लाये जाते थे :

1. बटाई प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार उपज की कटाई के पश्चात् सरकार कृषकों की उपज में से अपना निर्धारित भाग प्राप्त करती थी। यह प्रणाली पुराने समय से चली आ रही थी। इस प्रणाली के अंतर्गत सरकार अपना भाग उपज में से ले लेती थी। किसान की समूची अनाज की उपज में से उसकी सहायता करने वालों के हिस्से निकाल कर बाकी बचे अनाज को निर्धारित हिस्से के अनुसार सरकार और किसान के बीच बांटा जाता था। भले ही यह तरीका बहुत संतोषजनक था पर सरकार के लिए काफी महंगा भी था। क्योंकि सारे किसान एक ही समय पर अपनी फसलें काट लेते थे इसलिए सरकार को अपना हिस्सा लेने के लिए बहुत सारे कर्मचारी नियुक्त करने पड़ते थे जिससे आर्थिक रूप में सरकार पर बहुत बोझ पड़ता था।

2. कणकूत प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार किसान की उपज का उसकी खड़ी फसल से ही

1. Payne, A Short History of the Sikhs, P. 114.

www.9009.co.in

अनुमान लगा लिया जाता था और उसमें से सरकार का हिस्सा तय किया जाता था। रणजीत सिंह ने यह प्रणाली बड़े पैमाने पर सन् 1824 से लागू की थी। सरकार का हिस्सा नकद रुपयों में तय किया जाता था। इस तरीके के द्वारा उपज के रूप में हिस्सा लेने के स्थान पर धन के रूप में सरकारी हिस्सा लेने की प्रणाली शुरू की गई। रणजीत सिंह अपनी सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकारी हिस्सा नकदी के रूप में लेना पसंद करता था और इस कारवाई के लिए उसने अपने कर्मचारियों को हिदायतें जारी कर दी थीं। यह प्रणाली बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

3. नकद वसूली की प्रणाली

कई ऐसी उपजें थीं जिनमें न तो बटाई के और न ही कणकूत प्रणाली के तरीके ठीक बैठते थे। वहां बोई हुई फसल का अनुमान लगा लिया जाता था और प्रति कनाल या प्रति बीघा के हिसाब से सरकार उन फसलों में से अपना हिस्सा ले लेती थी। इस प्रणाली के अंतर्गत आने वाली फसलें गन्ना, कपास, मिर्च, सब्जियां आदि थीं। इन फसलों में सरकारी हिस्सा अंत में तय नहीं किया जा सकता था क्योंकि ये फसलें साथ-साथ ही उपयोग में आती रहती थीं।

बीघे पर आधारित प्रणाली

राज्य के कुछ भागों में बीघे को आधार मान कर उपज का अनुमान लगाया जाता था। उपज के विगत आंकड़ों को ध्यान में रख कर कारदार और उसके सहायक कर्मचारी बीघे की समूची पैदावार का अनुमान लगाते थे और उसके अनुसार सरकार अपना भाग ले लेती थी। सरकार अपने पास विवरण रखती थी कि किसी किसान की खेती में कितने बीघे जमीन है।

हल पर आधारित प्रणाली

कई बार भूमि कर हल के आधार पर तय किया जाता था। यह प्रणाली बीघे के आधार की प्रणाली जैसी ही थी। अंतर केवल इतना था कि इसके अनुसार उतनी जमीन को एक इकाई या यूनिट माना जाता था जितनी पर कोई किसान दो बैलों या एक हल के साथ खेती कर सकता था। एक हल के अंतर्गत लगभग पंद्रह एकड़ जमीन मानी जाती थी। यदि किसी किसान के दो हल चलते थे तो दो गुना भूमि कर लिया जाता था।

कुएं पर आधारित प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार जमीन का राजस्व नियत करने के लिए उनकी जमीन को एक इकाई माना जाता था जितनी को एक कुएं से पानी मिल सकता था। कुएं के द्वारा सिंचाई के अंतर्गत लाई गई जमीन का सही अंदाजा नहीं लग सकता था। इसलिए सरकार एक कुएं से पानी मिलने वाली जमीन का

www.9009.co.in

सामान्य-सा अनुमान लगा लेती थी और उस जमीन की उपज से उसमें से सरकारी हिस्सा तय कर लेती थी। इस प्रकार यदि किसी के पास दो कुएं होते थे तो उससे दो गुना और यदि किसी के पास तीन कुएं हों तो तीन गुना लगान वसूल किया जाता था। जहां नये कुएं खोदे जाते थे वहां कुछ समय के लिए किसानों की उपज में से सरकारी हिस्से की छूट दे दी जाती थी।

भूमि ठेका प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार एक बड़ा जमींदार या कोई बड़ा सरकारी अधिकारी राज्य सरकार के साथ एक ठेका करता था जिसके अनुसार वह निश्चित की हुई रकम सरकार को देता था। इस ठेकेदार को इजारादार कहते थे। क्योंकि बटाई और कणकूत की प्रणालियों में सरकार को अपना हिस्सा फसल की कटाई के पश्चात् मिलता था इसलिए सरकार की आय निर्धारित नहीं होती थी। इस कारण अपनी वार्षिक आय को निर्धारित करने के लिए महाराजा ने जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े बल्कि गांवों के गांव व जिलों के जिले ठेके पर बड़े इजारेदारों को दे दिये। उदाहरणार्थ कश्मीर का प्रान्त उसके नाजिमों दीवान चुन्नीलाल और दीवान कृपाराम के पास ठेके पर ही रहा था। दीवान चुन्नीलाल सन् 1824 में 27,50,000 रुपये देता था और 1826 में दीवान कृपाराम को यह प्रान्त छब्बीस लाख रुपये पर दिया गया था। इजारादारी प्रणाली के अंतर्गत एक गांव से लेकर प्रांत तक आ जाते थे। इजारेदारी प्रणाली केवल जमीनों पर ही लागू नहीं होती थी। हर प्रकार के कर एकत्रित करने का काम भी ठेकेदारों को ही दिया जाता था। कई बार नये जीते हुए क्षेत्र पुराने आंकड़ों के आधार पर इजारेदारों को दे दिये जाते थे। आम तौर पर इजारे की रकम राजस्व की रकम के लगभग ही होती थी। इजारेदार को अपने ठेके के रूप में थोड़ी-सी रकम बच जाती थी। महाराजा कोई भी क्षेत्र इजारे के रूप में किसी को देने से पहले उसके राजस्व का सही अनुमान लगवा लिया करता था। जैसे जरनैल वैनतूरा और दीवान सावनमल को भेज कर डेरा गाजी खां और झंग के राजस्व का सही अनुमान लगवा लिया था और इसके पश्चात् ये क्षेत्र इजारेदारों को दिये थे।[1] इजारेदार अपनी सम्पूर्ण आय का विवरण सरकार को देते थे। महाराजा के राज्य में जितने बड़े-बड़े इजारेदार थे वे उसकी सरकार में किसी न किसी पद पर कार्य भी करते थे। फकीर नूरुद्दीन, भाइया राम सिंह, राजा ध्यान सिंह, दीवान सावन मल और देसा सिंह मजीठिया जैसे सरदार बड़े-बड़े इजारेदार भी थे। किसान अपने इजारेदारों के विरुद्ध रणजीत सिंह के पास शिकायत भी कर सकते थे।

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तृतीय, पृष्ठ 231, 233.

www.9009.co.in

उपज में सरकार का भाग

रणजीत सिंह के समय भूमि कर या उपज में सरकार के भाग के विषय में लेखकों में मतभेद है। समकालीन लेखों से यह स्पष्ट पता चलता है कि सारे राज्य में किसी निर्धारित दर पर भूमि कर वसूल नहीं किया जाता था। यह विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की जमीन पर अलग-अलग लगता था। भूमि कर की दर निर्धारित करने के लिए जमीन की किस्म, कृषि की सुविधाओं और उपज को मण्डी तक पहुंचाने के साधनों को दृष्टि में रखा जाता था। यदि कोई जमीन अत्यधिक उपजाऊ होती थी और उसे पानी की सुविधा मिलती थी तो सरकार उस जमीन की उपज में से आधा भाग ले लेती थी। यदि जमीन कम उपजाऊ होती थी तो 2/5 से 1/3 तक हिस्सा वसूल किया जाता था। नई आबाद की गई जमीन पर कुछ वर्षों के लिए भूमि कर में छूट दे दी जाती थी। कई जगह भूमि कर उपज के 1/3 से 1/6 के बीच होता था। सरकार गैर-आबाद जमीन खेती के योग्य बनाने के लिए कृषकों को उत्साहित किया करती थी।

भूमि कर की वसूली

भूमि कर साल में दो बार वसूल किया जाता था और यह फसलों की कटाई के एक महीने के अंदर देना पड़ता था। आम तौर से चौधरियों की सहायता से गांवों के मुकद्दम सरकारी राजस्व एकत्रित करते थे। मुकद्दम या नंबरदार को उसके कमीशन के रूप में वसूली का पांच प्रतिशत भाग मिलता था। एकत्रित किया हुआ कर कारदार के द्वारा खजाने में जमा हो जाता था। यदि किसान को अपनी फसल बेचने में देर हो जाती है तो वह गांव के साहूकार से पैसे लेकर सरकार को अदा कर देता था और बाद में साहूकार को पैसे लौटा दिया करता था। रबी या आषाढ़ी खेती का भूमि कर मई या जून के महीने में दिया जाता था और खरीफ या श्रावणी का भूमि कर कार्तिक या मार्गशीर्ष में अर्थात् अक्तूबर या नवंबर में दिया जाता था।

समय पर लगान न अदा करने की दशा में सरकार की ओर से किसान को नोटिस जारी किया जाता था कि वह पन्द्रह दिन के अंदर अपना लगान जमा करा दे। यदि किसान नोटिस की परवाह नहीं करता था तो उसे जुर्माना भी कर दिया जाता था। यदि कभी कोई किसान भूमि कर बिलकुल भी नहीं दे सकता था तो भी उसकी फसल या जायदाद कुर्क नहीं की जाती थी। ऐसा लगता है कि सरकार धमकियां ही देती रहती थी और सजा देने के पक्ष में नहीं थी। यह तरीका पर्याप्त सफल रहा था। यदि फसल को किसी प्राकृतिक कारण से कोई हानि हो जाती थी तो सरकार की ओर से भूमि कर पूरा या आंशिक रूप में

www.9009.co.in

माफ कर दिया जाता था। इससे पता चलता है कि महाराजा भूमि कर माफ भी कर दिया करता था, घटा भी देता था और इसकी वसूली को स्थगित भी कर दिया करता था।

महाराजा कभी भी कृषकों के प्रति सहानुभूतिहीन नहीं हुआ। पंजाब में खेतीबाड़ी का काम अधिकतर जाटों के हाथों मे होता था। रणजीत सिंह स्वयं भी जाट होने के नाते जाट किसानों की कठिनाइयां भली भांति समझता था और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता था।

जागीरदारी प्रथा

रणजीत सिंह के राज्य काल में आम तौर पर गांव दो भागों में विभाजित थे। उनमें से एक को खालसा गांव कहते थे और दूसरे को जागीरदारी गांव। मुगलों के समय में भी सीधे सरकार के अंतर्गत रखी जाने वाली जमीन को खालसा जमीन कहा जाता था। खालसा गांव वे थे जिनकी भूमि कर सरकार एकत्रित करती थी और जागीरदारी गांव वे थे जो जागीरदारों को दिये गए थे और जिनका लगान जागीरदार इकट्ठा करते थे। सारे राज्य के लगभग 1/3 गांव जागीरों के रूप में और धर्मार्थ दिये हुए थे। अकेले जालंधर-दोआब में ही 2337 गांव जागीरदारों के पास थे और इनका लगान लगभग आठ लाख बनता था। बहुत सारी जागीरें ऐसे लोगों के पास थीं जो लाहौर दरबार की नौकरी में थे। सेवा जागीरें दो प्रकार की थीं। एक सैनिक सेवा के लिए और दूसरी नागरिक सेवा के लिए। जब कोई व्यक्ति सरकार की जरूरत पड़ने पर अपने घुड़सवारों के द्वारा सरकार की सहायता करता था तो उसे अपनी निजी सेवा और घुड़सवारों के लिए सरकार की ओर से जागीरें प्रदान की जाती थीं। इसी प्रकार अपनी निजी सेवाओं के लिए नागरिक जागीरें मिलती थीं। कई बार सैनिक जागीरदार सरकार की ओर से निर्धारित संख्या से कम घुड़सवार रखते थे। जो जागीरदार निर्धारित संख्या से कम घुड़सवार रखता था और अधिक घुड़सवारों की जागीर का सुख भोगता था उसे सजा मिलती थी। सन् 1829 में पड़ताल करने पर रणजीत सिंह को मालूम हुआ कि हरीसिंह नलुआ ने 600 की बजाय 450 घुड़सवार रखे हुए हैं। महाराजा ने सरकार की ओर से की गई अतिरिक्त अदायगी का अनुमान लगा कर उससे पांच लाख रुपया वापिस ले लेने के लिए कहा। किन्तु उसकी प्रार्थना पर उससे दो लाख रुपया वसूल करने का आदेश दिया। सरकार से निजी सेवाओं के बदले जागीरें लेने वालों में मंत्रियों से लेकर साधारण सेवक तक सम्मिलित थे। जागीरदार अपनी ही शर्तों पर अपने सैनिक भरती करते थे और कई बार जितना सरकार से ले लेते थे उससे कम ही सैनिकों को दिया करते थे। जागीरदार प्रायः अपने सैनिकों को उनके वेतन के

www.9009.co.in

रूप में कुछ जमीन दे दिया करते थे। जागीरदार अपने घोड़ों और पशुओं के लिए अपने मुजारों से घास ले लिया करते थे। जागीरदारों के परिवार में विवाह-शादी के अवसर पर भी बेचारे किसानों को उपहार देने पड़ते थे। जागीरदार मकान कर, नजराने और बेगारी भी लेते थे। जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् उसकी जागीर पुनः सरकार के पास चली जाती थी। कभी-कभी जागीरदार के उत्तराधिकारी से कुछ पैसे लेकर जागीर का कुछ भाग उन्हें दे दिया जाता था। हरी सिंह नलुआ की मृत्यु के पश्चात् उसकी सारी जागीर पर सरकार ने अधिकार कर लिया और उसके सारे हिसाब-किताब निपटाने के पश्चात् उसके पुत्र जवाहर सिंह को खानपुर के ताल्लुके में थोड़ी सी जागीर दे दी गई।[1]

कुछ लोगों को सरकार की ओर से पुरस्कार स्वरूप जागीरें मिलती थीं, जिनके बदले में सरकार उनसे भविष्य में किसी सेवा की आशा नहीं रखती थी। यह जागीरें आम तौर से उनकी पिछली सेवाओं के बदले में दी जाती थीं। कई बार गैर-आबाद जमीन को आबाद करने वालों को भी कुछ जागीर पुरस्कार के रूप में दी जाती थी, जैसे इलाहीबख्श ने एक गांव की गैर-आबाद जमीन को आबाद करने की इच्छा प्रकट की जिस पर महाराजा ने उसे आधा गांव जागीर के रूप में दे देने का ऐलान किया। कई बार महाराजा अपने नाते-रिश्तेदारों और परिचितों को गुजारे के लिए जागीर देता था जैसे कुंवर खड़क सिंह की मां और कुंअर कश्मीरा सिंह की मां को भारी गुजारा-जागीरें मिली हुई थी।[2] इसी प्रकार पराजित हुए शासकों को उनके गुजारे के लिए सरकार की ओर से जागीरें दी गई थीं।

महाराजा ने कुछ मुआफी जागीरें, धर्म स्थानों और धार्मिक व्यक्तियों को दे रखी थीं। धर्मार्थ जागीरें ग्रंथियों, अरदासियों, गुरुद्वारों, मंदिरों और सूफियों के तकियों के नाम की गई थीं। महाराजा ने बहुत सारे गांव बेदियों और सोढियों को भी दिये हुए थे। बेदी गुरु नानक के उत्तराधिकारी और सोढी गुरु गोविंद सिंह जी के खानदान के उत्तराधिकारी थे। सिखों में बेदियों और सोढियों का बहुत सम्मान है। महाराजा ने साहिब सिंह बेदी को ऊना के समीप 72 गांवों की जागीर दे रखी थी। इसी प्रकार करतारपुर के साधु सिंह के नाम भी एक बड़ी जागीर लगाई गई थी। उसके पिता सोढी बडभाग सिंह को बूटे शाह ने "साहिब-ए-जागीरो-मुल्क" लिखा है। सोहनलाल सूरी ने भी लिखा है कि रणजीत सिंह ने बडभाग सिंह सोढी को 'दस्तारे-सरदारी-उ-रियासत' की उपाधि प्रदान कर रखी थी। इस प्रकार बहुत सारे निहंगों और अकालियों को भी

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तृतीय, पृष्ठ 417.
2. वही, पृष्ठ 314, 581.

www.9009.co.in

जागीरें दी हुई थीं। ज्वालामुखी मंदिर के पण्डों को भी लाहौर दरबार की ओर से जागीरों के पट्टे प्राप्त हुए थे। अन्य लोगों की तरह मुसलमान भी ऐसी धर्मार्थ जागीरों के पात्र थे। उदाहरणार्थ पेशावर पर अधिकार कर लेने के पश्चात् महाराजा ने काजियों, सैयदों, आलिमों और फकीरों को बुला कर सिरोपा और दुशाले दिये और वे सब उसी प्रकार कायम रहने दी गई।[1]

सिख जागीरदारों ने भी धर्मार्थ जागीरें देने की प्रथा चला रखी थी। यह धर्मार्थ जागीरें सिखों की उस आदरपूर्ण भावना के अनुकूल थीं जो वे पवित्र व्यक्तियों और पवित्र स्थानों के लिए अपने मन में रखते थे।

अन्य कर

1. सीमा कर

भूमि कर के अतिरिक्त कुछ अन्य कर भी लगाये जाते थे, भले ही उनसे सरकार को पर्याप्त आय नहीं होती थी। व्यापारियों को उन सभी वस्तुओं पर जो एक नगर से दूसरे नगर में भेजी जाती थीं, कर देना पड़ता था। लोगों की आम इस्तेमाल में आने वाली चीजें भी इस कर प्रणाली की लपेट में आती थीं। सीमा कर से सरकार को लगभग 15 लाख रुपये की आय होती थी।

2. सरकारी एकाधिकारी वाली वस्तुओं से आय

सरकार ने कुछ चीजें बनाने व बेचने का अधिकार केवल अपने पास ही रखा हुआ था जैसे नशे वाली दवाइयां, शराब, नमक आदि। खदानों में से नमक निकाल कर बेचने का अधिकार केवल सरकार को ही था। कई बार सरकार अपनी देख-रेख में खदानों में से नमक निकलवाती और बेचती थी और कई बार खदानों में से नमक निकालने और बेचने का काम ठेके पर दे दिया जाता था।

मोहराना और जुर्माना

सभी सरकारी कागजों पर सरकारी मोहर लगवानी पड़ती थी। इसके लिए प्रार्थी को मोहर लगवाने की फीस देनी पड़ती थी। इससे सरकार को कुछ आमदनी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त दोषियों से जुर्माना वसूल करने की प्रथा के कारण न्याय विभाग सरकार के लिए आय का एक बड़ा साधन था।

कुछ छोटे कर : कुछ छोटे करों को जो जमीन के लगान के साथ वसूल किये जाते थे, अबवाब कहा जाता था। यह भूमि कर का 5 से 15 प्रतिशत तक होते थे। नजर और त्यौहारों के लिए वसूली भी इन अबवाबों में ही सम्मिलित थी।

पेशावर : महाराजा यह चाहता था कि उसकी प्रजा का हर व्यक्ति अपनी हैसियत के अनुसार सरकारी खजाने में कुछ न कुछ हिस्सा डाले। इस

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तुवारीख, पृष्ठ 253.

www.9009.co.in

लिए उसने हर प्रकार के कारीगरों जैसे लोहारों, बढ़इयों, जुलाहों, चमारों, नाइयों, कुम्हारों, दर्जियों आदि पर कर लगा रखा था।

सरकारी खर्च

महाराजा के राज्य-काल में कोई बाकायदा बजट तैयार नहीं किया जाता था। अलग-अलग साधनों से मिलने वाले धन को आवश्यक मांगों पर खर्च करने की व्यवस्था की जाती थी। सरकार को अपनी आमदनी का मोटे तौर पर अनुमान होता ही था। व्यय विशेष रूप से शाही महलों, राज्य-प्रबंध, सेना, धर्मार्थ कामों, खेती बाड़ी की उन्नति और किसानों की भलाई और पुरस्कारों व उपहारों पर ही किया जाता था। शासन प्रबंध के खर्च में सरकारी कर्मचारियों, मंत्रियों, नाजिमों और अन्य उच्चाधिकारियों के वेतन सम्मिलित थे। शहामत अली के अनुसार लाहौर दरबार की कुल वार्षिक आमदनी 3,02,27,762 रुपये थी जिससे 1,27,96,482 रुपये सेना पर खर्च होते थे और शेष नागरिक शासन-प्रबंध पर। महाराजा निजी तौर पर एक साधारण व्यक्ति की तरह रहता था पर उसके परिवार और महलों में रहने वालों का बहुत भारी खर्च था। उसकी रानियों और बच्चों पर लाखों रुपये खर्च होते थे। उनके लिए भारी जागीरें, बड़े महलों, हीरे, जवाहरात और बहुत बहुमूल्य गहनों, वस्त्रों और आने जाने के साधनों पर बहुत खर्च किया जाता था। इन सब का सरकारी खजाने पर काफी बोझ पड़ता था। महाराजा विदेशी यात्रियों और दूसरी सरकारों के एजेण्टों तथा मिलने आये अनेक व्यक्तियों को उपहारादि देकर भेजता था। महलों आदि के अतिरिक्त किलों और बहुत सारे बाग-बगीचों की देखभाल में भी सरकार को बहुत खर्च करना पड़ता था। महाराजा सिख, हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक स्थानों को भारी सहायता देता था और सभी धर्मों की पुजारी श्रेणी भी महाराजा के दान के पात्र थे। इन बातों का उल्लेख समकालीन लेखों में बार-बार मिलता है।

रणजीत सिंह की न्याय प्रणाली

कानून

महाराजा ने सन् 1799 में लाहौर पर अधिकार करने के शीघ्र बाद ही अपनी राजधानी में न्याय प्रणाली को संगठित करने की ओर विशेष ध्यान दिया। उस समय लाहौर में मुसलमानों की संख्या काफी थी। इसलिए महाराजा ने मुसलमान निवासियों के लिए काजियों और मुफ्तियों के अंतर्गत पृथक अदालतें स्थापित कर दीं जो मुसलमानों के लिए शरई कानून के अनुसार विवाह, तलाक और जायदाद के मामलों के फैसले करती थीं। परन्तु रणजीत सिंह ने हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों को अपने रीति रिवाजों या अपने क्षेत्र के रिवाजों के अनुसार फैसले करने की आज्ञा दे दी थी। कुछ लोग भूलवश महाराजा के न्याय

www.9009.co.in

विभाग को मुगलों के न्याय विभाग से भिन्न नहीं समझते। किन्तु मुगलों का न्याय-प्रबंध विशेष रूप से इस्लामी असूलों पर आधारित था। महाराजा ने अपने कानून में पंजाब के नये सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के द्वारा आए बदलाव को भी ध्यान में रखा। बहुत सारे लोग अपने प्रचलित क्षेत्रीय रीति-रिवाजों के अनुसार ही अपने झगड़ों के फैसले करवाना पसंद करते थे।

चूंकि आम लोग अनपढ़ थे, इस कारण उनका काम-काज और लेन-देन आम तौर से मौखिक वायदों पर ही आधारित होते थे। लोग अपने इष्ट की कसम खाकर गवाही देते थे। आम तौर से सिख गुरु ग्रन्थ साहिब की, हिन्दू गंगा की और मुसलमान कुरान पाक की कसम खाते थे। न्यायाधीश निर्णय देने में अपनी मनमर्जी नहीं कर सकता था। हर मामले के संबंध में प्रचलित कानूनी मर्यादा का हर किसी को ज्ञान होता था। काजी या न्यायाधीश उस मर्यादा को भंग नहीं करते थे। न्यायाधीश भली प्रकार जानते थे कि उनके फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालयों में अपील हो सकती है। यदि ऊपर जाकर फैसला उनके किये हुए फैसले के विपरीत हो जाता था तो इससे उनकी ख्याति पर प्रभाव पड़ता था और अच्छी ख्याति न रखने वाले न्यायाधीशों को महाराजा निस्संकोच सेवामुक्त कर देता था।

अदालतें

महाराजा रणजीत सिंह के राज्यकाल में लोगों को कई अदालतों से न्याय प्राप्त होता था। गांवों में पंचायतें बनी हुई थीं। गांव की पंचायत न्याय विभाग की सबसे प्रारम्भिक किन्तु महत्वपूर्ण अदालत थी। ये पंचायतें लोगों के द्वारा ही बनाई जाती थीं और उन्हें सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त होती थी। उनके निर्णयों का सम्मान किया जाता था। आम तौर पर यह पांच सदस्यों की एक सभा होती थी। पंचायत का सदस्य बनने के लिए किसी प्रकार की कोई शर्तें नहीं थीं। पंच केवल गांव का निवासी हो और ईमानदारी व सच्चाई के लिए प्रसिद्ध हो। लोगों का पंचायत में विश्वास था और वे 'पंचों' में 'परमेश्वर' समझते थे। गांव के लोग पंचायत के निर्णय को अस्वीकार नहीं कर सकते थे क्योंकि पंचायत का फैसला न मानने की दशा में उनका सामाजिक बहिष्कार हो सकता था। आम तौर से पंचायतों के फैसले सर्वसम्मति से होते थे।

बड़े शहरों में काजियों की अदालतें भी स्थापित की गई थीं। मुगलों के राज्यकाल में काजी या मुफ्ती इस्लामी शहर के अनुसार अपने मुकद्दमों के फैसले करते थे। महाराजा ने काजी का पद बनाये रखा। जहां मुगलों के काल में काजी के पद पर केवल मुसलमानों को ही नियुक्त किया जाता था वहीं रणजीत सिंह ने मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दुओं और सिखों को भी इस पद पर नियुक्त

www.9009.co.in

करना प्रारम्भ कर दिया। महाराजा के समय काजी का शब्द मुंसिफ या मजिस्ट्रेट के लिए प्रयुक्त किया जाता था। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि रणजीत सिंह काजियों की नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर ही करता था न कि धर्म के आधार पर। जनरल बैनतूरा भी कुछ समय के लिए लाहौर का काजी रहा था। कनू नाम के एक हिन्दू के भी काजी के पद पर कार्य करने का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार सभी धर्मों के अनुयायी इस पद पर कार्यरत थे।

कारदार भी, जो परगने का एक महत्वपूर्ण अधिकारी था लोगों को न्याय देने के लिए अपनी अदालत लगाता था जहां वह दीवानी और फौजदारी मुकद्दमे सुनता था। नीचे की अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध भी अपीलें उसके पास पेश होती थीं।

सरकार ने बड़े शहरों में जैसे लाहौर, अमृतसर, जालंधर, मुलतान और पेशावर में न्यायाधीश नियुक्त कर रखे थे जो नीचे की अदालतों के विरुद्ध अपीलें भी सुनते थे और नये मुकद्दमे भी उनके सामने प्रस्तुत किये जाते थे। महाराजा न्यायाधीशों को नियुक्त करते समय उन्हें अपने फैसले देने में न्याय, सच्चाई और इमानदारी को सदा सामने रखने के लिए विशेष हिदायतें दिया करता था। नाजिम की अदालत में नीचे की अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें पेश होती थीं।

महाराजा ने लाहौर में 'अदालत-ए-आला' स्थापित की थी जो उसके राज्य की सर्वोच्च अदालत थी जिसे वर्तमान समय के हाई कोर्ट के बराबर समझा जा सकता है। इस अदालत के मुख्य न्यायाधीश और शेष न्यायाधीशों के नाम हमें समकालीन लेखों में प्राप्त होते हैं। मुजहर अली मुख्य न्यायाधीश था और अन्य न्यायाधीशों में नसीरुद्दीन, शिवदयाल, और राम सिंह सम्मिलित थे। मुख्य न्यायाधीश को अस्सी रुपया मासिक वेतन मिलता था और बाकी न्यायाधीशों को पैंतालीस रुपया मासिक मिलते थे। अदालत-ए-आला में नियुक्त न्यायाधीशों के लिए आवश्यक योजनाएं क्या थी और वे किस कानून का उपयोग करते थे, इसका पूरी तरह से पता नहीं चलता। यह अदालत कारदारों और नाजिमों के विरुद्ध भी अपीलें सुनती थी।

महाराजा सभी अपीलों के लिए अंतिम अदालत थी। वह नये केस भी सुनता था और तुरंत फैसला देने का यत्न किया जाता था। महाराजा तक अपना केस पहुंचाने के लिए आवश्यक नहीं था कि व्यक्ति नीचे की सभी अदालतों में से होकर महाराजा की अदालत तक पहुंचे। यदि कभी कोई केस बहुत संगीन होता था तो वह सीधे ही महाराजा तक ले जाया जा सकता था। परन्तु

www.9009.co.in

महाराजा की अदालत तक पहुंचना कोई आसान काम नहीं था। महाराजा के सामने पेश होने वाले हर केस पर प्रधानमंत्री ध्यान सिंह विचार करता था और जो केस उसके अपने स्तर पर ही निपट सकता था उसे निपटा दिया जाता था। यदि कोई केस बहुत गम्भीर नहीं होता था तो वह महाराजा के सामने प्रस्तुत नहीं होने दिया जाता था। महाराजा दिन में बीस या पच्चीस मुकद्दमे सुन सकता था और इसके अनुसार ही पेश किये जाने वाले मुकद्दमों की सूची तैयार होती थी। सुबह के समय जब महाराजा घोड़े पर चढ़ कर बाहर सैर के लिए जाता था तो फरियादी लोग सैर के समय उसे मिल कर अपनी फरियाद कर सकते थे। महाराजा लोगों को न्याय देने के लिए सदा ही उत्सुक रहता था। वह यह अनुभव करता था कि प्रजा को न्याय देना किसी भी शासक का सबसे पहला कर्तव्य होता है। महाराजा कई बार नीचे की अदालतों के फैसलों को पूरी तरह रद्द कर देता था। यदि किसी मुकद्दमे में अतिरिक्त जानकारी की आवश्यकता होती तो महाराजा तुरंत वह जानकारी प्राप्त कर लेता था और स्थानीय न्याय विभाग से मुकद्दमों की रिपोर्टें भी मांग लेता था। प्रजा को न्याय देना वह अपना धर्म समझता था। महाराजा ने अपने महल के बाहर एक संदूक रखवाया हुआ था जिसमें लोग अपनी शिकायतों के विषय में प्रार्थना-पत्र डाल सकते थे। उस संदूक की चाबियां महाराजा के पास होती थीं। वह उस संदूक को अपने सामने खुलवा कर फरियादियों की शिकायतों के विषय में जानकारी प्राप्त करता था और उन्हें शीघ्र से शीघ्र न्याय दिलवाता था।

सजायें

रणजीत सिंह के समय दण्ड संहिता पर्याप्त उदार थी। महाराजा ने अपने राज्य में से मृत्यु की सजा समाप्त कर दी थी। अपराधियों को सामान्य प्रचलित सजायें ही दी जाती थीं जिनके विषय में लोगों को पूरी जानकारी होती थी। कत्ल के मामलों में भी जुर्माना ही होता था और बार-बार जुर्म करने वालों के लिए महाराजा सजा को शरीर के अंग काट देने तक सीमित रखता था। रणजीत सिंह ने अपनी दंड संहिता में बहुत सुधार किया। उसकी सदा यही कोशिश होती थी कि दोषियों का सुधार करके उन्हें अच्छा नागरिक बनाया जाए, न कि उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाए। जुर्म करने से बाज न आने वालों और बार-बार अपराध करने वालों को कठोर सजा दी जाती थी जैसे लोहा गर्म करके माथे को दाग देना, उबलते हुए पानी में दोषी की उंगलियां आदि डलवाना और हाथ-पांव काट देना। पर ऐसी कठोर सजायें कभी-कभार ही अपराधों से न टलने वाले दोषियों को दी जाती थीं। मुकद्दमा दर्ज करवाते समय कोई कोर्टफीस नहीं लगती थी पर फैसला होने के समय दोषी और फरियादी दोनों से कुछ पैसे लिए जाते थे। दोषी जुर्माने के रूप में और फरियादी से शुकराने के रूप में।

www.9009.co.in

यदि किसी का चोरी हुआ माल बरामद हो जाता था तो बरामद हुए माल का चौथा भाग सरकार ले लेती थी। इस प्रकार न्याय विभाग को सरकार ने अपनी आमदनी का साधन भी बनाया हुआ था। भले ही महाराजा न्याय विभाग के प्रति सदा जागरूक रहता था पर फिर भी वह अपनी न्याय प्रणाली से पूर्णतया सतुष्ट नहीं था। वह इसे यूरोपीय नमूने पर ढालना चाहता था। सोहनलाल सूरी के कथनानुसार महाराजा विदेशियों, विशेष रूप से यूरोपियनों से मिलने पर उनके न्याय विभाग के विषय में सदा बातचीत करता था।[1]

कहा जाता है कि महाराजा ने बहादुर सिंह हिन्दुस्तानी को एक नई दण्ड संहिता तैयार करने के लिए नियुक्त किया था। सोहनलाल सूरी इस कार्य में उसका सहायक था परन्तु यह कार्य पूरा न हो सका। रणजीत सिंह ने कुंवर शेर सिंह को अंग्रेजों की न्याय प्रणाली के विषय में प्रशिक्षण दिलवाया था।

कुछ विदेशी लेखकों ने रणजीत सिंह के समय प्रचलित न्याय विभाग की आलोचना की है। प्रिंसप लिखता है कि महाराजा के राज्य में न तो कोई लिखित और न ही कोई जुबानी कानून था और कहीं भी अदालतें स्थापित नहीं थीं।[2] प्रिंसप की यह सम्मति पूरी तरह एकतरफा है। सम्भवत: उसने अपने से पहले के लेखक मैल्कम की राय नहीं पढ़ी। मैल्कम के अनुसार महाराजा के समय प्रचलित कानून लोगों के स्वभाव और उनकी आवश्यकता के अनुकूल थे और अंग्रेजी कानून के मुकाबले में जो बहुत महंगा और उकता देने वाला था और जिससे केवल चालाक व्यक्ति ही लाभ उठा सकते थे, रणजीत सिंह का न्याय कहीं अच्छा था।

महाराजा रणजीत सिंह के समय कहीं-कहीं स्थानीय अधिकारियों के हाथों अन्याय की सम्भावना हो सकती थी किन्तु अन्याय को काफी हद तक रोकने में महाराजा सफल हुआ था। न्यायाधीश या काजी और अदालती यह बात भली भांति जानते थे कि उनकी नौकरी तभी तक है जब तक वह लोगों को न्याय देने में अच्छी ख्याति रखते थे। उनकी ख्याति बिगड़ने पर महाराजा न केवल उन्हें नौकरी से हटा देता था वरन् कई बार तो जेल-यात्रा भी करनी पड़ती थी। महाराजा अपने कर्मचारियों की मनमानी कारवाईयों के विरुद्ध शिकायतें सुनने में कभी भी कोताही नहीं करता था और अपराधियों को तुरंत व कड़ी सजा देता था। कई बार महाराजा विशेष न्यायाधीशों को जगह-जगह घूम कर लोगों के झगड़े आदि सुनने और उनका निर्णय करने के लिए भेजता था। आज की तरह वर्षों तक मुकद्दमे लटकते नहीं रहते थे। एक दो पेशियों में ही उनका फैसला कर दिया जाता था। उन दिनों में आवागमन के साधन बहुत कठिन थे और लोग

1. सोहन लाल सूरी, उमदा तवारीख, पृष्ठ 132.
2. prinsep, political Life of Maharaja Ranjit Singh, p. 182.

www.9009.co.in

लम्बी यात्राएं करके बार-बार शहरों की अदालतों में नहीं पहुंच सकते थे और न ही उनके पास अपने काम-धंधों में से अधिक समय निकालने की गुंजाइश थी। महाराजा किसानों के कष्ट कम करने के लिए सदा ही तत्पर रहता था।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि रणजीत सिंह का न्याय-विभाग मोटे तौर पर मुगलों के न्याय विभाग जैसा ही था पर कुछ बातों में रणजीत सिंह ने मुस्लिम कानून की पुरानी परम्परा को छोड़ दिया था। मुस्लिम कानून केवल मुसलमानों पर ही लागू होता था। मुसलमानों को लोगों के क्षेत्रीय रीति-रिवाजों के अनुसार अपने मुकद्दमों के फैसले करवाने की भी छूट थी। बहुत थोड़े मुसलमान ही शरई कानून के अनुसार अपने मुकद्दमों के फैसले करवाते थे। इसी प्रकार हिन्दू और सिख भी हिन्दू कानून के अनुसार न्याय प्राप्त कर सकते थे। पर आम लोग अपने रीति-रिवाजों के अनुसार ही अपने फैसले करवाते थे जो पर्याप्त समय से उनके क्षेत्रों या फिरकों में प्रचलित थे। समाज में कई प्रकार की अदला-बदलियों के परिणामस्वरूप कई नये कानून अस्तित्व में आये जैसे जायदाद के बंटवारे आदि के मामलों में परिवर्तन हुए थे। रणजीत सिंह ने समाज में हुए परिवर्तनों को आंखों से ओझल नहीं किया और नई परिस्थितियों के अनुसार अपने कानून में आवश्यक सुधार किये। यह ठीक है कि रणजीत सिंह के समय कोई लिखित दण्ड संहिता अस्तित्व में नहीं आई थी, किन्तु लोगों में प्रचलित जाने-पहचाने कानून के अनुसार ही फैसले होते थे और रणजीत सिंह का न्याय विभाग पूर्ण सफलता के साथ अपना कर्त्तव्य निभाता था।

रणजीत सिंह का सैनिक प्रबन्ध

रणजीत सिंह की सैनिक सूझ-बूझ उन कारवाईयों से प्रकट होती है जो उसने अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए की थीं। वह युद्ध के यूरोपीय ढंग और तरीकों को अपनाने के लिए बहुत उत्सुक था। पर फिर भी उसने अपनी प्राचीन पुश्तैनी सैनिक प्रणाली में से बहुत कुछ बनाये रखा था। प्राचीन युद्ध नीति जिसके अनुसार बहुत शीघ्रता और तेजी के साथ शत्रुओं पर आक्रमण किया जाता था एक अत्यंत ही सफल विधि थी जिसे उसने सदैव ही अपनाये रखा। दूसरे, यूरोपीय अनुशासन और नये प्रकार की सैनिक जत्थेबंदी से बहुत सारे सिखों को घृणा थी। इसलिए महाराजा ने जहां अपने सैनिक प्रबंध में बहुत सारी नई चीजें अपनाईं वहीं प्राचीन ढंग और तरीकों को भी बनाये रख कर उसने बहुत सारे सिख सरदारों का सहयोग प्राप्त किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाराजा का सैनिक संगठन नई और पुरानी, देशी और विदेशी सैनिक प्रणालियों का एक सुंदर मेल था। उसने अंधाधुंध पश्चिमी देशों की नकल नहीं की और न ही वह पूर्वीय सैनिक प्रणाली से पूरी तरह जुड़ा हुआ था।

www.9009.co.in

उसने अनेक विदेशी सैनिक प्रणालियों की अच्छी बातें अपनाई और देशी प्रणाली में से कुछ बातें त्याग दीं।

यूरोपीय प्रणाली को अपनाने में न उसने उतावलापन किया और न ही उन प्रणालियों को पूर्ण रूप से ग्रहण किया। पश्चिमी देशों की सैनिक प्रणालियों को पूरी तरह लागू करने के मार्ग में एक रुकावट प्रशिक्षण देने वालों की कमी थी। रणजीत सिंह ने सेना के सभी उपविभागों, जैसे पैदल सेना, घुड़सवार सेना और तोपखाने की ओर पूरा ध्यान दिया। पैदल सैनिक प्रणाली को न मुगलों ने पसंद किया था और न ही मराठों या सिखों ने। मुगलों के समय में पैदल सैनिक पहरा देने, शाही घराने की पालकियां उठाने या डाक लाने वाले लोगों के रूप में कार्य करते थे। पर यूरोपियन विचारधारा ने पैदल सैनिक प्रणाली के प्रति महाराजा का दृष्टिकोण ही बदल दिया था। सन् 1822 में वैनतूरा के आने पर पैदल सेना का प्रबंध उसके अनुभवी नेतृत्व में रखा गया। वैनतूरा की कमान में पैदल सैनिक प्रणाली ने पर्याप्त उन्नति की थी। रणजीत सिंह ने अपनी सेना को कवायद वाली और बिना कवायद वाली दो भागों में विभाजित किया हुआ था। सन् 1822 में ऐलार्ड के महाराजा की सेवा में आने के साथ घुड़सवार सेना ने अत्यधिक उन्नति की। ऐलार्ड के महाराजा की नौकरी में आने के सात सालों में बाकायदा घुड़सवार सेना की संख्या चौगुनी हो गई। उसने यूरोपीय विधि से प्रशिक्षण दिया और बहुत कड़ा अनुशासन लागू किया। रणजीत सिंह तोपखाने का भी अत्यंत शौकीन था। चार्ल्स मेटकाफ के अनुसार रणजीत सिंह के दिल में तोप का इतना आकर्षण था कि यदि उसे किसी किले में तोप होने का पता चलता था तो वह उस तोप को प्राप्त करने के लिए किले पर आक्रमण कर देता था। वह या तो उस किले पर विजय प्राप्त करके तोप ले आता या उस किले का स्वामी अपने आप को बचाने के लिए स्वयं ही तोप को उसके सुपुर्द कर देता था। महाराजा ने तोपखाने की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया। उसने तोपें ढालने के लिए लाहौर व कुछ अन्य जगहों पर कारखाने भी स्थापित किये।

रणजीत सिंह की सेना के दो विशेष भाग थे : एक फौज-ए-आईन (नियमित सेना) और दूसरी, फौज-ए-बेकवायद (अनियमित सेना)। भले ही इनमें से महत्वपूर्ण सेना फौज-ए-आईन थी पर फौज-ए-बेकवायद भी सदा कायम रही और वह अपने ढंग से युद्ध करती रही।

फौज-ए-आईन (नियमित सेना)

यह तीन भागों में विभाजित थी : (1) पियादे या पैदल सेना (2) घुड़सवार सेना (3) तोपखाना।

www.9009.co.in

(1) पैदल सेना

पैदल सेना में एक बटालियन को एक इकाई समझा जाता था। इसमें लगभग 800 आदमी होते थे और बटालियन कमाण्डर को कुमेदान कहा जाता था। हर बटालियन में आठ कंपनियां या पलटनें होती थीं। हर पलटन बराबर-बराबर दो भागों में बंटी होती थी। जिन्हें सेक्शन कहते थे। हर बटालियन में एक कमाण्डेण्ट, एक ऐड्जूटेण्ट, एक मेजर, एक मुतसद्दी (लेखाकार), एक मुन्शी और एक ग्रन्थी होता था। ऐड्जूटेण्ट की सहायता से कुमेदान बटालियन के प्रबंध और प्रशिक्षण का ध्यान रखता था। मेजर राशन, वर्दियों व अन्य सामग्री का प्रबंध करता था। मुतसद्दी प्रतिदिन जवानों की हाजिरी लेता था और परेड के विषय में स्टेटमेंट तैयार करता था। वह जवानों के वेतनों के बिल भी तैयार करता था। मुन्शी यूनिट की रिपोर्टें व पत्रादि लिखता था। ग्रन्थी बटालियन के गुरुद्वारे में गुरु ग्रन्थ साहब का प्रकाश करता और पाठ सुनाता था। एक कंपनी में एक सूबेदार, दो जमादार, एक सार्जेंट, चार हवालदार, चार नायक, एक बिगुलर और कुछ ढोल वाले होते थे। हर एक के लिए अपने-अपने काम सुनिश्चित थे। हर बटालियन में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते थे जो युद्ध में भाग नहीं लेते थे जैसे झण्डाबरदार, घड़ियाली, हरकारे, लांगरी आदि। आमतौर से बटालियनों के नाम उनके कमान अधिकारियों के नामों पर रखे जाते थे। कई बार कई पलटनों के नाम अन्य ढंग से भी रखे जाते थे जैसे गोरखा पलटन, पलटन-ए-खास और पलटन-ए-फतेहनसीब। हर बटालियन का अपना पृथक झण्डा होता था।

(2) घुड़सवार सेना

यह सेना रेजीमेंटों में बंटी हुई थी। इनमें से कइयों के अंग्रेजी नाम थे जैसे लांसर्ज, ड्रेगन रेजीमेंट और ग्रेडियर रेजीमेंट। कुछ के नाम अकाल, राम, गोबिंद और हजूरी रेजीमेंट थे। घुड़सवार सेना का गठन भी पैदल सेना के नमूने पर ही था। यह बटालियन रिसालों में विभाजित थी। आम तौर से रिसाला ब्रिगेड में चार-पांच सौ घुड़सवार होते थे।

(3) तोपखाना

यह तीन भागों में विभाजित था। (1) **तोप-ए-असपी**—जिसमें घोड़ों के द्वारा खींची जाने वाली हलकी तोपें होती थीं, (2) **तोपखाना-ए-जिनसी**—जिसमें बैलों के द्वारा खींची जाने वाली तोपें थी। कई बार भारी तोपों को खींचने के लिए 80 से 100 तक बैल जोड़े जाते थे। (3) **तोपखाना-ए-शुतरी**—जिसमें ऊंटों के द्वारा खींची जाने वाली तोपें होती थीं। तोपखाने का संगठन भी पैदल या घुड़सवार सेना की तरह ही था। हर तोप पर लगभग दस गनर लगाये जाते थे। तोपखाने में इस्तेमाल किये जाने वाले पशुओं में घोड़े सबसे

www.9009.co.in

अधिक महत्वपूर्ण थे। घोड़ों के अतिरिक्त बैलों और ऊंटों का उपयोग किया जाता था किन्तु ये जानवर धीमे चलते थे। इसलिए कई बार भारी तोपें ठीक समय पर अपने ठिकाने पर नहीं पहुंच पाती थीं।

फौज-ए-खास

महाराजा ने जनरल वैनतूरा की कमान में एक विशेष सेना तैयार की जिसका नाम फौज-ए-खास या माडल ब्रिगेड रख गया। इसमें लाहौर दरबार की सेना के हर प्रकार के सैनिक सम्मिलित थे, जैसे—पैदल सेना की चार पलटनें, चौबीस तोपों का तोपखाना और घुड़सवारों की तीन रेजीमेंटें सम्मिलित थीं। इस फौज-ए-खास को यूरोपीय तौर-तरीके का प्रशिक्षण दिया गया था। वैनतूरा ने इस फौज-ए-खास को निपुणता की उच्चकोटि तक पहुंचा दिया था।

फौज-ए-बेकवायद या अनियमित सेना

इस सेना में भी चार प्रकार के सैनिक थे—घुड़सवार, किलों के सैनिक, जागीरदारी सैनिक और अकाली। अनियमित सेना यूरोपियन ढंग से परेड नहीं करना चाहती थी।

घोड़चढ़े (घुड़सवार)

घुड़सवार सेना की भरती प्रांतों के रईसों और पिछली मिसलों के सरदारों के सैनिक दस्तों में से की जाती थी। यह सेना डेरों में संगठित थी। एक डेरे में 800 से लेकर 1000 तक घुड़सवार होते थे। इस घुड़सवार सेना के लिए कोई सर्वोच्च कमांडर नहीं होता था। हर एक डेरा अपने आप में स्वतंत्र था और एक सरदार के अधीन होता था जिसका पद और वेतन उसके डेरे में रहने वाले घुड़सवारों की संख्या पर निर्भर करता था। कई सरदारों को साल भर के 5000 रुपये मिलते थे, कइयों को 3000 रुपये और कइयों को मात्र 800 रुपये। सन् 1838-39 में इन घुड़सवारों की संख्या 10,795 थी।

किलों के सैनिक

किलों की सेना रेजीमेंटों या बटालियनों के रूप में संगठित नहीं की जाती थी। एक किले की देखभाल के लिए स्थापित की हुई सैनिक टुकड़ी का दूसरे किलों की सैनिक टुकड़ियों के साथ कोई वास्ता नहीं होता था। किले में किले के महत्व के अनुसार सैनिक रहते थे। मुलतान, अटक, पेशावर, कांगड़ा और श्रीनगर के किलों में भारी सैनिक दस्ते रखे जाते थे किन्तु छोटे किलों में सैनिकों की संख्या 25 और 50 के मध्य होती थी। किले के सैनिक दस्ते के इंचार्ज को किलेदार या थानेदार कहा जाता था। किलों में भी मुतसद्दी और दारोगा जैसे छोटे अधिकारी रखे जाते थे। इन किलों की सैनिक टुकड़ियां प्रशिक्षण, साज़ो-सामान और अनुशासन की दृष्टि से अलग-अलग होती थीं।[1]"

1. prinsep, Political life of Maharaja Ranjit Singh, p. 184

www.9009.co.in

जागीरदारी सेना

सैनिक सेवा प्राप्त करने के लिए कुछ लोगों को सैनिक जागीरें दी जाती थीं। जागीरदारों को आवश्यकता पड़ने पर लाहौर दरबार को सैनिक सहायता देनी पड़ती थी। जागीरदारों को अपने वचन के अनुसार जागीर के बदले में एक विशेष संख्या में सैनिक रखने पड़ते थे। लगभग आधी जागीर जागीरदार की निजी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए होती थीं और बाकी आधी में से वह घोड़ों और घुड़सवारों का खर्च चलाता था। यदि कोई जागीरदार जागीर के अनुसार घुड़सवार नहीं रख सकता था तो उसे जुर्माना कर दिया जाता था जो उसकी जागीर में से वसूल किया जाता था। जागीरदारी सेना में पैदल सैनिक, घुड़सवार और तोपखाना भी होता था। सैनिक जागीरदार कई बार अपनी जागीर का कुछ भाग बिना सरकार की आज्ञा के दूसरों को जागीर के रूप में दे देते थे। एक घुड़सवार का वर्ष भर का वेतन लगभग तीन सौ रुपये होता था। जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् उसकी जागीर सरकार के हाथों में चली जाती थी।

अकाली

महाराजा ने अकालियों या निहंगों को अपनी अनियमित सेना में सम्मिलित कर लिया था। उनकी संख्या 2000 से 3000 के बीच में थी। अकालियों ने अपने नेताओं फूला सिंह व साधु सिंह के नेतृत्व में लाहौर दरबार के बहुत सारे अभियानों में भाग लिया था। अकाली किसी भी प्रकार के सैनिक प्रशिक्षण या परेड के विरुद्ध थे। वे लाहौर दरबार के विदेशी कारिन्दों के भी सख्त खिलाफ थे। वे किसी लड़ाई में भी लाहौर दरबार के नेतृत्व में लड़ना पसंद नहीं करते थे। वे शत्रुओं पर आक्रमण करने की विधि स्वयं ही निर्धारित करते थे। इस प्रकार कई बार उनकी कार्रवाइयां लाभ पहुंचाने की अपेक्षा हानिकारक सिद्ध होती थीं।

रणजीत सिंह की सेना के विषय में अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग आंकड़े दिये हैं। हैनरी लारेंस के अनुसार रणजीत सिंह के पास 65,841 नियमित और 37,868 अनियमित सैनिक थे। मिस्टर बार के अनुसार महाराजा के राज्य के अन्तिम वर्षों में उसकी सेना की कुल संख्या 76,000 थी जिसमें से 43,000 नियमित सैनिक थे। महाराजा अपने कुल बजट का लगभग 43 प्रतिशत प्रतिवर्ष अपनी सेना पर व्यय करता था।

भरती

लैपल ग्रिफिन के अनुसार महाराजा के राज्यकाल में भरती विशुद्ध रूप से लोगों की इच्छा के अनुसार थी और लाहौर सरकार को सैनिक प्राप्त करने में बिलकुल कठिनाई नहीं होती थी क्योंकि उन दिनों सेना की नौकरी को लोग अत्याधिक पसंद करते थे।[1]

1. Lepel griffin, Ranjit Singh, p. 134.

www.9009.co.in

स्टाइनबख के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर महाराजा सेना को जितनी चाहता बढ़ा सकता था। सेना में भरती होने के लिए सदैव तांता लगा रहता था जिसका एक कारण यह भी था कि पंजाब से बाहर मराठों की सेना के टूट जाने के पश्चात काफी बेरोजगारी हो गई थी। दूसरे, पंजाब में भी शरीर से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति लाहौर के दरबार की सेना में भरती होना चाहता था। तीसरे, सिख अपनी बहादुरी की परंपरा के कारण सैनिक जीवन को प्राथमिकता देते थे और इस सब के अतिरिक्त महाराजा के अधीन नौकरी की शर्तें बहुत अनुकूल और लाभदायक थीं। सैनिकों को बहुत अच्छा वेतन, जल्द तरक्की और नौकरी में सुरक्षा प्राप्त थी। जागीरदारों के सैनिकों और प्रान्तीय सैनिक टुकड़ियों की भरती के अतिरिक्त शेष सारी भरती का काम सीधे लाहौर सरकार करती थी। आम तौर पर दरबारी और अधिकारी रंगरूटों के भरती होने के लिए सिफारिश करते थे। कभी-कभी आकस्मिक स्थितियों में भरती का काम बड़े सरदारों, कमान अधिकारियों, सूबेदारों और दरबार के उच्च-पदस्थ कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिया जाता था। रंगरूटों का चुनाव बहुत ध्यान से किया जाता था और लेफ़्टीनेंट बार के कथनानुसार रंगरूट के कद-काठ और शारीरिक शक्ति को ध्यान में रखा जाता था, न कि उसकी जाति को। केवल हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों को ही भरती किया जाता था।

अधिकारियों को भरती करने का कार्य विशुद्ध रूप से महाराजा के अपने हाथों में था। आम तौर से ऊंचे और विश्वसनीय अफसरों के पुत्रों या सबन्धियों को ही अधिकारी नियुक्त किया जाता था। रणजीत सिंह ने अपनी सेना को आधुनिक बनाने के लिए बहुत सारे विदेशी अधिकारियों को नियुक्त किया था।

अनुशासन

महाराजा ने अपनी सेना में पूरा अनुशासन रखा और अनुशासन भंग करने वालों को कठोर सजायें दीं। भले ही रणजीत सिंह कभी भी कठोर सजा के पक्ष में नहीं था पर जहां सैनिकों की ओर से अनुशासनहीन कार्रवाई उसके राज्य-प्रबन्ध पर प्रभाव डाल सकती थी वहां महाराजा सख्ती करने में नहीं झिझकता था। महाराजा ने यूरोपीय अधिकारी बहुत उच्च पदों पर नियुक्त कर रखे थे किन्तु कई स्वाभिमानी सरदार उन विदेशियों के अधीन नहीं रहना चाहते थे। इस कारण विदेशी और पंजाबी अधिकारियों में कुछ तनाव होने के कारण अनुशासनहीनता देखने में आती थी। महाराजा के जीवन में कोई सरदार खुल्लम-खुल्ला रणजीत सिंह के सामने खड़ा नहीं हो सका। कई बार सैनिकों को वेतन मिलने में देर होने पर सैनिक अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते थे। रणजीत सिंह इन बातों को कोई विशेष महत्व नहीं देता था। हर यूनिट में अधिकारियों की एक कमेटी अनुशासन पर दृष्टि रखती थी और अनुशासन बनाये रखने के लिए

www.9009.co.in

जिम्मेदार होती थी। यूनिटों के कमान अधिकारियों को सैनिकों की शिकायतें सुनने और उचित शिकायतों को दूर करने के लिए अधिकार मिले हुए थे। और केवल गम्भीर मसले ही महाराजा के दरबार में पेश होते थे। यूनिटों के कमाण्डरों की ओर से अनुशासन सम्बन्धी रिपोर्ट प्रतिदिन दरबार में पहुंचती थी। रणजीत सिंह जागीरदारी सेना को सुस्त नहीं रहने देता था। वह उन पर कड़ी नज़र रखता था। इस प्रकार महाराजा ने सिख सेना में अनुशासन बनाये रखने के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर रखे थे।

वेतन

जागीरदारी प्रणाली के अतिरिक्त सैनिकों को अदायगी के तीन तरीके और थे जिनके द्वारा उन्हें नकद रकम दी जाती थी। वे तीन तरीके थे : माहदारी, फसलादारी और रोजीनादारी भुगतान माहदारी प्रणाली के अनुसार कर्मचारी या सैनिक का मासिक वेतन निर्धारित किया जाता था। इसका यह मतलब नहीं कि उसे अवश्य ही प्रत्येक मास वेतन मिलता हो, पर जब भी मिलता था तो मासिक के आधार पर ही मिलता था। फसलदारी प्रणाली के अनुसार फसलों के समय अर्थात् साल भर में दो बार वेतन दिया जाता था। रोजीनादारी प्रणाली के अनुसार कर्मचारी को प्रतिदिन के आधार पर वेतन दिया जाता था। आम तौर से सेना का कुछ महीनों का वेतन दबा कर रखा जाता था। कई बार अनेक सैनिकों का पांच या छह महीनों का वेतन सरकार की ओर बकाया होता था और कई बार तो एक वर्ष या चौदह महीने का वेतन सरकार की ओर बाकी होता था। महाराजा सैनिकों का वेतन इस कारण दबा कर नहीं रखता था कि खज़ाने में धन की कमी थी वरन् सैनिकों को अनुशासन में रखने के लिए एक नीति के रूप में ऐसा किया गया था। कई बार सैनिक आवश्यक प्रशिक्षण लेकर लाहौर दरबार की नौकरी छोड़ कर चले जाने की सोच लेते थे और महाराजा ऐसे प्रशिक्षित सैनिकों का कुछ मास का वेतन दबा कर उन्हें भाग जाने से रोकना चाहता था। सैनिकों को वेतन बख्शी या उस के मुतसद्दी दिया करते थे।

पुरस्कार और उपाधियां

जो सैनिक लाहौर दरबार की बहुत शानदार सेवा करते थे और अपनी जानों को खतरे में डाल कर राज्य के लिए कुछ उपलब्धि करते थे उन्हें 'महार' या बहुत भारी पुरस्कार व उच्च उपाधियां दी जाती थीं। महाराजा की उदारता के सम्बन्ध में कैप्टन वेड लिखता है कि भारतवर्ष का कोई शासक उदारता में और अधिकारी व्यक्तियों को पुरस्कार देने में महाराजा को मात नहीं दे सकता। जो लोग अपनी शूरवीरता, योग्यता और राज्य के प्रति लगन के कारण महाराजा की नज़र में चढ़ जाते थे, वे मालामाल हो जाते थे।

www.9009.co.in

महाराजा सिरोपा और उपहारों के रूप में हर वर्ष लाखों रुपये लोगों को बांट देता था। महाराजा की ओर से दिया जाने वाला उपहार कुछ रुपयों से लेकर एक लाख रुपये तक हो सकता था। महाराजा की ओर से शूरवीर सैनिकों और बहादुर सैनिक अधिकारियों को 'जफ़र जंग बहादुर', 'फतेह-ओ-नुसरत नसीब' और 'शमशेर जंग बहादुर' जैसी उपाधियां प्रदान की जाती थीं।

रणजीत सिंह के सैनिक संगठन का मूल्यांकन

महाराजा भले ही पुश्तैनी पदों के विरुद्ध था पर कभी-कभी किन्हीं बहादुर सैनिकों के सेवामुक्त हो जाने या नौकरी के अयोग्य हो जाने या मृत्यु हो जाने की दशा में उन सैनिकों के पुत्रों को सेना में उच्च पदों पर ले लिया जाता था। कई बार दरबार में अपना प्रभाव रखने वाले व्यक्ति अपने पुत्रों को सेना में उच्च पदों पर आसीन करवा देते थे। महाराजा लाहौर दरबार की सेना का सर्वोच्च सेनापति था। मैटकाफ के शब्दों में महाराजा की आज्ञा उस की प्रजा का हर व्यक्ति मानता था। राज्य का सबसे बड़ा सरदार और सबसे छोटा सिपाही रणजीत सिंह का एक समान आदर करते थे[1]। महाराजा ने अपने सैनिक संगठन को उन्नत करने के लिए तीन बातों का सदा विशेष ध्यान रखा। (अ) यूरोपीय सैनिक प्रणाली के अनुसार अपनी सेना को प्रशिक्षण दिया। उसने पैदल सेना और तोपखाने को विशेष रूप से यूरोपीय प्रणाली में ढाला। (इ) अपनी घुड़सवार सेना को नये सिरे से नये ढंग से और गैरजागीरदारी तरीकों से उन्नत किया। प्राचीन प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार जागीरदारी प्रणाली को त्याग कर घुड़सवार सेना को संगठित किया। (उ) जागीरदारी सैनिक टुकड़ियों को बहुत तीखी निगरानी में रखा।

1838 में शहामत अली ने कहा था कि महाराजा की सेना भारत के किसी भी अन्य शासक की सेना की अपेक्षा बेहतर तरीके से नियमित और अनुशासनबद्ध थी[2]।

डा० फ़ौजा सिंह के[3] कथनानुसार रणजीत सिंह और उसके उत्तराधिकारियों के सैनिक प्रबन्ध को भारतीय व्यवस्था में फ्रांस और ब्रिटेन की मिली-जुली सैनिक प्रणाली कहा जा सकता है। रणजीत सिंह ने यह देख कर कि यूरोपियन युद्ध विधि अच्छी है, अपनी सेना को यूरोपीय नमूने पर ढालना प्रारम्भ किया। उसकी सेना का संविधान पूरी तरह यूरोपीय था। उसने यूरोपीय प्रशिक्षण प्रणाली लागू की और यूरोपीय सेना के हथियारों जैसे हथियार बनवाये और उनका ही सैनिक तरीका लागू किया। सैनिकों की एक जैसी ही वरदी और

1. Kiernan, V.G. Metcalfe's Mission to Lahore (1808-09) P. 80.
2. Shahamat Ali-The Sikhs and Afghans P. 23.
3. Fauja Singh, Military System of the Sikhs p. 346-47.

www.9009.co.in

उनका एक जैसा ही साजो-सामान रखने में रणजीत सिंह ने यूरोपीय सेना की ही नकल की थी। मासिक रूप में वेतन देने का रिवाज भी पश्चिमी था। अपनी सेना को काफी हद तक यूरोपीय ढंग पर उन्नत करने के बावजूद कई बातों में उसकी सेना विदेशी प्रभाव से मुक्त रही। लाहौर दरबार की सेना में कोई लिखित सैनिक नियमावली नहीं थी। जागीरें देना, सेना का वेतन दबा कर रखना और सैनिकों को उपहार देना सभी स्थानीय रिवाज थे। सैनिक संगठन में रणजीत सिंह ने भारतीय सैनिक प्रणाली और यूरपीय सैनिक प्रणाली की सब से अच्छी बातें अपने सैनिक प्रबन्ध में लागू की थीं।

www.9009.co.in

अध्याय छः

महाराजा का दरबार और उसके दरबारी

महाराजा अपने दरबार में

पूर्वी देशों के महान् शासकों की तरह महाराजा रणजीत सिंह ने भी एक शानदार दरबार स्थापित किया था। उसने अपने दरबार की भव्य सजावट की थी। जब एक भारतीय यात्री मोहनलाल ईरान के शाहज़ादे अब्बास मिर्ज़ा के दरबार में गया तो शाहज़ादे ने उससे पूछा, "क्या रणजीत सिंह का दरबार शान शौकत में मेरे दरबार का मुकाबला करता है और क्या सिख सिपाही अनुशासन एवं वीरता में ईरान के जांबाज सिपाहियों का मुकाबला कर सकते हैं।" मोहनलाल ने बड़ी विनम्रता लेकिन दृढ़ता से उत्तर दिया, "महाराजा रणजीत सिंह के दरबार के तम्बू या शामियाने कश्मीरी शालों से बने होते हैं और उसी प्रकार के कीमती कपड़ों से फर्श पर बिछावन की जाती है। जहां तक उसकी सेना का संबंध है, हरी सिंह नलुआ यदि सिंध नदी पार कर जाए तो ईरान की फौजें भाग कर अपने देश में जा घुसेंगी।" मोहनलाल का यह उत्तर सुन कर अब्बास मिर्ज़ा ने महाराजा के दरबार और उसकी बहादुर फौजों की प्रशंसा की। इस प्रकार महाराजा के दरबार की ख्याति देश-विदेश में फैल गई थी।

महाराजा अपने दरबार में सोने की कुर्सी पर पालथी मार कर बैठता था। उस कुर्सी की आकृति सिंहासन जैसी नहीं थी। महाराजा के लिए आवश्यक नहीं था कि वह अपना दरबार किसी विशेष स्थान पर ही लगाए। कई बार वह बड़े अनौपचारिक ढंग से अपना दरबार लगा लेता था, जैसे अपने दरबार में वह दरी पर ही तकिया लगा कर बैठ जाता था। जब कोई अधिकारी या प्रजा में से कोई व्यक्ति महाराजा से मिलता तो सामान्य मर्यादा का पालन किया जाता था। यात्री पहले महाराजा के सामने झुकता और अपनी हैसियत के अनुसार नजर भेंट करता। इन तोहफों में नकदी, घोड़े, तलवारें, पिस्तौल, शाल व फल आदि शामिल थे। ये उपहार महाराजा के लिए आय का एक अच्छा साधन था। त्यौहारों पर बड़े सरदार एवं रईस लोग महाराजा को उपहार भेंट करते थे। उदाहरण के लिए सभी बड़े सरदारों को यह आज्ञा थी कि वे दशहरे के दिन महाराजा को भारी उपहार भेंट करें। महाराजा के दरबारी रोजनामचा

www.9009.co.in

नवीस सोहनलाल सूरी ने सन् 1831 के दशहरे का उल्लेख करते हुए लिखा है कि पहले सरदार फतेह सिंह अहलूवालिया दो घोड़े लेकर आया जिन में से एक की काठी सोने की थी और दूसरे की चांदी की। इसके अतिरिक्त उसने 10,000 रुपए भी नज़र के रूप में पेश किए। इसके बाद जमादार खुशहाल सिंह ने एक घोड़ा और 8,000 रुपए महाराजा को भेंट किए। इसी प्रकार सरदार अतर सिंह मजीठिया, सरदार अतर सिंह संधावालिया और सरदार ज्वाला सिंह भड़ानिया ने एक-एक घोड़ा और भारी नकदी नज़र की।"[1] जब कोई कर देने वाला राजा, रईस या उच्च अधिकारी उपहार भेंट करने से बचने के लिए दरबार में उपस्थित होने से कतराता था तो महाराजा की ओर से आदेश-पत्र जारी किया जाता था कि वह दशहरे तथा अन्य त्यौहारों संबंधी तोहफे लेकर महाराजा के समक्ष उपस्थित हो।

महाराजा के दरबार की एक अनूठी ही शान थी। दरबार में कोई भी व्यक्ति बिना संकेत पाए नहीं बोलता था लेकिन दरबार में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति महाराजा के हर प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने एवं आवश्यक जानकारी देने के लिए हर समय तैयार रहता था। महाराजा बहुत-सा सरकारी काम खुले दरबार में करता था। राजकुमारों, प्रान्तों के सूबेदारों, सेनापतियों और विभिन्न क्षेत्रों के कारदारों की ओर से आने वाले पत्र दरबार में पढ़ कर सुनाए जाते थे। राज्य के सभी मामलों के विषय में ताजा से ताजा जानकारी महाराजा को पहुंचाई जाती थी। सरकारी कामकाज के बारे में महाराजा की ओर से तुरंत कारवाई की जाती थी। गुप्त पत्र जिम्मेदार अधिकारियों के माध्यम से संबंधित व्यक्तियों को भेजे जाते थे। कई बार अत्यंत गोपनीय पत्रों या आदेशों के विषय में प्रधानमंत्री तक को जानकारी नहीं होने दी जाती थी।

विदेशी यात्रियों या ईस्ट इंडिया कम्पनी के उच्चाधिकारियों के स्वागत के लिए किये जाने वाले प्रबंधों के विषय में खुले दरबार में विचार-विमर्श किया जाता था और महाराजा अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग कार्य सौंपता था। उन सम्माननीय यात्रियों के स्वागत-सत्कार के लिए की जा रही तैयारियों के विषय में महाराजा के सामने रिपोर्ट पेश करनी पड़ती थी। जब महाराजा के अधिकारी किन्हीं यात्रियों का राजधानी के बाहर स्वागत करते थे तो उन्हें उन विदेशी अतिथियों से इस आशय का पत्र प्राप्त करना होता था कि उनका ठीक ढंग से स्वागत किया गया था और वह पत्र महाराजा को भिजवाना पड़ता था।[2] होली, बसंत और दशहरे के राष्ट्रीय त्यौहारों को मनाने के कार्य करने की रूप-रेखा दरबार में ही बनाई जाती थी। महाराजा अपने निजी मामलों पर दरबार

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृ० 82.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृ० 3.

www.9009.co.in

में कभी चर्चा नहीं करता था। डा० श्रे के अनुसार महाराजा जब भी उससे अपने स्वास्थ्य के संबंध में सलाह लेना चाहता था तो प्रायः दरबार लगने से पहले सुबह आठ और नौ बजे के मध्य बुलवाता था।

महाराजा सदा यह चाहता था कि जो व्यक्ति उससे मिलने आये वह उससे अवश्य ही मिल सके। वह प्रतिदिन अपनी प्रातःकालीन सैर के समय साधारण लोगों तथा सरदारों को मिलने का अवसर देता था। महाराजा का दरबार किसी को भी भयभीत नहीं करता था। मध्य युग के शासकों के दरबारों से लोगों को बहुत डर लगता था। साधारण लोग दरबार में जाकर कांपने लगते थे और भूमि पर गिर पड़ते थे। पर महाराजा के दरबार में आकर मिलने वालों को ऐसा लगता था जैसे वे अपने किसी मेहरबान दोस्त के साथ बातें कर रहे हों। महाराजा मुगल बादशाहों या दिल्ली के सुलतानों जैसी मर्यादा का पालन नहीं करता था जिसमें यात्रियों को बादशाह के सामने साष्टांग प्रणाम करना पड़ता था और न ही वह अपने दरबार में शाही ठाट-बाट दिखाने के लिए अपने आस-पास हथियार-बंद चोबदार खड़े करता था। फिर भी दरबार की मान-मर्यादा का पूरी तरह से पालन किया जाता था और कभी किसी को दरबार की मर्यादा के विरुद्ध किसी प्रकार की कारवाई करने का साहस नहीं होता था।

दरबार में सरदार या रईस

राजकुमार खड़क सिंह और शेर सिंह तथा प्रधानमंत्री ध्यान सिंह का पुत्र हीरा सिंह महाराजा के समीप कुर्सियों पर बैठते थे। बाकी सभी उपस्थित सरदार महाराजा के दाएं-बाएं दरियों पर बैठते थे और कई बार वे खड़े भी रहते थे। दरबारी आमतौर से सरदी के मौसम में कश्मीरी ऊन के पीले वस्त्र और गर्मी की ऋतु में पीले रंग के रेशमी कपड़े पहनते थे। दरबार में उपस्थित होने वाले सरदार बहुत मूल्यवान हीरे और जवाहरात पहन कर आते थे। शायद ही कोई ऐसा रईस हो जो हजारों रुपये के आभूषण पहन कर न आता हो। हेनरी फेन के शब्दों में, "ध्यान सिंह का पुत्र हीरा सिंह गर्दन से लेकर पैरों तक सोने, चांदी और हीरों में जड़ा हुआ एक व्यक्ति था जिसकी बाहों, गर्दन और टांगों पर अनमोल हीरे और बहुमूल्य जवाहरात लदे होते थे, और उन मूल्यवान हीरों के नीचे उसका शरीर नजर तक नहीं आता था।[1] महाराजा स्वयं भले ही बहुत सादे वस्त्र पहनता था पर वह अपने दरबारियों को हीरे जवाहरातों से सुसज्जित देख कर अत्यंत प्रसन्न होता था। आस्बोर्न जो 1838 में महाराजा के दरबार में गया था, लिखता है, "मैं समझता हूं कि यूरोप या पूर्वी देशों में शायद ही कोई ऐसा दरबार हो जिसमें इतने सुंदर और प्रभावशाली दरबारी

1. Henry Fane, Five years in India vol. I. p. 134.

www.9009.co.in

हों जितने महाराजा के दरबार के ये प्रमुख सरदार थे।[1] एशिया और यूरोप के लगभग सभी यात्री जो महाराजा के दरबार में गये थे, इस बात पर सहमत हैं कि महाराजा के दरबारी देखने में इतने शानदार थे कि उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। महाराजा के दरबार में हर सरदार को अपनी स्थिति की जानकारी होती थी और वहां किसी प्रकार की बदतमीजी नजर नहीं आती थी। दरबार में प्रवेश के लिए कड़े कायदे थे। कोई भी सरदार भले उसका पद कितना भी ऊंचा क्यों न हो, यहां तक कि महाराजा के पुत्रों को भी प्रधानमंत्री की अनुमति के बिना महाराजा के साथ भेंट करने की आज्ञा नहीं थी। कई बार शाहजादा खड़क सिंह और शाहजादा शेर सिंह को महाराजा से मिलने के लिए घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। सामान्यत: दरबार में उच्चाधिकारी ही उपस्थित होते थे और अधिकारी एवं कर्मचारी दरबार के बाहर ठहरते थे जहां से उन्हें आवश्यकता पड़ने पर बुला लिया जाता था।

रणजीत सिंह के राज्य के पहले दशक में उसके दरबार के बड़े रईस उसके अपने बनाये हुए सरदार नहीं थे वरन् वे भी महाराजा की तरह ही अपने-अपने क्षेत्रों के स्वामी थे। महाराजा के राज्यसत्ता सम्भालने के समय ये ऊंचे दरबारी या तो स्वयं शासक थे या विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध सरदार थे जैसे सरदार मित सिंह पढ़ानिया, सरदार अतर सिंह धारी, सरदार हुकम सिंह अटारी वाला आदि। महाराजा ने उनके प्रति बहुत कठोर नीति अपनाई थी पर अपना व्यवहार बहुत विनम्र रखा और उनकी भावनाओं को ठेस नहीं लगने दी। किन्तु लगभग एक दशक बाद जब पुराना रईस वर्ग समाप्त हो गया और बचे-खुचे रईस सत्ताहीन हो गये तो नये रईस अस्तित्व में आये। महाराजा ने अपनी उदारता से उन सरदारों का दिल भी जीत लिया था जिन्होंने महाराजा के हाथों अपने राज्य खो दिये थे। उसके विरुद्ध कभी कोई बगावत नहीं हुई, भले ही डोगरों और सिख सरदारों के मध्य बढ़ती जा रही शत्रुता ने रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् राज्य पर कुछ बुरा प्रभाव डाला था।

लाहौर दरबार की जो विशेष प्रवृत्ति नजर आ रही थी वह यह कि कई बार एक ही परिवार के तीन-चार या इससे भी अधिक सदस्य राज्य प्रबंध में उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। उदाहरणार्थ, तीन डोगरा बन्धु, तीन फकीर बन्धु अथवा मिसर परिवार राज्य के बहुत महत्वपूर्ण पदों को सम्भाले हुए थे। इस प्रकार लाहौर सरकार का सारा प्रबंध कुछ परिवारों के हाथों में ही होता था। इसका कारण यह था कि उन दिनों में उच्च पदों के उपयुक्त शिक्षित व्यक्तियों का मिलना एक समस्या थी। कुछ परिवारों की शिक्षा संबंधी उच्च

1 Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh p. 29.

www.9009.co.in

परम्पराओं के कारण उनमें से ही महत्वपूर्ण सरकारी नौकरियों के लिए पढ़े-लिखे व्यक्ति मिलते थे।

उपाधि और उपहार

महाराजा अपने दरबारियों और दरबार में उपस्थित होने वालों से भेंट भी स्वीकार करता था पर साथ ही उन्हें बहुत मूल्यवान उपहार भी देता था। समकालीन लेखों में हमें ऐसे उपहारों और उपाधियों का बार-बार उल्लेख मिलता है। डोगरा ध्यान सिंह को "राजा-ए-राजगां" की उपाधि मिली हुई थी।[1] उसके भाइयों गुलाब सिंह और सुचेत सिंह को "राजा" की उपाधि दी गई थी।"[2]

मुलतान पर विजय के पश्चात् मिसर दीवान चन्द को 'जफ़र जंग बहादुर' की उपाधि दी गई और कश्मीर पर विजय के पश्चात् उसे 'जफ़र जंग फतेह नुसरत बहादुर' की पदवी प्रदान की गई। सरदारों को मिलने वाली उपाधियों में 'उज्जल दीदार', 'निर्मल बुद्धे', 'दिलावर जंग', 'ईमाद-उद्-दौला' प्रमुख थी। जिन व्यक्तियों को उपाधियां व तमगे दिये गये थे उनमें सरदार अतर सिंह संधावालिया, कैप्टन वेड, अबीताबले, सरदार लहना सिंह मजीठिया और भाई गोविन्द राम भी थे। 'कोकबे-इकबाले-पंजाब' के ऊंचे तगमे शाहज़ादा खड़क सिंह, शेर सिंह और नौनिहाल सिंह को दिये गये थे।

दरबार में विदेशियों का स्वागत

महाराजा विदेशी यात्रियों विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के उच्च अधिकारियों और यूरोपीय यात्रियों के स्वागत की ओर विशेष ध्यान देता था। जैसे ही ये यात्री महाराजा रणजीत सिंह के राज्य की सीमा में प्रवेश करते थे, महाराजा के आदमियों की सुरक्षा में आ जाते थे। लाहौर तक पहुंचने के लिए मार्ग में उनकी सभी आवश्यकताएं सरकार की ओर से पूरी की जाती थीं। उन्हें नकद पैसे, मिठाईयां, मांस और अन्य आवश्यक वस्तुएं दी जाती थीं। बैरन ह्यूगल ने लिखा है कि महाराजा की ओर से विदेशी यात्रियों को आवश्यक सुरक्षा मिलने की चर्चा यूरोप में आम थी। मुझे महाराजा की ओर से उसकी हैसियत के अनुसार न केवल सुरक्षा और कृपा ही प्राप्त हुई थी वरन् उसकी उदारता ने मेरे मन पर एक चिरजीवी प्रभाव छोड़ा था।[3] महाराजा अपने अतिथियों की आवभगत का विशेष ध्यान रखता था। 1820 में जब मूरक्राफ्ट लाहौर गया तो महाराजा ने उसे धन व मिठाइयां भिजवाईं। मूरक्राफ्ट ने भेजी हुई चीजें लेने से नम्रतापूर्वक इंकार कर दिया पर महाराजा ने उसे संदेश भिजवाया

1. अमरनाथ, जफरनामा-ए-रणजीत सिंह, पृष्ठ 184.
2. वही, पृष्ठ 152
3. Baron Hugel, Travels in Kashmir and Punjab, p. 315.

www.9009.co.in

कि जो कुछ भेजा जा चुका है वह उसे अवश्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए और भविष्य में ऐसी चीजें लेना या न लेना उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर करता है।[1] महाराजा की सदा इच्छा होती थी कि विदेशी यात्री उसके आतिथ्य के पात्र बनें। महाराजा ने अपने कर्मचारियों को यह हिदायत दे रखी थी कि वे विदेशी यात्रियों पर नजर रखें। एक ईसाई पादरी जोजेफ वुल्फ ने अपने ईसाई मत के प्रचार संबंधी कुछ इश्तिहार लाहौर के बाजारों में लगाये पर उसने ऐसा करने के लिए आज्ञा नहीं ली थी इसलिए उसे वे इश्तिहार उतार लेने पड़े।

आम तौर से विदेशी यात्रियों या ईस्ट इंडिया कंपनी के उच्चाधिकारियों को महाराजा के सामने प्रस्तुत करने के लिए एक-दो मंत्रियों को नियुक्त किया जाता था, जिसमें ध्यान सिंह, फकीर अजीजुद्दीन, जमादार खुशहाल सिंह और शाहजादा खड़क सिंह और शेर सिंह मुख्य थे। महाराजा की ओर से अत्याधिक सम्मान और स्वागत का विस्तारपूर्वक उल्लेख अलेक्जेंडर बर्नज, कैप्टन वेड, बैरन ह्यूगल और विक्टर याक्मों के लेखों में मिलता है। ये सभी इस बात की विशेष चर्चा करते हैं कि महाराजा की ओर से उन्हें विशेष ध्यान, पर्याप्त धन-दौलत और बहुत सारी खाने-पीने की चीजें प्राप्त हुई थीं।

यात्रियों के दरबार में आने पर महाराजा अपनी कुर्सी से उठकर कुछ कदम आगे बढ़ कर उन्हें अपने आलिंगन में ले लेता और बहुत प्यार से उनके साथ हाथ मिला कर उन्हें अपने समीप कुर्सी पर बैठाता था। आम तौर से यात्रियों के लिए भी उसी प्रकार की कुर्सियों का प्रयोग होता था जिस प्रकार की कुर्सी पर वह स्वयं बैठता था। भले ही ऐसा करना मध्य युग के राजा-महाराजाओं की मर्यादा के विपरीत था। दरबार से विदा होते समय महाराजा उन्हें अत्यंत मूल्यवान उपहार देता था। फ्रांसीसी यात्री याक्मों को महाराजा ने एक खिलअत (सिरोपा) दी थी जिसका मूल्य 5,000 रुपये था। इसके अतिरिक्त उसने काफी नकद, धन, एक घोड़ा और सामान ले जाने के लिए ऊंट भी दिया था। विदाई के समय महाराजा इन यात्रियों को सोने और चांदी की काठियों से सज्जित घोड़ों के अतिरिक्त बहुत मूल्यवान पोशाक, मोतियों के हार और हीरे-जवाहरात उपहार के रूप में देता था।[2]

अनेक स्वतन्त्र महाराजा के अधीन शासकों या अंग्रेजों के अधीन राज्यों के वकील अपने शासकों की ओर से पत्र और उपहार लेकर महाराजा के दरबार में उपस्थित होते थे। समकालीन लेखों के अनुसार पटियाला, नाभा, जींद, कैथल, कपूरथला, बहावलपुर, हैदराबाद (सिंध), खैरपुर, मंडी, सुकेत, कुल्लू, बीकानेर,

1. Moorcroft, Travels in the Himalayan Provinces of Hindustan and the Punjab Vol. I, P. 93.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तृतीय, पृष्ठ 73.

www.9009.co.in

और नेपाल के राजाओं के वकील महाराजा से अक्सर उसके दरबार में मिलते रहते थे। महाराजा के पुत्रों और लाहौर दरबार के प्रसिद्ध सरदारों के वकील भी कई बार महाराजा से मिलते थे। लाहौर से वापिस जाने के लिए सभी वकीलों को महाराजा से आज्ञा लेनी पड़ती थी और विदाई के समय महाराजा से मिलकर जाना पड़ता था। महाराजा की ओर से उन्हें अपने और अपने शासकों के लिए सिरोपे और उपहार मिलते थे। इन वकीलों की यात्राएं अधिकतर सद्भावना की प्रतीक थीं। यदि किसी को महाराजा के साथ कोई गुप्त बात करनी होती थी तो वह खुले दरबार में नहीं की जाती थी। लोगों के सभी प्रार्थनापत्र प्रधानमंत्री ध्यान सिंह के द्वारा महाराजा के सामने प्रस्तुत किये जाते थे। महाराजा उनके विषय में तुरन्त निर्णय देता था और स्वयं आदेश लिखवाता था। यदि किसी मामले में जांच-पड़ताल की आवश्यकता होती थी तो वह मामला संबंधित अधिकारी के पास आवश्यक पड़ताल के लिए भेज दिया जाता था। दरबारी भाषा फारसी थी और सभी सरकारी रिकार्ड फारसी में ही रखे जाते थे। दरबार में महाराजा और दूसरे दरबारी आम तौर पर पंजाबी में बातचीत करते थे और यूरोपीय लोगों के साथ बातचीत करने के समय हिन्दुस्तानी भाषा का उपयोग किया जाता था। कई बार अंग्रेजी या विदेशियों के साथ बातचीत करने के समय दुभाषियों की सेवाएं भी प्राप्त की जाती थीं।

दरबारी और सरकारी मामलों में उनका योगदान

रणजीत सिंह के दरबारियों को हम पांच विशेष श्रेणियों में बांट सकते हैं। हम उन पृथक-पृथक श्रेणियों और उनके सदस्यों के कार्य पर संक्षेप में विचार करेंगे। ये श्रेणियां थीं: डोगरे, सिख, हिन्दू, मुसलमान और यूरोपीय। महाराजा ने अपने प्राचीन मिसलदारों और रईस वर्ग को लगभग समाप्त ही कर दिया था क्योंकि वे सरकार चलाने में सहायता करने की उपेक्षा बहुत गंभीर समस्याएं उपस्थित कर सकते थे। वह रईस वर्ग जिसे रणजीत सिंह ने स्वयं निर्मित किया था उसके प्रति अत्यंत वफादार रहा और वे लोग बड़ी सुयोग्यता के साथ महाराजा की सेवा में जुटे रहे, क्योंकि उनमें से कई व्यक्ति बहुत नीचे से उठ कर बहुत ऊंचे पदों पर पहुंच गये थे।

भले ही महाराजा सभी सरकारी कामों को चलाने में पूर्णतया समर्थ था और किसी प्रकार के मार्गदर्शन के बिना ही राज्य प्रबंध चला सकता था पर उसने अपने दरबार में बहुत बुद्धिमान रईस, या नागरिक अधिकारी व सैनिक उच्चाधिकारी रखे हुए थे जिनसे वह आवश्यकता पड़ने पर सलाह ले सकता था। उसकी रईस श्रेणी उसकी अपनी बनाई हुई थी। केवल महाराजा ही अपनी प्रजा में से किसी भी व्यक्ति की पदोन्नति या पदावनति करने या किसी को कोई पद

www.9009.co.in

देने में पूर्णतया समर्थ था। सभी पद ऐसे दरबारियों के लिए खुले थे जो योग्यता की कुछ शर्तें पूरी करते थे। महाराजा जिसे अपनी सेवा में लेता था, उस का विगत इतिहास पूछने की आवश्यकता नहीं समझता था क्योंकि वह अपने दरबारियों और उच्च पदाधिकारियों पर बहुत तीखी नजर रखता था। यदि उनमें से कोई भी व्यक्ति गैर-वफादार या अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के अयोग्य सिद्ध होता था तो उसे तुरंत पद मुक्त कर दिया जाता था।

कुछ ऐसे सिख सरदार भी थे जो शुरू-शुरू के आक्रमण में उसके साथ थे या सिख मिसलों के ऐसे शासक थे जिनके क्षेत्र उसने अपने अधीन कर लिये थे। इन सिख शासकों को अपने अधीन करने के पश्चात् उसने उन्हें बहुत उदार शर्तें पेश कीं और वे उसके दरबारियों में भी सम्मिलत हो सकते थे। महाराजा ने अनुभव किया कि उन सरदारों को उनकी पुरानी हैसियत से वंचित करना बुद्धिमानी की बात नहीं थी। ऐसा करना जरा कठिन भी था भले ही उसने उन्हें अपने अधीन कर लिया था। उसने ऐसे सरदारों को जिनके राज्य अपने राज्य में मिला लिये थे गुजारे के लिए भारी जागीरें दी थीं। जागीरों का लाभ उठाने वालों में न केवल सिख सरदार ही थे वरन् हिन्दू और मुसलमान शासक भी थे। उदाहरणार्थ झंग, कसूर, मुलतान आदि के शासकों को भी बड़ी-बड़ी जागीरें दी गई थीं। ये जागीरदार अपनी जागीरों के पूरे मालिक थे और इन्हें पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। उन्होंने लाहौर राज्य के अंदर अपने छोटे से राज्य बना रखे थे।

जिन लोगों को निजी गुणों या सेवाओं के कारण जागीरें मिलती थीं उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी जागीरों पर पुनः लाहौर सरकार का अधिकार हो जाता था। हरी सिंह नलुआ के पुत्रों में अपने पिता जैसी वीरता और निर्भयता नहीं थी इसलिए उसकी जागीर जिससे 8,00,000 रुपये वार्षिक की आय होती थी, उसकी मृत्यु के तुरंत पश्चात् महाराजा ने संभाल ली[1], और दूसरे दरबारियों में बांट दी। लैपल ग्रिफिन के शब्दों में रणजीत सिंह ने पुश्तैनी दौलत और पुश्तैनी मान-सम्मान के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया। उसने अपने राज्य में से सभी बड़े बड़े सरदारों को समाप्त कर दिया और इस प्रकार पुश्तैनी रईस श्रेणी को फूलने-फलने नहीं दिया। रणजीत सिंह के दरबार के रईसों में पर्याप्त वैविध्य था। वे भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायी थे। डोगरे, भैये और यूरोपीय तो पंजाबी भी नहीं थे। इस प्रकार इन श्रेणियों के कुछ सदस्यों में तो देशभक्ति की भावना का अभाव था। वे केवल अपने निजी स्वार्थों के कारण ही महाराजा के दरबार में रह रहे थे बुढ़ापे में वे लाहौर दरबार को छोड़ कर अपने-अपने स्थानों को वापिस

1. सोहनलाल सूरी, तृतीय, पृष्ठ 417.

www.9009.co.in

चले गये। महाराजा रणजीत सिंह के जीवन काल में खुल्लमखुल्ला पारस्परिक ईर्ष्या व शत्रुता देखने में नहीं आई। पर उसकी मृत्यु के पश्चात् दरबार की रईस श्रेणी के विभिन्न सदस्यों में झगड़े उठ खड़े हुए और उन्होंने हिंसा का रूप धारण करके लाहौर दरबार को पर्याप्त हानि पहुंचाई। पर कुल मिला कर के महाराजा के रईस उसके प्रति वफादार रहे। उसके दरबार में अधिकतर ऐसे व्यक्ति ही थे जिन्हें उसने स्वयं उच्च पदों तक पहुंचाया था और जो अपने पद और दौलत के लिए पूर्णतया महाराजा की इच्छा पर निर्भर करते थे। इस प्रकार रणजीत सिंह को अपने दरबारियों की ओर से कभी सामूहिक विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। रणजीत सिंह के दरबारी महाराजा के प्रति सम्मान और उसकी महान शक्ति के कारण सदा उसके अधीन रहे। महाराजा ने अपने इन दरबारियों में से ही अपने मंत्री, सूबेदार सेनापति, नीतिवेत्ता और उच्चाधिकारी नियुक्त किये थे। सभी दरबारियों को मालूम था कि उनका पद तभी तक उनके पास रहेगा जब तक महाराजा उन पर प्रसन्न है। ये पद जीवन भर के लिए नहीं दिए जाते थे।

रणजीत सिंह के कुछ दरबारियों पर यहां विचार किया जाएगा।

(अ) डोगरे

राजा ध्यान सिंह

ध्यान सिंह जम्मू के चलते-पुर्जे राजपूत डोगरा परिवार में से था। उसके पिता का नाम मियां किशोर सिंह था। वे तीन भाई थे : गुलाब सिंह, ध्यान सिंह और सुचेत सिंह। ध्यान सिंह 1796 में पैदा हुआ था।

1811 में मियां किशोर सिंह ने दूलो नाम के एक हिन्दू व्यापारी से कुछ रुपया कर्ज के रूप में लिया। ध्यान सिंह और गुलाब सिंह इस रुपए से अपने लिए घोड़े और साज-सामान खरीद कर महाराजा रणजीत सिंह की घुड़सवार सेना में भरती होने के लिए चल दिए। बहुत साधारण से वेतन पर महाराजा ने इन दोनों भाइयों को अपनी सेना में ले लिया और बाद में सन् 1813 में उनका छोटा भाई सुचेत सिंह भी लाहौर आ गया। 1818 में ध्यान सिंह को ड्योढ़ीदार बना दिया गया। पहले यह पद 1811 से जमादार खुशहाल सिंह के पास था। इस पद के साथ ही ध्यान सिंह को 'राजा' की उपाधि प्रदान की गई। 1822 में महाराजा ने सुचेत सिंह और गुलाब सिंह को भी 'राजा' की उपाधियां दीं। 1828 में ध्यान सिंह को 'राजा-ए-राजगां' हिन्द पत राजा बहादुर[1] की उपाधि मिली और 'राजा कलां' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। महाराजा रणजीत सिंह राज्य से सभी महत्वपूर्ण मामलों में उसकी सलाह लेता था। केवल ध्यान

1. अमरनाथ, पृष्ठ 184.

www.9009.co.in

सिंह के द्वारा ही लोगों और उनके प्रार्थनापत्रों की पहुंच महाराजा तक हो पाती थी।

महाराजा ने सलाह मशवरा लेने और राज्य का काम चलाने के लिए एक बहुत बुद्धिमान मंत्रिमण्डल की स्थापना कर रखी थी। ध्यान सिंह उन सब में अधिक शक्तिशाली था। वह कई बार रात को अपने घर में ही एक छोटा-सा दरबार लगा लिया करता था जिसमें अगले दिन महाराजा के दरबार में होने वाली बातों पर संक्षिप्त रूप में विचार कर लिया जाता था। महाराजा की ओर से उसे विशेष हिदायत थी कि वह विदेशी यात्रियों का खास ध्यान रखे। रणजीत सिंह के निजी स्टाफ में ध्यान सिंह को प्रथम स्थान प्राप्त था। भले ही काफी सत्ता हाथों में आ जाने से ध्यान सिंह बहुत शक्तिशाली हो गया था पर महाराजा के सामने वह बहुत विनम्रता और सम्मान के साथ पेश आता था।

वह बहुत सुन्दर, प्रभावशाली, बोलचाल में बहुत शरीफ और सुलझा हुआ व मिलनसार व्यक्ति था। वह एक सुयोग्य प्रबन्धक और बहुत बुद्धिमान राजनीतिवेत्ता था। प्रायः वही विदेशी यात्रियों को महाराजा के सामने प्रस्तुत करता था। रणजीत सिंह के घराने के प्रति वफादारी में ध्यान सिंह पहले नम्बर पर नहीं था। उसकी अपेक्षा फकीर अज़ीज़ुद्दीन रणजीत सिंह के घराने के प्रति कहीं अधिक वफादार था। रणजीत सिंह की मृत्यु के समय जब ध्यान सिंह रानी हरदेवी के पास शोक व्यक्त करने गया तो उसने ध्यान सिंह को उसकी यह बात याद दिलवाई कि वह सदैव महाराजा की रकाब के साथ जुड़ा रहना चाहता था। रानी हरदेवी कहना चाहती थीं कि वह अपने स्वामी रणजीत सिंह के साथ ही क्यों नहीं चल जाता।

रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् ध्यान सिंह ने खड़क सिंह के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र किये और शाहज़ादा नौनिहाल सिंह के साथ भी झगड़ा मोल ले लिया। उसने चेत सिंह को कत्ल करवा दिया और स्वयं संधावालिये सरदारों के विरुद्ध षड्यंत्र रचे। अंत में 15 दिसम्बर 1843 को उनके हाथों ही कत्ल हो गया।

राजा गुलाब सिंह

गुलाब सिंह जम्मू के मियां किशोर सिंह का सबसे बड़ा पुत्र था और अक्तूबर, 1792 में उसका जन्म हुआ था।[1] वह ध्यान सिंह का बड़ा भाई था। उसने पुस्तकीय ज्ञान तो प्राप्त नहीं किया था पर वीर सैनिकों का सारा प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया था। छोटी आयु में ही एक कुशल घुड़सवार की तरह घुड़सवारी कर सकता था और बहुत निपुणता से तलवार चलाना भी जानता था। वह

1. K. M. Pannikar, The Founding of Kashmir State P. 15.

www.9009.co.in

एक अच्छा निशानेबाज था। जब रणजीत सिंह ने बृजराज देव से जम्मू जीतने के लिए हुक्मा सिंह के नेतृत्व में सेना भेजी तो उस समय गुलाब सिंह ने सोलह वर्ष की छोटी-सी अवस्था में ही लड़ाई के मैदान में वीरता के कारनामे कर दिखाये थे। हुक्मा सिंह उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ था। और उसकी सिफारिश पर महाराजा रणजीत सिंह ने उसे अपनी सेना में भरती कर लिया। सन् 1813 में गुलाब सिंह ने कश्मीर में बहुत महत्वपूर्ण सैनिक कार्रवाई की थी। महाराजा के बहुत सारे आक्रमणों में गुलाब सिंह ने भाग लिया था। सन् 1815 से 1820 तक उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों पर आक्रमणों में उसने प्रशंसनीय कार्य किया था। सन् 1818 में मुलतान के विरुद्ध भी वह बड़ी वीरता से लड़ा था। उस की बहुत सारी सेवाओं के परिणामस्वरूप महाराजा ने 1822 में उसे 'राजा' की उपाधि देकर जम्मू का जागीरदार नियुक्त कर दिया। 'राजा' बनाते समय गुलाब सिंह के मस्तक पर महाराजा ने स्वयं तिलक लगाया था। 1822 के पश्चात् गुलाब सिंह अधिकतर जम्मू में ही रहा। महाराजा ने अपनी सिख सेनाएं जम्मू से वापिस बुला लीं। गुलाब सिंह लाहौर दरबार के अंतर्गत जम्मू का प्रशासक था। पहाड़ी क्षेत्रों का प्रशासक होने के अतिरिक्त चिनाब और झेलम के मध्य के क्षेत्र भी 25,45,000 रुपये में उसके पास ठेके पर थे। नमक की खदानें भी उसके पास रही थीं जिस के लिए वह लाहौर दरबार को आठ लाख रुपये वार्षिक कर दिया करता था। आर्थिक रूप से गुलाब सिंह लाहौर दरबार के अन्य अनेक दरबारियों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न था।

1839 में महाराजा की मृत्यु के पश्चात् गुलाब सिंह ने लाहौर राज्य के विरुद्ध अनेक साजिशें कीं और अंग्रेजों व सिखों के मध्य हुई दोनों लड़ाइयों में उसने अंग्रेजों का साथ दिया था। निश्चय ही ऐंग्लो-सिख युद्धों के समय उसने लाहौर दरबार के प्रति बहुत बड़ी गद्दारी की थी जिसके बदले में अंग्रेज सरकार ने सन् 1846 में पहली ऐंग्लो-सिख लड़ाई के पश्चात् गुलाब सिंह को 'जम्मू का महाराजा' की उपाधि दी थी।[1]

राजा सुचेत सिंह

सुचेत सिंह लाहौर दरबार के डोगरा बन्धुओं में सबसे छोटा था। रणजीत सिंह ने उसे भी 'राजा' की उपाधि दी थी। वह देखने में बहुत प्रभावशाली था पर उसमें राजनैतिक सूझ और दूरदर्शिता का अभाव था। वह धन-दौलत एकत्रित करने का शौकीन था। वह बहुत सुन्दर पोशाक पहनता था। वह लाहौर दरबार में आकर एक मामूली पद पर नियुक्त हुआ था, पर अपनी शक्ल सूरत और अभिजात्य के कारण महाराजा की नजरों में चढ़ गया था। वह एक

1. असीउद्दीन मुफ्ती, भाग पहला, पृष्ठ 53.

www.9009.co.in

अत्यंत कुशल घुड़सवार था और सिख सैनिक उसे एक आदर्श सैनिक समझते थे। रणजीत सिंह के समय में वह राजनीति की ओर से पूरी तरह निर्लिप्त रहा। रणजीत सिंह ने उसे दरबार में रखा पर नागरिक राज प्रबन्ध सम्बन्धी कोई भी कार्य नहीं सौंपा। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् वह चेतसिंह के कत्ल में फंस गया। बाद में उसने शेर सिंह के विरुद्ध रानी चांद कौर का साथ दिया पर शीघ्र ही पक्ष बदल कर वह राजकुमार की ओर हो गया। बाद में वह शेर सिंह के कातिलों अर्थात् संधावालिए सरदारों के साथ मिल गया पर फिर संधावालिए सरदारों से अपने भाई ध्यान सिंह के कत्ल का बदला लेने के लिए राजा हीरा सिंह के साथ जा मिला। इसके पश्चात् वह हीरा सिंह और उसके सलाहकार पंडित जल्ला से भी पृथक हो गया और जवाहर सिंह व रानी जिन्दा के साथ मिल कर अपने भतीजे और उसके सलाहकार के विरुद्ध साजिशें करने लगा। फिर वह राजा गुलाब सिंह के कहने पर जम्मू चला गया। मार्च, 1844 को वह फिर लाहौर आ गया किन्तु उसी महीने 28 मार्च, 1844 को हीरा सिंह के आदमियों के हाथों कत्ल हो गया।[1]

उसके पास तीन लाख रुपए की जागीर थी और उसने बहुत सारा धन एकत्रित किया था। उसने 15 लाख रुपया फिरोजपुर शहर में छिपा कर रखा हुआ था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् मिला। उस धन पर लाहौर दरबार और अंग्रेजों ने अपने-अपने अधिकार जताए थे।

राजा हीरा सिंह

हीरा सिंह ध्यान सिंह का पुत्र था। महाराजा हमेशा उसके साथ सदा कृपा पूर्ण व्यवहार करता था। वह शायद एक मात्र ऐसा दरबारी था जो महाराजा से पूछे बिना दरबार में बात कर सकता था। उसे अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत का भी थोड़ा सा ज्ञान था। ओस्बोर्न के शब्दों में हीरा सिंह अच्छे स्वभाव का एक शरीफ व्यक्ति था और निश्चय ही लाहौर दरबार में वह सबसे अधिक लोकप्रिय था[2]। रणजीत सिंह ने 1828 में उसे 'राजा' की उपाधि और 4,50,000 वार्षिक की एक भारी जागीर दी थी।

रणजीत सिंह उसे बहुत पसंद करता था और अपनी नजरों से परे नहीं होने देता था। दरबार में हीरा सिंह महाराजा के समीप कुर्सी पर बैठता था जबकि उसका पिता ध्यान सिंह, जो प्रधानमंत्री था, महाराजा के सामने सदा खड़ा रहता था।

राजनैतिक मामलों में हीरा सिंह ने महाराजा पर कोई प्रभाव नहीं डाला

1. अलीबहीन मुफ्ती, भाग पहला, पृष्ठ 513-15.
2. Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh. P. 29.

www.9009.co.in

क्योंकि, उसमें ऐसा कर सकने की क्षमता नहीं थी। अपने पिता ध्यान सिंह की मृत्यु के पश्चात् सेना की सहायता से उसने महाराजा शेर सिंह और ध्यान सिंह के कातिल संधावालिये सरदार अजीत सिंह और लहणा सिंह को मार दिया था। सितम्बर, 1843 में दिलीप सिंह के महाराजा बनने पर हीरा सिंह प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त हुआ जिस के लिए वह अयोग्य सिद्ध हुआ और 21 दिसंबर 1844 को अपने सलाहकार पंडित जल्ला सहित लाहौर की सेना के द्वारा मार डाला गया।

(आ) मुसलमान

1. फकीर अजीजुद्दीन

फकीर अजीजुद्दीन का जन्म 1780 में हुआ था। वह लाहौर के एक हकीम फकीर मुहयुद्दीन का सब से बड़ा पुत्र था। उसे भी हकीम बनाने के विचार से लाहौर के एक प्रसिद्ध हकीम लाला हाकिम राय के पास भेजा गया। 1799 में जब रणजीत सिंह की आंखों के कुछ कष्ट हुआ तो हाकिम राय को बुलाया गया। अजीजुद्दीन हाकिमराय के साथ महल में आया। रणजीत सिंह को यह युवक अपनी अकल और सूझ-बूझ के कारण जंच गया। इसे लाहौर नगर का स्वास्थ्य अधिकारी नियुक्त कर दिया गया और 5,000 रुपये वार्षिक की जागीर दी गई। अजीजुद्दीन महाराजा के प्रति सदा ही वफादार और आज्ञाकारी रहा। संभवत: वह रणजीत सिंह के सर्वाधिक निकट था। महाराजा कठिन समय में सदा ही फकीर की सलाह लेता था। अजीजुद्दीन अपने समय का एक कुशल वक्ता, विद्वान और लेखक था। जो बाहरी यात्री समय-समय पर रणजीत सिंह से लाहौर आकर मिलते रहे थे उन सभी ने इस बात की पुष्टि की है कि रणजीत सिंह पर जितना प्रभाव फकीर अजीजुद्दीन का था, उतना किसी अन्य सरदार का नहीं था। जितनी अच्छी तरह से वह महाराजा रणजीत सिंह की नीति की व्याख्या करता था उतनी और कोई भी नहीं कर सकता था। दूसरी सरकारों के साथ राजनैतिक सम्बन्धों के विषय में विचार विमर्श करने और निर्णयों पर पहुंचने के मामले में वह एक बहुत ही योग्य व्यक्ति था। अमृतसर की सन्धि (1809 ई०) को अन्तिम रूप देने में उसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। शाह शुजा और दोस्त मोहम्मद के साथ राजनैतिक समझौतों की शर्तें तय करने के लिए महाराजा ने उसे ही चुना था। अंग्रेजों के साथ राजनैतिक मामलों के संबंध में बातचीत करने के लिए वह अक्सर लुधियाना आता रहता था। फतेह सिंह अहलूवालिया के सतलुज नदी पार करके अंग्रेजी सुरक्षा में चले जाने के पश्चात् वह कपूरथला के नाजिम के रूप में कार्य करता

www.9009.co.in

रहा। सन् 1831 में लार्ड विलियम बेंटिक को मिलने के लिए वह शिमला गया। जब भी महाराजा को किसी के साथ कोई पेचीदा राजनैतिक बातचीत करनी होती थी तो फकीर अजीजुद्दीन को ही चुना जाता था। वह सदा ही महाराजा की आशाओं पर पूरा उतरता था।

बहुत सारे राजनैतिक कर्त्तव्य निभाने के अतिरिक्त अजीजुद्दीन महाराजा का निजी हकीम भी था जिसकी दवाइयों पर महाराजा को अत्यधिक विश्वास था। जब तक फकीर आज्ञा न देता महाराजा किसी और से दवाई लेकर नहीं खाता था। एक समकालीन लेखक मुफ्ती अलाउद्दीन ने लिखा है, "यदि अफलातून अरस्तू और लुकमान भी महाराजा का शारीरिक निरीक्षण करके किसी दवाई की सिफारिश करें तो भी वह अजीजुद्दीन की आज्ञा के बिना दवाई नहीं खायेगा।"[1] रणजीत सिंह के राज्य का एक कुशल कर्मचारी दीवान अमर नाथ फकीर अजीजुद्दीन को अपने युग का मसीहा कहता है। महाराजा के अतिरिक्त लाहौर के अन्य दरबारी और विद्वान फकीर जी का बहुत सम्मान करते थे। सोहनलाल सूरी के अनुसार "फकीर अजीजुद्दीन मानवीय गुणों की मूर्ति और पूर्णता का एकमात्र प्रतीक था।"[2] वह एक दयालु व्यक्ति और अपना सारा खाली समय पुस्तकों के अध्ययन या भगवान की भक्ति में व्यतीत करता था। उसने अपने खर्च पर फारसी और अरबी का एक महाविद्यालय खोल रखा था। वह रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् लाहौर दरबार में होने वाले षड्यंत्रों से अलग-थलग रहा। सन् 1845 में उसकी मृत्यु हो गई।

2. फकीर नूरुद्दीन

वह अजीजुद्दीन का छोटा भाई था। महाराजा ने सन् 1810 में उसे धनी के क्षेत्र का प्रबंधक नियुक्त किया था। इसके पश्चात् वह गुजरात और जालंधर में भी कुछ समय के लिए प्रबंधक का कार्य करता रहा। 1812 में उसे लाहौर बुला लिया गया और इसके बाद वह दरबार में ही रहा। उसे कई प्रकार के काम करने पड़ते थे। वह लाहौर के किले में रखी युद्ध सामग्री की देख-रेख करता था और सरकारी बगीचों व महलों की देख-रेख भी उसी को सौंपी गई। गरीबों और दान के पात्रों के प्रार्थना पत्र उसके द्वारा ही महाराजा के सामने प्रस्तुत किये जाते थे। सरकारी खजाने की तीन चाबियों में से एक चाबी उसके पास रहती थी। शेष दो चाबियां मिसर बेलीराम और दीवान हुक्मा सिंह के पास रहती थीं।

1. मुफ्ती अली उद्दीन, भाग दूसरा, पृ० 83.
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृ० 70, 72, 88.

www.9009.co.in

महाराजा पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। एक बार कुंवर शेर सिंह बिना महाराजा की आज्ञा प्राप्त किये सरकारी अस्तबल से रणजीत सिंह का एक बहुत मन पसंद घोड़ा दुल्लू ले गया। जब महाराजा को इसका पता चला तो उसने गुस्से में आकर हुक्म दिया कि कुंवर की सारी जायदाद जब्त कर ली जाए और उसे देश निकाला दे दिया जाए। नूरुद्दीन इस संबंध में महाराजा से मिला और प्रार्थना की, "महाराजा साहिब, आपने कुंवर को बहुत हल्की सजा दी है। वह अस्तबल से ऐसे घोड़ा खोल कर ले गया जैसे यह उसके बाप की जायदाद हो।" महाराजा इस बात से खुश हो गया। उसने सजा का हुक्म वापिस ले लिया और दुल्लू घोड़ा भी कुंवर को ही दे दिया।

रणजीत सिंह का नूरुद्दीन पर अत्यधिक विश्वास था। बहुत सारे काम महाराजा ने उसे सौंप रखे थे जिनमें से विदेशियों को महाराजा के सामने पेश करना, महाराजा के भोजन की देख रेख करना, त्यौहार आदि मनाने के लिए आवश्यक प्रबंध करना, विदेशी यात्रियों के ठहरने और सुख-सुविधा का ध्यान रखना आदि भी शामिल थे। महाराजा का प्रतिदिन का भोजन हकीम बिशन दास की निगरानी में तैयार होता था जो फकीर नूरुद्दीन का विश्वासपात्र सहायक था। वह भोजन फकीर नूरुद्दीन के सामने कुछ लोगों को ऐसी प्लेटों में डाल कर चखाया जाता था जो भोजन में जहर होने की दशा में स्पष्ट संकेत दे देती थीं। चखने वालों पर दो घंटे तक उस भोजन का असर देखा जाता था। फिर उस भोजन को एक अलमारी में रख कर फकीर नूरुद्दीन की निजी मोहर लगाई जाती थी। महाराजा उस मोहर के विषय में तसल्ली किये बिना कभी भोजन नहीं करता था। नूरुद्दीन सभी सरकारी समस्याओं के विषय में जारी आज्ञा और उस पर की जाने वाली कारवाई के संबंध में प्रतिदिन संध्या के समय महाराजा से मिलता था। उसने कुछ समय के लिए लाहौर के स्वास्थ्य अधिकारी के रूप में कार्य किया और उसे 'हकीम-ए-बगदादी' कहते थे। महाराजा के उपयोग में आने वाली सभी औषधियां उसकी देख-रेख में ही तैयार होती थीं। दीवान अमरनाथ उसे फरिश्ता-सूरत और अपने युग का अफलातून कहता है। महाराजा ने उसे 20,000 रुपये की वार्षिक जागीर दे रखी थी।

रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसने लाहौर दरबार पर बहुत अनुकूल प्रभाव डाला। प्रथम ऐंग्लो-सिख युद्ध के पश्चात् 9 मार्च 1846 की संधि पर एक साक्षी के रूप में उसने भी हस्ताक्षर किये थे। 1849 ई० में पंजाब के अंग्रेजों के अधिकार में चले जाने के पश्चात् भी अंग्रेज सरकार ने उसकी जागीर जारी रखी। सन् 1852 में उसकी मृत्यु हो गई।

3. फकीर इमामुद्दीन

वह भी फकीर अजीजुद्दीन का छोटा भाई था। वह अधिकांश समय

www.9009.co.in

अमृतसर के किले गोबिन्द गढ़ के किलेदार के पद पर कार्य करता रहा। किले में इसके पास बहुत सारे सैनिक और एक बड़ा अस्तबल था। इस किले में ही एक भारी खजाना भी रखा गया था जिसमें लाखों रुपयों का सोना और चांदी सुरक्षित था। इस किले की रक्षा के लिए 12,000 सैनिक वहां रखे गये थे। उसने सदा ही बहुत वफादारी के साथ अपने कर्त्तव्य निभाये। सन् 1844 में उसकी मृत्यु हो गई।

(इ) सिख

सिख रईस या तो पुरानी मिसलों के सरदार थे या उनकी संतान। कुछ नये व्यक्ति भी रणजीत सिंह के समय उच्च पदों तक पहुंचे थे। उनमें से अधिकतर सेना में थे और कुछ नागरिक सेवा में लगे हुए थे। कुछ बड़े जागीरदार भी थे।

देसा सिंह मजीठिया

नौध सिंह का पुत्र देसा सिंह 1768 में पैदा हुआ था। उसे रणजीत सिंह की सेवा करने के उपलक्ष्य में सुखल गढ़ और भागोवाल में जागीर मिली हुई थी। गोरखों के विरुद्ध संसार चंद की सहायता के लिए देसा सिंह महाराजा के साथ कांगड़ा गया था और बाद में हिमाचल के पहाड़ी राज्यों – कांगड़ा, चम्बा, नूरपुर, कोटला, शाहपुर, जसरोटा, बिसौहली, मानकोट, जसवां गुलेर, मंडी, सुकेत और कुल्लू का नाजिम या सूबेदार नियुक्त किया गया था।[1]

देसा सिंह कुछ समय के लिए अमृतसर का भी नाजिम रहा। 1818 में मुलतान पर आक्रमण के समय उसने खड़क सिंह की सेना में विशेष भाग लिया था। इसके पश्चात् वह फिर सूबेदार के रूप में पहाड़ों की ओर चला गया था। 1821 में सदाकौर के महाराजा से नाराज हो जाने के पश्चात् देसा सिंह को बटाला का प्रबंधक नियुक्त किया गया था। रणजीत सिंह के समय उसे 1,24,250 रुपये की वार्षिक जागीर मिली हुई थी। सन् 1832 में उसकी मृत्यु हो गई और इसके पश्चात् लहणा सिंह उसकी जागीर का उत्तराधिकारी बना। महाराजा ने उसे "कसीरा-उल-इक्तदार" अर्थात् "ऊंची शान शौकत वाला सरदार" की उपाधि दी हुई थी। वह एक अत्यंत वीर और निडर सैनिक एवं एक बुद्धिमान और उदार प्रबंधक था। उसने अपने अधीनस्थ लोगों को कभी भी परेशान नहीं किया।

लहणा सिंह मजीठिया

इसने मुलतान के अंतिम आक्रमण में भाग लिया था। अपने पिता देसा

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृ० 142, 164, 253; अल्लाउद्दीन मुफ्ती, भाग पहला, पृ० 423.

www.9009.co.in

सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसने पहाड़ी प्रदेशों की सूबेदारी सम्भाली थी और 1844 तक उसी पद पर रहा। वह अक्सर लाहौर, अमृतसर और मजीठा में ही आकर टिका रहता था और कुछ समय के लिए ही पहाड़ी क्षेत्रों में लोगों की शिकायतें सुनने और हिसाब किताब देखने के लिए जाता था। वह बहुत मेहरबान और नर्म दिल शासक था और अपने पिता की तरह सिख राज्य के सबसे बढ़िया सूबेदारों में से एक था। रणजीत सिंह सदा उसकी सम्मति का सम्मान करता था। महाराजा ने मई 1837 में उसे "उज्ज्वल दीदार, निर्मल बुद्ध, सरदार-ए-बावकार' की उपाधि दी थी।[1] उसने लाहौर दरबार में कई महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। वह तोपों के नये डिज़ाइन तैयार करने में बहुत निपुण था इसलिए उसने बहुत सुंदर तोपें बनवाई थीं। कहा जाता है कि उसने ऐसी बड़ी घड़ी तैयार करवाई थी जिसमें घण्टे, महीने के दिन और चांद के परिवर्तन का ज्ञान होता था। उसे ग्रह विज्ञान और गणित की बहुत जानकारी थी और वह कई भाषाओं का ज्ञाता था। वह एक अत्यंत ही लोकप्रिय प्रबंधक और गरीबों का हमदर्द था।

संधावालिये सरदार

संधावालिये सरदार रणजीत सिंह के खानदान में से ही थे। इस घराने के अमीर सिंह, बुध सिंह, अतर सिंह और लहणा सिंह विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। अमीर सिंह ने सन् 1807 में कसूर के विरुद्ध और 1810 में चिनाब और सिंध नदी के मध्य के मुसलमान कबीलों के विरुद्ध कारवाईयों में भाग लिया था। अमीर सिंह का पुत्र बुध सिंह सन् 1811 में महाराजा की नौकरी में आया था। 1821 में बुध सिंह को कलर और निरोली की एक लाख रुपये वार्षिक की जागीरें दी गई। बाद में उसने खलीफा अहमद के जिहाद का प्रचार करने के विरुद्ध कारवाई की थी। 1830 में बुध सिंह की हैज़े से मृत्यु हो गयी। वह लाहौर दरबार के सबसे वीर और सबसे निर्भीक सेनापतियों में से एक था और रणजीत सिंह के दरबार का एक अद्वितीय दरबारी था।[2] बुध सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई अतर सिंह और लहणा सिंह रणजीत सिंह के दरबारी बने। वे लाहौर राज्य के सीमान्त क्षेत्रों के पठान कबीलों के विरुद्ध बहुत समय तक लड़ते रहे। रणजीत सिंह ने उन्हें बहुत बड़ी-बड़ी उपाधियों से सुशोभित किया था। खड़क सिंह की मृत्यु तक उनकी जागीरों में वृद्धि होती रही। उनके परिवार को महाराजा की ओर से जागीर के रूप में लगभग 1,00,000 रुपये वार्षिक मिलते रहे। लहणा सिंह अनपढ़ था किन्तु अपने साहस के लिए अत्यंत प्रसिद्ध था।

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृ० 401.
2. अमरनाथ, पृ० 189.

www.9009.co.in

उसका भतीजा अजीत सिंह शूरवीर था किन्तु बहुत उतावली में काम करने वाला व्यक्ति था। संधावालिये सरदार डोगरों के विरुद्ध थे। अजीत सिंह और लहणा सिंह ने महाराजा शेर सिंह, कुंवर प्रताप सिंह और ध्यान सिंह को मौत के घाट उतार दिया था और अगले दिन ही हीरा सिंह के आदमियों के द्वारा वे भी मारे गये थे। अतर सिंह सतलुज के पार अंग्रेजी क्षेत्र में भाग गया था।

शाम सिंह अटारी वाला

शाम सिंह निहाल सिंह का पुत्र था जो काफी समय तक महाराजा की सेवा में रहा था। उसने 1801 और 1817 के मध्य लगभग सभी आक्रमणों में भाग लिया था। शाम सिंह 1817 में महाराजा की सेवा में आया था और वह 1818 में मुलतान और 1819 में कश्मीर की लड़ाई में लड़ा था। 7 मार्च, 1837 को उसकी लड़की का विवाह महाराजा खड़क सिंह के पुत्र नौनिहाल सिंह के साथ हुआ था। उसने दहेज के रूप में 7 हाथी, 101 घोड़े, 101 ऊंट और सोने व चांदी के बहुत सारे जेवर दिए थे। शाम सिंह ने इस विवाह पर 15 लाख रुपये खर्च किये थे। अप्रैल, 1837 में हरी सिंह नलवा की मृत्यु हो जाने के पश्चात् शाम सिंह को सेना देकर पेशावर भेजा गया था। वह प्रथम ऐंग्लो-सिख युद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत शूरवीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया था। लेपिल ग्रिफिन के शब्दों में, "सरदार शाम सिंह जाट जाति के सबसे बढ़िया प्रतिनिधियों में से एक था। जाट लोग बहादुरी, ईमानदारी, शारीरिक शक्ति और साहस के लिए समूचे विश्व की जातियों में से सर्वोत्कृष्ट हैं।[1]

हरी सिंह नलवा

गुरुदयाल सिंह का पुत्र हरी सिंह नलवा सन् 1791 में गुजरांवाला नामक स्थान पर पैदा हुआ था। सात वर्ष की आयु में उसके पिता का देहांत हो गया। उसने छोटी आयु में ही महाराजा की नौकरी कर ली थी। शीघ्र ही उसे 800 घुड़सवार और पैदल सेना का सेनापति बना दिया गया। कसूर की लड़ाई में उसने बहुत शूरवीरता का परिचय दिया। उसने मुलतान के कई युद्धों में भाग लिया था। 1820 में दीवान मोती राम के स्थान पर उसे कश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया था। हरी सिंह ने कश्मीर पर बहुत सख्ती के साथ राज्य किया। अतः महाराजा ने उसे अगले वर्ष ही वापिस बुला लिया और फिर मोती राम को ही कश्मीर का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। हरी सिंह अपने आपको खतरों में डालने से कभी भी घबराता था। सन् 1827 में सैयद अहमद खां के जिहाद के विरुद्ध उसे पेशावर की ओर भेजा गया था। 1834 में पेशावर को लाहौर दरबार का भाग बनाने के पश्चात् कुंवर नौनिहाल सिंह को वहां का पहला

1. Lepel Greffin, Punjab Chiefs, p. 64.

www.9009.co.in

सूबेदार नियुक्त किया गया और पेशावर का सैनिक प्रबंध हरी सिंह नलवा को सौंपा गया था।

महाराजा के आदेशानुसार सन् 1836 में हरी सिंह ने जमरूद में एक किला बनवाया जिससे नाराज होकर काबुल के बादशाह दोस्त मोहम्मद ने उसके विरुद्ध सेना भेजी। अप्रैल, 1837 के अंत में हरी सिंह ने बीमार होते हुए भी सिख सेना का नेतृत्व किया और युद्ध में ही उसकी मृत्यु हो गई।[1] सिख सेनापतियों में हरी सिंह नलवा सर्वाधिक वीर सेनापति था। हरी सिंह के पास एक बहुत बड़ी जागीर थी जिससे उसे 8,52,608 रुपये की वार्षिक आय होती थी।[2]

इन सिख सरदारों के अतिरिक्त दर्जनों और भी सिख दरबारी थे जिनमें धन्ना सिंह मलवई, गुरमुख सिंह लम्बा, फतेह सिंह कालियावाला और जवन्द सिंह मोकल आदि प्रमुख थे। यह सब सरदार सदा महाराजा के संकेत की प्रतीक्षा में रहते थे और इन सभी से उसे अपना राज्य चलाने में भरपूर सहयोग मिलता रहा।

(ई) हिन्दू

दीवान मोहकमचन्द

अपने जीवन के प्रारम्भ में मोहकम चन्द ने अकाल गढ़ के दल सिंह गिल के पास एक मुन्शी के रूप में काम किया। सन् 1804 तक वह उसकी सेवा में रहा। दल सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका क्षेत्र महाराजा के अधिकार में आ गया। इसके पश्चात् मोहकम चन्द गुजरात के साहब सिंह भंगी की नौकरी में चला गया। भंगी सरदार के साथ अधिक दिनों तक मोहकम चन्द की पटरी न बैठ सकी। भंगी सरदार ने उसे कैद कर लिया पर शीघ्र ही मुक्त होने के पश्चात् 1806 में वह महाराजा रणजीत सिंह की नौकरी में चला गया। महाराजा ने उसके गुणों की कद्र की और उसे सेना में अधिकारी नियुक्त कर दिया। उसने बूड़िया, मुक्तसर और कोटकपूरा पर विजय प्राप्त की। वह महाराजा के साथ पटियाला भी आया। 1807 में तारा सिंह गैबा की मृत्यु के पश्चात् उसके क्षेत्र पर अधिकार प्राप्त करके महाराजा ने वह क्षेत्र गुलाब सिंह और मोहकमचन्द में बांट दिया। इसके पश्चात् महाराजा ने उसे अनेक जागीरें दीं जिनमें जगरांव, धर्मकोट, कोटकपूरा, जीरा, और फरीदकोट के क्षेत्र थे जिनमें से उसे 1,45,255 रुपये वार्षिक की आय होती थी। उसने सतलुज के किनारे फिल्लौर का किला बनवाया। राहों और नकोदर के क्षेत्र भी उसे जागीर में मिल गये जिनसे उसे 6,42,611 रुपये वार्षिक की आय होती थी।[3] मोहकमचन्द फिल्लौर का

1. मोहन लाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृष्ठ 397.
2. Lepel Griffin, Punjab Chiefs, p. 189.
3. Lepel Griffin, Punjab Chiefs, p. 552-53.

www.9009.co.in

किलेदार था। वह अंग्रेजों से बहुत घृणा करता था। सन् 1810 में मोहकमचन्द ने मुलतान पर आक्रमण का नेतृत्व किया था। 1811 में उसने नकइयों से नाभा और फैजुलपुरियों से जालंधर का क्षेत्र जीत लिया। 1812 में मोहकमचन्द को काबुल के वजीर फतेह खां की सहायता के लिए कश्मीर के सूबेदार अता मोहम्मद के विरुद्ध भेजा गया। मोहकम चन्द कश्मीर में से काबुल के पिछले बादशाह शाहशुजा को जेल में से मुक्त करवा कर अपने साथ लाहौर ले आया जिसके परिणामस्वरूप उसकी बेगम वफा बेगम के वचनानुसार महाराजा को कोहिनूर हीरा प्राप्त हुआ। 29 अक्तूबर, 1814 को फिलौर में मोहकमचन्द की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से महाराजा रणजीत सिंह को गहरा सदमा पहुंचा। रणजीत सिंह सदा उसका बहुत आदर करता था। एक बार सन् 1833 में रणजीत सिंह ने कहा था, "आज भी मुझे दीवान मोहकमचन्द की गहरी सूझ-बूझ, वफादारी और साहसिकता की याद आती है।[1]"

दीवान मोती राम

मोहकम चन्द के सबसे बड़े पुत्र मोतीराम को भी दीवान की उपाधि मिली हुई थी। पहले वह जालंधर दोआब का नाजिम रहा, बाद में कश्मीर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सन् 1819 में उसे कश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया। सन् 1820 के एक वर्ष को छोड़ कर जब हरीसिंह नलवा उस पद पर रहा था, दीवान मोती राम 1819 से 1826 तक कश्मीर का सूबेदार रहा। दीवान मोतीराम कश्मीर के लोगों की स्थिति सुधारने के लिए बहुत यत्नशील था किन्तु दरबार में डोगरों का बोलबाला होने के कारण उसकी अनेक योजनाएं पूरी न हो सकीं। कश्मीर से लगभग 53,00,000 रुपया कर के रूप में प्राप्त किया जाता था। डोगरों की साजिशों के परिणामस्वरूप मोती राम को सन् 1827 में पदच्युत कर दिया गया। वह बनारस चला गया और उसकी जागीरें सरकार ने जब्त कर लीं। 1839 में बनारस में उसकी मृत्यु हो गई।

दीवान रामदयाल और कृपा राम

रामदयाल मोहकम चन्द का पौत्र और मोती राम का पुत्र था। उसने सन् 1814 में केवल 22 वर्ष की अल्पायु में कश्मीर पर दूसरे आक्रमण का नेतृत्व किया था। भले ही इस आक्रमण में पठानों का भारी नुकसान हुआ था पर रामदयाल को कश्मीर जीते बिना ही वापिस लौटना पड़ा था। 1819 में उसने कश्मीर पर अंतिम और सफल आक्रमण में भाग लिया था। इस आक्रमण का नेतृत्व मुलतान के विजेता सेनापति मिसर दीवानचन्द के हाथों में था। 820 में 28 वर्ष की युवावस्था में हजारा के विरुद्ध लड़ते हुए वह वीरगति को प्राप्त हुआ।

1. मोहनलाल मूरो, एपतर, पृष्ठ 117.

www.9009.co.in

मोतीराम का एक और पुत्र कृपाराम भी रणजीत सिंह के राज्यकाल में बहुत ऊंचे पदों पर रहा था। जब मोतीराम कश्मीर का सूबेदार था तो उसका पुत्र कृपा राम जालंधर का सूबेदार था। ध्यान सिंह ने उसके विरुद्ध शिकायतें करके उसे पद से हटवा दिया किन्तु शीघ्र ही बाद में महाराजा ने उसे कश्मीर का सूबेदार बना दिया। 1831 में कृपाराम ध्यान सिंह की साजिशों का शिकार हो गया। महाराजा ने उसे बन्दी बना लिया पर बाद में शीघ्र ही कैद से मुक्त कर दिया और वह बनारस चला गया, जहाँ 1842 में उसकी मृत्यु हो गई।

दीवान भवानीदास

उसका पिता काबुल के बादशाह शाहशुजा की सरकार में राजस्व अधिकारी था। भवानी दास "कुब्बा"[1] (कुबड़ा) के नाम से प्रसिद्ध था। वह 1808 में काबुल से आकर रणजीत सिंह की नौकरी में लग गया और शीघ्र ही उसे वित्त विभाग का प्रमुख बना दिया गया। उसने इस विभाग को सम्यक् स्वरूप दिया। उसने लाहौर में एक सरकारी खजाना स्थापित किया और उसके उपविभाग या छोटे खजाने सभी परगनों में खोले गये। सभी राजस्व अधिकारियों को अपने क्षेत्रों की आय और व्यय के वितरण विस्तारपूर्वक भवानीदास के समक्ष प्रस्तुत करने पड़ते थे।

जमादार खुशहाल सिंह

खुशहाल सिंह मेरठ जिले के सिरधाना परगने के ईकरी नगर का गौड़ ब्राह्मण था। वह एक बहुत ही गरीब परिवार से था। सन् 1807 में खुशहाल सिंह नौकरी करने के लिए लाहौर आया। धौंकल सिंह की रेजीमेंट में उसे पांच रुपये मासिक पर भरती कर लिया गया। वह अमृत छक कर खुशहाल से खुशहाल सिंह बन गया और शीघ्र ही बाद में 1808 में उसे बस्ती राम के स्थान पर ड्योढ़ी वाला नियुक्त कर दिया गया।[1] यह पद मंत्री के समकक्ष था। कोई भी व्यक्ति उसी के द्वारा महाराजा तक पहुंच सकता था। सन् 1818 में महाराजा उससे किसी कारण नाराज हो गया और उसे ड्योढ़ीवाला के पद से हटा दिया गया। बाद में उसने कई आक्रमणों में भाग लिया। 1832 में कुंवर शेर सिंह की सहायता के लिए, जो कश्मीर का सूबेदार था उसे कश्मीर भेजा गया पर वह अपने काम में सफल न हुआ। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने आपको लाहौर दरबार की साजिशों से पृथक रखा। जुलाई, 1844 में उसकी मृत्यु हो गई। वह कोई असाधारण योग्यता वाला व्यक्ति नहीं था किन्तु महाराजा सदा ही उस पर विश्वास रखता था और उसके विरुद्ध कोई भी शिकायत सुनने के लिए जल्दी तैयार नहीं होता था।

1. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 116.

www.9009.co.in

राजा तेज सिंह

तेजराम जो बाद में अमृत छक कर तेज सिंह बन गया था खुशहाल सिंह का भतीजा था। उसने 1819 में कश्मीर की लड़ाई में भाग लिया और शिवालिक के पहाड़ी शासकों के विरुद्ध भी लड़ा। 1837 में महाराजा ने तेज सिंह को 'उज्जल दीदार, निर्मल बुद्ध, सरदार-ए-बाबकार' की उच्च उपाधि प्रदान की।[1] सन् 1838 में उसे हजारा भेजा गया। जहां उसने मानक गढ़ का किला बनवाया। 1845-46 की पहली ऐंग्लो-सिख लड़ाई में उसने कायरता और गद्दारी का प्रमाण दिया। मार्च, 1846 की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले साक्षियों में वह भी सम्मिलित था।

दीवान गंगाराम

गंगाराम बनारस के समीप रामपुर में पैदा हुआ था। उसके पुरखे कश्मीर के निवासी थे। पहले उसने ग्वालियर के महाराजा की नौकरी की और 1803 से लेकर अगले दस वर्षों तक दिल्ली में रहा। सन् 1813 में महाराजा रणजीत सिंह ने उसे लाहौर बुला लिया और शाही मोहर का कार्य सौंप दिया। बाद में बेकवायद सेना को वेतन देने का कार्य उसके सुपुर्द कर दिया गया वह अपने कई रिश्तेदारों को भी दिल्ली से लाहौर ले आया और सरकारी नौकरियों में नियुक्त करवा दिया। 1821 में उसे गुजरात के क्षेत्र का प्रबंधक नियुक्त किया गया जहां वह दो साल रहा। 1825 में उसकी मृत्यु हो गई।

राजा दीना नाथ

दीनानाथ को दीवान गंगाराम ने 1815 में दिल्ली से लाहौर बुलाया था और अपने दफ्तर में ही नियुक्त करवा लिया था। सन् 1818 में मुलतान पर विजय के पश्चात् मुलतान के पहले सूबेदार सुखदयाल के समय उसे मुलतान भेजा गया। गंगाराम की मृत्यु के पश्चात् सन् 1826 में उसे शाही मोहर का कार्य सौंपा गया। 1834 में भवानीदास की मृत्यु के पश्चात् उसे वित्त विभाग का प्रमुख नियुक्त किया गया और 1838 में उसे दीवान का पद मिला। रणजीत सिंह दीनानाथ की योग्यता और सूझ-बूझ की बहुत कद्र करता था। सभी महत्वपूर्ण अवसरों पर महाराजा सदा ही दीनानाथ की मूल्यवान सम्मति लेता रहा। उसे अमृतसर, दीना नगर और कसूर के जिलों में 9900 रुपये वार्षिक की जागीर दी गई। महाराजा खड़क सिंह और शेर सिंह के समय भी दीनानाथ का पद और जागीरें कायम रहीं। अंग्रेजों और सिखों के प्रथम युद्ध के पश्चात् 9 मार्च 1849 की संधि पर दीवान दीनानाथ ने भी साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किये थे। पंजाब को अंग्रेजी क्षेत्र का भाग बनाने के पश्चात् भी अंग्रेजों ने उसकी सभी जागीरें पक्की कर दी थीं। उसके विषय में कहा गया है कि लाहौर

1. सोहन लाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृष्ठ 403.

www.9009.co.in

दरबार में कई राज्य-परिवर्तन और रक्तपात हुए। किन्तु दीनानाथ की जागीरों और उसकी शक्ति में निरंतर वृद्धि होती गई।[1]

मिसर दीवानचन्द

दीवानचन्द प्रारम्भ में अनाज तोलने वाले का काम करता था इसके पश्चात् उसने नौध सिंह नक्का के मोदी खाने में नौकरी कर ली। एक बार उसके हिसाब में 90 रुपये का घाटा निकला जिस पर नौध सिंह ने उसे कैद कर लिया और बहुत कष्ट दिये। एक दिन नक्का सरदार ने उसे कुछ सामान उठवा कर धूप में खड़ा कर दिया। महाराजा रणजीत सिंह को इस बात की सूचना मिली तो उसने अपने तोशेखाने में से नक्का सरदार का घाटा पूरा करके दीवान चन्द को मुक्त करवाया।

महाराजा ने दीवानचन्द को गौस खां के तोपखाने में क्लर्क लगा दिया। 1814 में गौस खां की मृत्यु के पश्चात् गौस खां का डेरा दीवानचन्द के सुपुर्द कर दिया गया। रणजीत सिंह सदा ही उसकी अक्ल और सूझ-बूझ से प्रभावित हुआ था। मिसर के व्यक्तिगत अनुरोध पर उसे मुलतान की चढ़ाई की देखभाल का कार्य सौंपा गया, हालांकि इस आक्रमण की समूची कमान कुंअर खड़क सिंह को दी गई थी। मुलतान की विजय के पश्चात् दीवान चन्द को 'जफ़र जंग बहादुर'[2] की उपाधि दी गई थी।

मिसर दीवान चन्द ने 1819 में कश्मीर के विरुद्ध आक्रमण के समय लाहौर दरबार की सेना का नेतृत्व किया था और कश्मीर पर विजय प्राप्त की थी। दो दिन की बीमारी के पश्चात् 19 जुलाई, 1825 को दीवानचन्द का देहांत हो गया। रणजीत सिंह के दिल पर उसकी मृत्यु का गहरा प्रभाव हुआ और उसने कहा—"मिसर दीवानचन्द अपने युग का अद्वितीय व्यक्ति था। दीवान चन्द असाधारण बुद्धि का स्वामी था और उसके मन में न्याय के प्रति बहुत गहन सम्मान था। वह उत्तम सूझ-बूझ, उदार और सुलझे हुए स्वभाव का व्यक्ति था।[3]

बेलीराम

बेलीराम महाराजा रणजीत सिंह का एक लाडला कर्मचारी था। 1816 में बस्तीराम की मृत्यु के पश्चात् ध्यान सिंह के विरोध के बावजूद उसे तोशाखानिया नियुक्त किया गया था। तोशाखाने में आवश्यक सरकारी कागज, हीरे, जवाहरात, मूल्यवान कपड़े और बहुत सारी दुर्लभ वस्तुएं रखी हुई थीं।

1. Lepel Griffin, Panjab chiefs, p. 135.
2. अमरनाथ, पृ० 114.
3. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृ० 325.

www.9009.co.in

उस तोशाखाने में कोहेनूर हीरा भी सम्भाल कर रखा हुआ था। बेलीराम ने तोशाखानिये के रूप में अपनी जिम्मेदारियां पूरी तरह से निभाई। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् नौनिहाल सिंह बेलीराम से इसलिए नाराज हो गया कि वह खड़क सिंह के चहेते चेत सिंह की सहायता करता था। नौनिहाल सिंह ने बेलीराम को तीन महीने के लिए बंदीगृह में रखा। जब शेर सिंह सिंहासन पर बैठा तो उसने बेलीराम को फिर से तोशाखानिया नियुक्त कर दिया। शेर सिंह की हत्या के पश्चात् बेलीराम को पुनः बंदी बना लिया गया। 1843 में बेलीराम की मृत्यु हो गई।

सावन मल

यह हुस्नायक राय का तीसरा पुत्र था। सन् 1788 में इसका जन्म हुआ। कुछ समय अपने भाई नानक चन्द के दफ्तर में काम करता रहा और 1820 में 250 रुपये मासिक वेतन पर उसे भइया बदन हजारी के हिसाब किताब की जांच करने के लिए मुलतान भेजा गया। 1821 में बदन हजारी को उसके पद से हटा दिया गया और सावन मल को मुलतान का नाजिम या सूबेदार नियुक्त किया गया। अगले पच्चीस वर्ष में सावन मल ने मुलतान प्रांत की काया ही पलट कर रख दी। उसने 300 मील लम्बी नहरें खुदवाई और कृषकों को अधिकाधिक सुविधायें देकर खेतीबाड़ी करने के लिए प्रेरित किया। वह बहुत लोकप्रिय था। लाहौर दरबार में डोगरे उससे बहुत ईर्ष्या करते थे।

रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसे लाहौर दरबार की कुछ साजिशों से परेशानी उठानी पड़ी। 16 सितम्बर 1844 को एक सिपाही ने जिस पर चोरी के जुर्म में मुकद्दमा चल रहा था अपने पिस्तौल से सावन मल को घायल कर दिया जिसके परिणामस्वरूप 29 सितम्बर 1844 को उसकी मृत्यु हो गई। दीवान सावन मल को लाहौर दरबार के सबसे बढ़िया सूबेदारों में से गिना जाता था। वह अपनी निष्पक्षता के कारण सबके आदर का पात्र था। उसने एक बार अपने सबसे बड़े पुत्र रामदास को एक किसान की इस शिकायत पर कि रामदास ने उसकी फसल नष्ट कर दी थी, जेल में डाल दिया था।

(उ) यूरोपियन

जीन ऐलार्ड

वह 8 मार्च 1785 को फ्रांस में पैदा हुआ था। उसने सन् 1814 तक फ्रांस, इटली और स्पेन में नेपोलियन के अधीन नौकरी की थी। नेपोलियन की सेना के एक इटालियन अधिकारी वेनतूरा के साथ सन् 1822 में लाहौर पहुंच गया। रणजीत सिंह ने उनसे आवश्यक पूछताछ करने के बाद उन्हें अपनी नौकरी में ले लिया।

www.9009.co.in

वह एक प्रशिक्षित और अनुभवी सैनिक अधिकारी था। उसने महाराजा की सेना में यूरोपीय अनुशासन लागू किया और शीघ्र ही महाराजा की घुड़सवार सेना की संख्या 3000 तक बढ़ा दी। नियुक्ति के समय उसे 2,500 रुपये मासिक वेतन दिया गया था।

जून, 1834 में ऐलार्ड डेढ़ साल के लिए अवकाश पर फ्रांस गया। वापिस आते हुए फ्रांस के बादशाह फिलिप की ओर से महाराजा के लिए एक पत्र व अनेक उपहार भी लाया।[1] फ्रांस के बादशाह ने ऐलार्ड को लाहौर दरबार में फ्रांस का राजदूत घोषित किया। 1838 में ऐलार्ड को पेशावर भेजा गया ताकि वह पेशावर का शासन-प्रबंध चलाने में अवीतबले की सहायता करे। 23 जनवरी, 1839 को पेशावर में ही अवीतबले की मृत्यु हो गई और उसे लाहौर ला कर सैनिक सम्मान के साथ दफनाया गया।

वैनतूरा

यह जन्म से इटली का निवासी था और इसने नेपोलियन की पैदल सेना में कर्नल के पद पर कार्य किया था। नेपोलियन की पराजय के पश्चात् सन् 1822 में लाहौर आया और महाराजा की सेना में एक उच्चाधिकारी के रूप में काम करने लगा। उसने सिख पैदल सेना को यूरोपीय ढंग का प्रशिक्षण दिया। वह एक सुयोग्य सैनिक अधिकारी और स्वभाव से चुपचाप रहने वाला व्यक्ति था। लाहौर में अनारकली के मकबरे के समीप उसने अपने रहने के लिए बहुत बड़ा मकान बनवाया था जिसमें पूर्वी और पश्चिमी देशों की सुविधाओं का ध्यान रखा गया था।

उसने डेराजात और पेशावर के अभियानों में भाग लिया। एक बार महाराजा ने उसे कश्मीर का सूबेदार बनाने के विषय में भी सोचा था। वह महाराजा की मृत्यु के पश्चात् भी पर्याप्त समय तक लाहौर दरबार की सेवा में टिका रहा। वह शेर सिंह का समर्थक और डोगरों का विरोधी था। शेर सिंह की मृत्यु के बाद वह अपनी सारी जागीर बेच कर फ्रांस चला गया जहां वह सन् 1858 तक जीवित रहा।

अवीताबले (अबूताबेला)

अवीताबले बहुत वर्षों तक महाराजा की सेवा में रहा। कुछ लोग उसे एक विनम्र, सूझवान और हमदर्द अधिकारी समझते थे किन्तु कुछ के अनुसार वह एक खून का प्यासा राक्षस था जो लोगों को फांसी पर लटकाने, कष्ट देने और उनके अंग काटने में प्रसन्नता का अनुभव करता था। रणजीत सिंह ने उसे सख्ती से डांट कर ऐसी कारवाई करने से रोका था।

1. गोपालदास मुंशी, पृ० 309, 329.

www.9009.co.in

वह सन् 1781 में अगरोला (इटली) में पैदा हुआ था। उसने नेपल्ज के बादशाह की सेना में नौकरी की और 1817 में इस्तीफा दे दिया। अगले कुछ वर्षों के लिए वह ईरान के प्रान्त किरमानशाह में सूबेदार के रूप में काम करता रहा। 1826 में जरनैल वैनतूरा की सिफारिश पर उसे लाहौर दरबार की सेवा में नौकरी मिल गई। वह शीघ्र ही महाराजा की नजरों में चढ़ गया और उसे वजीराबाद का नाजिम नियुक्त कर दिया गया। उसने शहर का रंग-रूप ही बदल कर रख दिया।

वह इटैलियन, फ्रेंच, फारसी और हिन्दुस्तानी भाषाएं बहुत तेजी से बोल सकता था। वह एक सफल प्रबंधक था। उसने सैनिक और नागरिक विभागों में बहुत योग्यता से काम किया था। उसे 1600 रुपये मासिक वेतन मिलता था।

कोर्ट

उसे रणजीत सिंह की सेवा में आये फ्रांसीसी अधिकारियों में सर्वाधिक सम्माननीय माना जाता था। वह 1827 में महाराजा की सेवा में आया था और महाराजा ने सेना का तोपखाना विभाग उसे सौंप दिया था। उसने तोपखाना विभाग को बहुत उन्नत किया और बहुत बढ़िया किस्म की तोपें बनवाईं। तोपखाने को उन्नत करने के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने भी उसकी बहुत प्रशंसा की थी। भारी जागीर के अतिरिक्त कोर्ट को 2500 रुपये मासिक वेतन मिलता था। महाराजा ने 1836 में उसे जरनैल बना दिया था। उसने महाराजा शेर सिंह के कत्ल होने (सितम्बर, 1843) तक लाहौर सरकार की नौकरी की थी। इसके पश्चात् वह फिरोजपुर के रास्ते बच कर अंग्रेजी क्षेत्र की ओर निकल गया था। वह साहित्यिक रुचि सम्पन्न व्यक्ति था। उसने ईरान से काबुल तक का अपना यात्रा-विवरण (सफरनामा) और 1839 से 1845 तक पंजाब में फैली अराजकता के संबंध में एक लेख भी लिखा था।

इनके अतिरिक्त और भी कई यूरोपीय लोग महाराजा की सेवा में थे जिनकी जनसंख्या पचास के लगभग है। यहां उन सभी के विषय में जानकारी देना सम्भव नहीं है।

www.9009.co.in

अध्याय सात

रणजीत सिंह का चरित्र और व्यक्तित्व

महाराजा रणजीत सिंह निस्संदेह एशिया भर में अपने समय का सबसे प्रसिद्ध शासक माना गया है। विदेशों से आने वाले यात्री महाराजा को मिले बिना नहीं लौटते थे। महाराजा के विचित्र व्यक्तित्व की दूर-दूर तक चर्चा हो चुकी थी। विदेशी यात्रियों के अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कम्पनी के उच्चाधिकारी और पड़ोसी राज्यों के शासक महाराजा को मिलने में अपना गौरव समझते थे। रणजीत सिंह से मिलने आया हर व्यक्ति उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका था। अलेक्जेंडर बर्नज ने लिखा है—"मैं एशिया के किसी निवासी से मिल कर इतना प्रभावित नहीं हुआ जितना इस व्यक्ति (रणजीत सिंह) से मिल कर हुआ। बिना किसी विद्या और बिना किसी मार्ग दर्शक के वह अद्भुत कार्यशक्ति और उत्साह के साथ राज्य के समूचे कारोबार को चलाता है[1]।" उसकी वीरता को रेखांकित करते हुए फ्रांसीसी यात्री वाक्मों लिखता है, यदि रणजीत सिंह कुछ समय के लिए पंजाब से बाहर जाने को उपयुक्त समझता तो सारे अफगानिस्तान को जीत लेना उसके लिए बहुत ही आसान था। मात्र रणजीत सिंह की सत्ता ही ऐसी थी जो अंग्रेजों का सामना कर सकती थी[2]।" रणजीत सिंह की शक्ति के सम्बन्ध में जी. टी. वीन लिखता है कि "यदि ईस्ट इंडिया कम्पनी की शक्ति से रणजीत सिंह को रोका न जाता तो वह बहुत समय पहले ही एक महान मुगल बादशाह के रूप जिसका धर्म मुगलों से भिन्न था, दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया होता[3]।"

इसी प्रकार उसकी महान शक्ति और उच्च व्यक्तित्व के विषय में जॉन क्लार्क मार्शमेन ने लिखा है कि, "रणजीत सिंह कुस्तुनतुनिया और पीकिंग के मध्य अपने युग का एक असाधारण व्यक्ति था। उसकी सेना और अपनी महत्वाकांक्षा की सहायता से वह हिन्दुस्तान में एक और साम्राज्य स्थापित कर लेता यदि अमृतसर की सन्धि न की होती[4]। वीन ने रणजीत सिंह की मिस्र के

1. Alexander Burnes, Travels into Bukhara Vol. I. p. 33.
2. Jacquemont, Letters from India Vol. II, p. 139 (ed. 1835).
3. G.T. Vigne, Travels in Kashmir, ladakh etc. Vol. II, p. 425.
4. John clark Marshman, History of India, Vol. III, pp. 39-40.

www.9009.co.in

मेहमत अली के साथ तुलना की है जबकि विक्टर याकमों ने फ्रांस के नेपोलियन बोनापार्ट के साथ कुछ ऐसी बातें भी हैं जिन में रणजीत सिंह इन दोनों से मिलता-जुलता है । उन परिस्थितियों को जिनमें उसने परवरिश पाई थी और उस स्थिति को जिसमें उसने अपने जीवन का प्रारंभ किया था, सामने रखते हुए यदि हम उसके आचरण का मूल्यांकन करें तो वह इन दोनों अर्थात् मेहमत अली और नेपोलियन की अपेक्षा कहीं अधिक शानदार प्रतीत होगा[1] । अपनी प्रजा पर रणजीत सिंह के प्रभाव के विषय में याकमों, जो महाराजा से लाहौर में मिला था, लिखता है—"मुगल बादशाहों की प्रजा जब जब वे बादशाह अपनी शक्ति की शिखर पर थे, उन की आज्ञाओं की इतनी अच्छी तरह पालन नहीं करती थी जितनी महाराजा रणजीत सिंह की प्रजा उसकी आज्ञाओं का पालन करती थी[2] ।" विदेशी यात्रियों की जो महाराजा से लाहौर में मिले थे, उसके प्रति इन सम्मतियों से स्पष्ट है कि वह कितने शक्तिशाली आचरण और व्यक्तित्व का स्वामी था ।

व्यक्ति के रूप में

शक्ल-सूरत

रणजीत सिंह का कद मंझोला और शरीर पतला था । बचपन में चेचक निकलने के कारण उसका चेहरा बदसूरत हो गया था और एक आंख भी बंद हो गई थी । चेहरे पर बहुत गहरे दाग पड़ गये थे । जर्मन यात्री बैरन ह्यूगल जो लाहौर आकर रणजीत सिंह को मिला था, उसके विषय में लिखता है कि—"वह एक छोटे कद का कुरूप व्यक्ति था और यदि उसमें महान् गुण न होते तो संभवत: उसकी ओर कोई आंख उठा कर भी न देखता । उसे पंजाब का सबसे बदसूरत व्यक्ति कहा जा सकता था । उसकी बायीं आंख बिलकुल बंद हो चुकी थी और दाहिनी आंख भी बीमारी से बिगड़ी होने के कारण बहुत भद्दी लगती थी । उसके चेहरे पर चेचक के दागों ने उसकी शक्ल-सूरत को बहुत भद्दा बना दिया था । उसका सिर उसके चौड़े कंधों में धंसा हुआ था जो उसके छोटे कद के मुताबिक कुछ अधिक बड़ा लगता था । उसकी गर्दन मोटी व भौंएं पतली थीं और बायीं भौंहें कुछ लटकी हुई थीं । पर जब वह शस्त्र धारण करके घोड़े पर सवार होता था तो काफी प्रभावशाली लगता था[3] ।" रणजीत सिंह की उपर्युक्त शक्ल-सूरत की कई अन्य समकालीन लेखकों ने, जो महाराजा से मिले थे, पुष्टि की है । ऑस्बोर्न के अनुसार वह पहली नजर में कुछ भद्दा दीखता था । उसकी कद-काठी पंजाब के जाट सिखों जैसी नहीं थी । उसकी

1. Thonton, History of the punjab. Vol. II, p. 174.
2. Jacquenemont, letters from India Vol. II, p. 399 (ed. 835)
3. Baron Hugel, Travels in Kashmir and the Punjab, pp. 379 81.

www.9009.co.in

टांगें कमजोर थीं। मैक्ग्रेगर ने निम्नांकित शब्दों में महाराजा की शक्ल-सूरत की तस्वीर खींची है, कि "उसकी शक्ल-सूरत में से कोई वीर व्यक्ति नहीं झलकता था। वह अपनी शक्ल-सूरत के लिए प्रकृति का अधिक देनदार और अहसानमंद नहीं था। उसकी बायीं आंख खत्म हो चुकी थी और दाहिनी आंख बहुत बड़ी थी जिसमें बहुत चमक थी। उसकी मुस्कान बहुत खुश करने वाली थी और वह सभी अवसरों पर बहुत धैर्य के साथ बातचीत करता था। अपने विचार प्रगट करने के लिए उसने शब्दों की कभी कोई कमी अनुभव नहीं की। वह हर समस्या को बहुत जल्दी समझ जाता था और उसमें पहचान करने का गुण और तर्क देने की शक्ति बहुत ऊंचे स्तर की थी। जवानी में रणजीत सिंह बहुत चुस्त, एक कुशल घुड़सवार और सैनिक करतबों में पूरी तरह से निपुण व्यक्ति था। वह किसी भी स्थिति में कभी परेशान नहीं हुआ और भय कभी उसके समीप से भी नहीं गुजरा उसने अपना सारा जीवन-युद्धों में बिताया और वह सदा सुनहरी महलों की अपेक्षा तम्बुओं या अस्थाई कच्चे साधारण मकानों में रहना पसंद करता था[1]।

रणजीत सिंह सदा ही राजसी अवसरों पर भी—सादा और साधारण लिबास पहनता था। पर वह सदा अपने दरबारियों से इस बात की अपेक्षा करता था कि वे हमेशा भड़कीले वस्त्र और आभूषण पहन कर उसके दरबार में आयें। उसका व्यक्तित्व इतना शक्तिशाली था कि उसके दरबार में कोई भी व्यक्ति उसके पूछे बिना अपनी राय नहीं दे सकता था। अपने दरबारियों पर उसका अत्यधिक दबदबा था। सन् 1831 में जब एक अंग्रेज ने फकीर अजीजुद्दीन से पूछा कि महाराजा की कौन-सी आंख खराब है तो उसने उत्तर दिया, "महाराजा के चेहरे का तेज इतना अधिक है कि मैं कभी भी उसके चेहरे को समीप होकर देखने का साहस ही नहीं जुटा पाया।"

दयालु और दानवीर

सभी समकालीन लेखक रणजीत सिंह को एक बहुत ही दयालु और कृपालु व्यक्ति बताते हैं। उसने कभी भी किसी के खून से अपने हाथ नहीं रंगे। शायद ही कभी किसी ने उसके जितना कम खून खराबा करके इतना बड़ा राज्य स्थापित किया हो[2]। महाराजा की नर्म और समझदार सरकार ने कभी भी उसके विरोधी मुसलमान, हिन्दू या सिख शासकों को जिनके राज्यों पर उसने अधिकार जमाया था, मौत के घाट नहीं उतारा। युद्ध के मैदान के अतिरिक्त

1. Macgregor, History of the Sikhs Vol. I. pp. 215-16 (1846).
2. Baron Hugel, Travels in Kashmir and the Punjab p, 382.

www.9009.co.in

उसने कभी भी किसी की जान नहीं ली भले ही उसकी अपनी जान लेने के लिए कई यत्न किये गये थे। बहुत सारे तथा कथित सभ्य शासकों के जुल्म और सितम की प्रत्यक्ष कार्रवाइयों के मुकाबले में रणजीत सिंह का राज्य कहीं अधिक सरल और दयालुता से भरपूर था[1]। ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना का कमाण्डर-इन-चीफ जो 1837 में लाहौर आया था, रणजीत सिंह के दयालु स्वभाव के विषय में लिखता है, "पंजाब की हमारी सारी यात्रा के समय रणजीत सिंह के अति कृपालु स्वभाव और उसकी अति दयालुता से हमें निश्चय हो गया है कि यह उसका वास्तविक चरित्र है। सभी अवसरों पर बिना किसी को मृत्युदण्ड दिये, इस शासक की अक्खड़ प्रजा उसके पूर्णत: अधीन रहती है।[2]" अपने खाली समय में महाराजा अपने पालतू कबूतरों व अन्य पक्षियों को अपने हाथों से चुग्गा देता था। यदि कभी मारने के लिए ले जाये जा रहे किसी पक्षी या भेड़-बकरी को चीखते-चिल्लाते सुनता तो वह उन्हें तत्काल छोड़ देने की आज्ञा दिया करता था। जीवन के नष्ट होने पर फिर भले वह किसी जानवर की हो या इंसान की, रणजीत सिंह को बहुत दुख होता था। जब पेशावर के सूबेदार अवीताबले (जिसे आम तौर पर अबुताबेला कहा जाता था) ने कुछ समाज-विरोधी और मुजरिम लोगों को फांसी की सजा दे दी तो महाराजा ने पता लगने पर उसे बहुत बुरा-भला कहा और सलाह दी कि ऐसे अवसर पर अपराधियों को पकड़ कर जेल में डाल देना चाहिए। और बाद में उन्हें जेल से भाग जाने का अवसर दे देना चाहिए[3]।"

महाराजा सदा ही पराजितों के प्रति बहुत उदारता दिखाता था। वह कभी भी किसी के प्रति बदले की भावना नहीं रखता था। रणजीत सिंह के समय कई शाही घरानों के लोग दिल्ली और काबुल के बाजारों में गरीबी और भूख से व्याकुल देखे जा सकते थे पर पंजाब में महाराजा ने जिसका भी राज्य अपने राज्य में मिलाया उसके गुजारे के लिए उसी समय ही एक भारी जागीर पेंशन के रूप में दे दी जिससे वह भूतपूर्व शासक और सरदार बहुत सुख-संतोष के साथ अपने दिन व्यतीत कर सकें और अपने गुजारे के लिए उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता न रहे। दयालुता और विशाल हृदयता का यह सिद्धांत मात्र सिख सरदारों पर ही नहीं वरन् मुसलमानों और बाकी सब पर भी लागू होता था।

1. Osborne, p. 36, Cf, Baron Hugel, p. 317; princep, p. 180.
   Burnes Vol. I, p. 143, Macqregor, Vol. I, p. 281.
   Jacquenemout. Vol. II, p. 25.
2. H.E. Fane, Five feals in India Vol. I, pp. 99-6.
3. Macgreq or. Vol. I, p. p. 281 (1846).

www.9009.co.in

खुशवंत सिंह के शब्दों में, रणजीत सिंह, सिख और हिन्दू विरोधियों के मुकाबले मुसलमान शत्रुओं के साथ अधिक नर्मी का व्यवहार करता था[1]।

पराजित शासकों के साथ रणजीत सिंह के व्यवहार के कुछ निम्नांकित उदाहरण उल्लेखनीय हैं। जब रणजीत सिंह ने लाहौर पर अधिकार किया तो वहां के शासक चेत सिंह को कुछ गांवों की जागीर दी गई और अपनी सभी चीजें भी साथ ले जाने की सुविधा दे दी गई। सन् 1801 में, जब महाराजा ने अकाल गढ़ को अपने राज्य में सम्मिलित किया तो वहां के शासक दल सिंह की विधवा को दो गांव जागीर में दिये गये। जब महाराजा ने 1805 में अमृतसर को अपने राज्य का भाग बनाया तो वहां से भंगी शासक गुलाब सिंह की विधवा माई सुक्खा को उसके गुजारे के लिए कुछ गांव जागीर के रूप में दिये गये। कसूर के शासक कुतुबुद्दीन को ममदोट की जागीर दी गई जहां से उसे एक लाख रुपये वार्षिक की आय होती थी।[2] जब तारा सिंह गैबा के क्षेत्र पर अपना अधिकार किया गया तो महाराजा ने उसकी विधवा को दो या तीन गांव उसके गुजारे के लिए दिये। 1818 में मुलतान पर अधिकार करने के पश्चात् वहां के शासक मुजफ्फर खां के बचे हुए पुत्रों को शकर पुर की जागीर दी गई।[3] इसी प्रकार स्यालकोट के जीवन सिंह, जैमल सिंह, कन्हैया, अहमद खां स्याल और कई अन्य शासकों के नाम लिए जा सकते है जिन्हें महाराजा ने गुजारे के लिए जागीरें दी थीं।

रणजीत सिंह अपने दरबार में आने वाले हर यात्री को बहुत ही खुले दिल से उपहार देता था। सोहनलाल सूरी के अनुसार फ्रांसीसी यात्री बारमो ने महाराजा के अतिथि सत्कार और दयालुता का शुक्रिया अदा करते हुए कहा था कि सारे संसार में उसके समान कोई व्यक्ति नहीं है और बिना किसी शंका और अतिशयोक्ति के वह अतिथि सत्कार में अपने युग का एक अद्भुत व्यक्ति था।[4]

कहा जाता है कि रणजीत सिंह हर रात अपने सिरहाने के नीचे सोने व चांदी के सिक्के रखता था जो सुबह उठ कर बिना किसी धार्मिक भेदभाव के जरूरतमंद लोगों में बांटता था। यह उसका प्रतिदिन का नियम था। महाराजा का एक कर्मचारी गणेशदास बडेहरा उसकी दयालुता के विषय में लिखता है कि जब भी कोई व्यक्ति महाराजा की सेवा में प्रस्तुत होता था तो उसे वह धन-दौलत और मूल्यवान पोशाकों से मालामाल कर देता था।

1. Khushwant Singh, Ranjit Singh, p. 52,
2. सोहनलाल सूरी, दफ्तर दूसरा, पृष्ठ 64, अनन्नाथ, पृष्ठ 40.
3. वही, पृष्ठ 225.
4. सोहनलाल सूरी, दफ्तर तीसरा, पृष्ठ 15.

www.9009.co.in

सिख धर्म का एक श्रद्धालु अनुयायी

महाराजा के दिल में सिख धर्म, खालसा पंथ और गुरु बाणी के प्रति अथाह प्यार और सम्मान था। वह नियम से गुरु ग्रंथ साहब का पाठ और कीर्तन सुनता। लाहौर के बाहर अपने दौरों के अवसर पर भी वह गुरु ग्रंथ साहब और ग्रंथी को साथ ले जाता था, प्रत्येक रेजीमेंट के पास अपना गुरुग्रंथ साहब होता था। हर विजय के पश्चात् वह 'अकाल पुरुष' का धन्यवाद करने के लिए हरिमन्दिर साहब (अमृतसर) जाता और वहां कड़ाह प्रसाद और दीपोत्सव करवाता था। वह धार्मिक संस्थाओं की देख-रेख पर पर्याप्त धन व्यय करता था। हर धर्म-स्थान के साथ एक जागीर लगी हुई थी जिसके द्वारा गुरुद्वारे की देख-रेख और लंगर का खर्च पूरा किया जाता था।

परंपरा के विरुद्ध रणजीत सिंह ने अपने नाम के सिक्के नहीं चलाये वरन् उसके सिक्कों पर गुरु नानक साहब का नाम होता था। उसने नानक शाही रुपये और नानकशाही मोहरें चलाईं। इन सिक्कों के एक ओर गुरु नानक की तसवीर थी और दूसरी ओर सिक्का बनाने का साल। रणजीत सिंह सदा ही अपने आपको सिख पंथ का दास समझता था। एक बार प्रधानमन्त्री ध्यान सिंह ने महाराजा से कहा कि वह उनका शासक है और उसे साधारण सेवकों की तरह अपनी कमर के आसपास पटका नहीं बांधना चाहिए। रणजीत सिंह ने पूछा कि राज्य में सिक्का किस के नाम का चलता है। ध्यान सिंह ने उत्तर दिया 'गुरु नानक के नाम को।' महाराजा ने हंस कर कहा कि 'शासक वह है जिसके नाम का सिक्का चलता हो। रणजीत सिंह तो अपने उस शासक और गुरु का साधारण-सा दास है।" जिस चीज को रणजीत सिंह सर्वाधिक प्यार करता था, उसे गुरु या गुरुद्वारे को अर्पित कर देता था। अमृतसर में एक बहुत सुन्दर बाग लगवा कर चतुर्थ गुरु रामदास के नाम पर उसका नाम रामबाग रख दिया और अमृतसर में ही एक किला बनवाया जिसका नाम गुरु गोविंद सिंह जी के नाम पर गोविंद गढ़ रख दिया। 1826 में हैदराबाद के निजाम ने उपहार के रूप में रणजीत सिंह को एक बहुत ही सुन्दर चांदनी या शामियाना भेजा। महाराजा ने यह कह कर कि वह इस शामियाने के नीचे बैठने के योग्य नहीं है, उसे हरिमंदिर साहब को भिजवा दिया। यह शामियाना हरिमंदिर साहब के संग्रहालय में अभी भी सुरक्षित है। रणजीत सिंह अपनी सभी सैनिक उपलब्धियों के पीछे अपने गुरु का हाथ समझता था और प्रायः कहा करता था—"मेरे सिर पर मेरे गुरु का हाथ है।" जब कभी रणजीत सिंह के सामने कोई गंभीर समस्या होती तो वह गुरु ग्रंथ साहब के सामने दो परचियां रखवाता जिनमें से एक पर लिखा होता कि उसे यह काम करना चाहिए और दूसरी परची पर लिखा होता कि यह काम नहीं

www.9009.co.in

करना चाहिए। एक छोटे-से बच्चे से इनमें से एक परची उठवाई जाती और जो कुछ उस पर लिखा होता उसे ही अपने गुरु का आदेश समझा जाता।

एक बार रणजीत सिंह के दिल में किसी ऐसे व्यक्ति से मिलने की प्रबल इच्छा हुई, जिसने गुरु गोबिंद सिंह जी को अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखा हो। एक लंबी खोज के पश्चात् एक वृद्ध सिख मिल गया जिसकी आयु लगभग सौ वर्ष से अधिक थी और जिसने गुरु महाराज के दर्शन किये थे। महाराजा ने उस वृद्ध का बहुत सम्मान किया और उसका मिलना अपने लिए अत्यंत ही सौभाग्य सूचक समझा जिसकी आंखों ने गुरु महाराज के पवित्र चेहरे के दर्शन किये थे। महाराजा ने उस वृद्ध सिख के चरणों की धूलि मस्तक पर लगाई, और उस वृद्ध सिख को कई बहुमूल्य उपहार देकर वापिस उसके घर पहुंचाया।

पंथ में सम्मान प्राप्त व्यक्तियों को वह बहुत आदर देता था। भाई राम सिंह का महाराजा पर अत्यधिक प्रभाव था और आक्रमण के समय उसका तंबू सदा ही अपने तंबू के समीप लगवाता था। इसी प्रकार वह बाबा साहिब सिंह बेदी का अत्यधिक सम्मान करता था और कई बार उसके दर्शनों के लिए उसे निमंत्रण भिजवा कर अपने पास बुलवाता था। साहिब सिंह बेदी के दखल देने पर ही गुजरात की विजय के अवसर पर गुजरात खून खराबे से बच गया था।

महाराजा ने न तो अपने नाम पर और न ही अपने खानदान या मिसल के नाम पर राज्य किया। उसने अपनी राज्य सत्ता का प्रयोग खालसा के नाम पर ही किया था। रणजीत सिंह अपने प्रारंभिक दिनों में 'सिंह साहिब' के नाम से ही पुकारा जाना पसंद करता था। अधिक आयु के सिख सरदार रणजीत सिंह को प्रायः 'भाई साहब' कह कर पुकारते थे। वह सदा अनुभव करता था कि उसे गुरु महाराज की कृपा के कारण ही राज्य प्राप्त हुआ था। वह अपने आपको पंथ का और गुरु घर का कूकर समझता था और अपने आपको गुरु गोबिंद सिंह जी का 'रणजीत नगारा' कहता था।

उसने कभी भी ऊंचा खिताब धारण नहीं किया अपितु इसके विपरीत केवल 'सरकार' नाम की उपाधि का ही अपने लिए प्रयोग किया।[1] शाहजादों को 'खालसा' नाम के साथ पुकारा जाता था जैसे खालसा खड़क सिंह, खालसा शेर सिंह और खालसा नौनिहाल सिंह। इससे पता चलता है कि खालसा पंथ के साथ उसका कितना लगाव था। रणजीत सिंह अपनी सरकार के लिए सदैव 'खालसा जी' या 'सरकार-ए-खालसा' शब्दों का उपयोग करता था। क्योंकि वह समझता था कि उसे राज्य की सारी शक्ति खालसा से ही प्राप्त हुई। उसका समस्त पत्र-व्यवहार खालसा के नाम से ही प्रारंभ होता था और उसकी सरकार में 'वाहेगुरु जी का

1. अमरनाथ, पृष्ठ 16.

www.9009.co.in

खालसा, वाहेगुरु जी की फतेह' के साथ एक दूसरे का अभिवादन किया जाता था और सरकारी तौर पर कसम खाने की रस्म भी गुरु ग्रंथ साहिब के सामने की जाती थी।

उदार और सहनशील

रणजीत सिंह ने अपने राजनैतिक जीवन के आरंभ में ही यह अनुभव कर लिया था कि चूंकि उसे लाहौर के अलग-अलग मतों के लोगों ने लाहौर पर राज्य करने के लिए बुलाया था इस लिए उसके लिए यह उचित था कि वह सभी लोगों के प्रति समान नीति अपनाए और अपने कर्मचारियों को अपने देश के अलग-अलग धर्मों और जातियों में से बिना किसी भेदभाव के अपनी सेवा में ले। रणजीत सिंह का अपनी गैर सिख प्रजा के प्रति व्यवहार उसकी दयालुता, विशाल हृदयता और पितृत्व की भावना पर आधारित था। यह कहना कि महाराजा का बिना जाति-पाति का ख्याल किये सभी के साथ एक जैसा व्यवहार एक धर्म-निरपेक्ष राज्य स्थापित करने की विचारधारा से उद्भूत था, उचित नहीं है। धर्म-निरपेक्ष राज्य का जो अर्थ—हम आज समझते हैं, रणजीत सिंह को उसका ज्ञान नहीं था। उसका रवैया और व्यवहार धार्मिक था किन्तु साम्प्रदायिक नहीं था। धर्म-निरपेक्ष राज्य वह होता है जिसमें शासक अपने धर्म को राज्य पर लागू नहीं करता और उसे अपने राजनैतिक कर्तव्य से बिलकुल पृथक रखता है। पर रणजीत सिंह का रवैया ऐसा नहीं था। वह अपने राज्य को पंजाबियों का राज्य नहीं अपितु खालसे का राज्य कहता था। लेकिन उसने धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया। उसके राज्य में नागरिक और सैनिक प्रबंध तथा राज्य की उच्च पदवियां हिन्दुओं, सिखों, मुसलमानों और ईसाइयों अर्थात् पृथक-पृथक कौमों के लोगों के हाथों में थीं। वह नौकरी के लिए गुण, योग्यता और वफादारी के आधार पर लोगों को चुनता था। उसकी दृष्टि में जाति-पाति और धर्म के लिए कोई स्थान नहीं था। अपने राज्य में की गई नियुक्तियों से उसके असाम्प्रदायिक व्यवहार का पता लगता है। तीनों डोगरा भाई—ध्यान सिंह, गुलाब सिंह और सुचेत सिंह—लाहौर दरबार में उच्च पदों पर थे और सभी को 'राजा' की उपाधि प्राप्त थी। फकीर परिवार का एक उत्तराधिकारी फकीर बहीदुद्दीन अपने परिवार के रिकार्डों के आधार पर लिखता है कि महाराजा के उच्च पदों पर लगे हुए मुसलमान अधिकारियों में दो मंत्री, एक सूबेदार और बहुत से जिलेदार थे। महाराजा के दरबार में 41 मुसलमान उच्च अधिकारी थे जिनमें से दो जरनैल, बहुत सारे कर्नल और शेष विशिष्ट पदों पर नियुक्त थे। लगभग 90 मुसलमान पुलिस, न्याय-विभाग, और सप्लाई आदि के विभागों में उच्च पदों पर आसीन थे। इस प्रकार जबकि शासक सिख था, सरकार का काम

www.9009.co.in

सब धर्मों व कौमों के सहयोग से चलाया जाता था।[1] जिस प्रकार गैर सिखों ने रणजीत सिंह को सहयोग दिया था और उस के लिए अपने प्राणों को भी खतरे में डाल कर राज्य के मान-सम्मान को बढ़ाने का यत्न किया था, उससे पता चलता है कि महाराजा ने किस सीमा तक उदार और सहनशील नीति का पालन किया था। रणजीत सिंह ने जिन मुसलमान स्त्रियों के साथ विवाह किया था, उन्हें उनके धर्म में ही रहने दिया था। बीबी मोरां और गुलबहार बेगम उसकी मुस्लिम पत्नियां थीं जिन्हें पूर्ण आदर व सम्मान मिलता रहा। गुलबहार बेगम ने तो सरकारी खर्च पर लाहौर में एक मस्जिद बनवा दी थी जो अभी तक मौजूद है। महाराजा मुसलमानों के अरबी और फारसी पढ़ाने वाले विद्यालयों को भी उसी प्रकार राज्य की ओर से आर्थिक सहायता देता था जैसे हिन्दुओं और सिखों के विद्यालयों को। उसने हिन्दुओं के साथ भी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। उसका वित्त विभाग सदा ही हिन्दुओं के हाथों में रहा। बहुत सारे हिन्दू, जैसे : दीवान मोहकमचन्द, मिसर दीवानचन्द और रामदयाल सेना में बहुत उच्च पदों पर नियुक्त थे। दीवान सावन मल और दीवान मोती राम महाराजा के बहुत बढ़िया सूबेदार समझे गये थे। महाराजा ने अपनी हिन्दू पत्नियों को पूजा के लिए मन्दिर बनवा दिये थे। उसने हरिद्वार और ज्वालामुखी की भी यात्रा की और वहां हजारों रुपये चढ़ाये और मन्दिरों के पुजारियों को बहुत मूल्यवान उपहार दिये। फ्रांसीसी यात्री याकमो लिखता है कि महाराजा के समय में धार्मिक विद्वेष लुप्त हो चुका था और रणजीत सिंह इस हद तक सहनशील था कि उसकी दृष्टि में सभी लोग एक समान थे।[2] महाराजा रणजीत सिंह के विजय अभियानों में गैर सिखों ने भी बहुत शानदार कारनामे किये। कर्नल शेख बसावण की मुस्लिम सेना ने लाहौर दरबार के झण्डे राज्य की सीमाओं से दूर बाहर जा गाड़े थे। डोगरा अधिकारी जोरावर सिंह लाहौर दरबार के झंडे के नीचे अपनी सेना को हिमालय पर्वत पर ले गया। इस प्रकार लाहौर राज्य के अन्तर्गत रहने वाले हिन्दू, सिख, मुस्लिम कौमों ने अपने प्यारे राज्य की रक्षा के लिए निस्संकोच कन्धे से कन्धा मिला कर युद्ध के मैदानों में मिल कर अपना रक्त बहाया था।

अनपढ़ लेकिन विद्या का संरक्षक

रणजीत सिंह को बचपन में गुरुमुखी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुजरांवाला में भागू सिंह की धर्मशाला में भेजा गया था। शिक्षा में कोई दिलचस्पी न होने के कारण वह अनपढ़ ही रह गया। बहादुरी के उस युग में

1. Faqir Waheed-ud-Din. the Real Ranjit Singh pp. 36-7.
2. Jacquemont. Letters from India vol. II, pp. 19-20. CF Amar Nath p. 10.
3. बूटेशाह, दफ्तर पांचवां, पृ० 8 (हस्तलिखित लाइब्रेरी, डा० गंडा सिंह, पटियाला)

www.9009.co.in

शस्त्र-प्रयोग में कुशलता, घुड़सवारी, शिकार खेलना और नदियों को तैर कर पार कर जाना जैसी बातों को ही एक राजकुमार के लिए उपयुक्त शिक्षा समझा जाता था और रणजीत सिंह इन सभी बातों में निपुण था। मध्यकालीन युग में पुस्तकीय ज्ञान की कमी किसी शासक के मार्ग में रुकावट नहीं समझी जाती थी। भारत के कई शासक जैसे अलाउद्दीन खिलजी, अकबर और शिवाजी बिल्कुल अनपढ़ थे।" रणजीत सिंह के भाग्य ने उसे औपचारिक शिक्षा से वंचित रखा था। पर शिक्षा की कमी को उसने अपनी जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता, तीक्ष्ण बुद्धि और अंतर्ज्ञान द्वारा पूरा कर लिया था।[1] सभी सरकारी कागज और प्रार्थनापत्र उसे पढ़ कर सुनाये जाते थे। वह तुरंत उसके संबंध में आवश्यक उत्तरों की आज्ञाएं दे देता था। उत्तर के अंतिम प्रारूप स्वीकृति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता और यदि आवश्यकता होती तो वह उसमें परिवर्तन का सुझाव दे देता था।

रणजीत सिंह एक सही और तीव्र स्मरण शक्ति का स्वामी था। भले ही वह एक शब्द भी पढ़-लिख नहीं सकता था पर वह सारा सरकारी काम-काज बहुत योग्यता से निभाता था। सरकारी कामों की उसे बहुत गहरी सूझ-बूझ थी। परगनों के अधिकारी अपनी आय और व्यय का जो भी लेखा रणजीत सिंह के सामने प्रस्तुत करते थे उनकी वह स्वयं जांच-पड़ताल करता था। व्यर्थ के खर्चों की मदें वह कटवा देता और कई बार आय व व्यय की सूचियां तैयार करने के लिए बहुत सादी विधियों का सुझाव देता था। उसकी ताड़ने वाली आंख से कोई भी वस्तु बच नहीं सकती थी।

उसे अपने राज्य के हजारों गांवों के नाम जुबानी याद थे और उन गांवों के मुखियाओं और वहां काम करने वाले सरकारी कर्मचारियों में से कईयों को वह निजी तौर से जानता था।[2] भले ही रणजीत सिंह स्वयं अनपढ़ था, पर वह विद्या का बहुत बड़ा संरक्षक था। कहा जाता है कि प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उसने बहुत सारे स्कूल खोले थे। उन स्कूलों को बहुत उदारतापूर्वक सहायता दी। रणजीत सिंह के समय में और उससे पहले भी लोगों को शिक्षा देना सरकार की जिम्मेदारी नहीं होती थी। फकीर अजीजुद्दीन ने अपने खर्च पर फारसी और अरबी पढ़ाने के लिए लाहौर में एक विद्यालय खोला था। महाराजा ने उसके लिए पर्याप्त सहायता दी थी।

महाराजा के समय में बड़े नगरों में बहुत सारे गुरुमुखी पढ़ाने वाले स्कूल चलते थे। अमृतसर में भाई राम सिंह और भाई खड़क सिंह के स्कूल बहुत

1 B.J. Hasrat, Life and Times of Ranjit Singh p. 192.
2. गंडा दास वडहेरा, पृ० 326.

www.9009.co.in

प्रसिद्ध थे। जिन्हें महाराजा की ओर से सहायता मिलती थी। महाराजा अपने राज्य में अंग्रेजी के अध्ययन को भी बहुत प्रोत्साहन देता था। सन् 1834 में महाराजा ने सोभा सिंह से कहा था कि लहना सिंह मजीठिया के भाई गुज्जर सिंह को अंग्रेजी पढ़ने के लिए इंगलैंड भेजा जाए। रणजीत सिंह ने अपने पुत्र शेर सिंह को भी अंग्रेजी पढ़ाने का प्रबंध किया था। जनवरी, 1835 में महाराजा लाहौर में एक अंग्रेजी स्कूल खोल कर उसमें एक अमरीकन मिशनरी जॉन लॉरी को अध्यापक नियुक्त करना चाहता था, पर लॉरी के साथ अनुबंध न हो सका। लॉरी उस स्कूल में अनिवार्यत: बाइबिल की शिक्षा देना चाहता था और रणजीत सिंह यह बात मानने को तैयार नहीं था। इसलिए महाराजा ने पादरी लॉरी को कुछ उपहार और एक सिरोपा देकर 5 मार्च, 1835 को लाहौर से विदा कर दिया। लुधियाना के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के लिए रणजीत के राज्य में से बहुत सारे विद्यार्थी आते थे और महाराजा अपने दरबारियों को सदैव प्रेरणा देता रहता कि वे अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाएं।

एक तीव्र ज्ञान-पिपासु

पूरी तरह अनपढ़ होने के बावजूद भी रणजीत सिंह में जानकारी प्राप्त करने की अथाह प्यास थी। उसे जो भी मिलता वह उससे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का यत्न करता। उसे अनगिनत विषयों में दिलचस्पी थी। युद्ध से लेकर शराब तक, राजकुमार से लेकर गरीब आदमी तक, तोपों से लेकर घोड़ों की नालबंदी तक, स्वर्ग से नरक तक और अच्छाइयों से बुराइयों तक कोई भी ऐसा विषय नहीं था जिसके विषय में वह प्रश्न न पूछता। विदेशी यात्रियों पर तो वह प्रश्नों की बौछार ही कर देता। बैरन ह्यूगल लिखता है, "महाराजा के साथ मेरी पहली भेंट के समय मुझे एक भी प्रश्न करने का मौका दिए बिना महाराजा निरंतर मुझ से एक घंटे तक प्रश्न पूछता रहा।[1] फ्रांसीसी यात्री याक्मों, जो लाहौर में महाराजा से कई बार मिला था, लिखता है, "महाराजा के साथ बातचीत एक डरावना सपना लगता है। वह सम्भवत: इस देश में मिला पहला भारतीय है जिसकी जिज्ञासा इतनी तीव्र है। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा में वह सारी कौम की कमी पूरी कर देता है। उसने मुझसे भारत के विषय में, अंग्रेजों के विषय में, यूरोप, बोनापार्ट, इस संसार, अगले संसार, नरक, स्वर्ग, आत्मा, परमात्मा, देवताओं और दैत्यों के विषय में और इसके अतिरिक्त हजारों प्रश्न पूछे थे।[2] उससे मिलने वाले अन्य विदेशियों की भी यही राय है। कई बार एक ही समय में अनगिनत प्रश्न पूछ कर वह व्यक्ति को भौचक्का कर देता था। जब कर्नल बिलासिस अपनी नौकरी के संबंध में

1. Baron Hugal, Travels in Kashmir and Punjab, p. 289.
2. Jacquemont, letters from Indian, Vol. 1, p. 396 (ed. 1834-5)

www.9009.co.in

महाराजा से मिला तो महाराजा ने उससे असंख्य प्रश्न पूछे। बिलासिस के कहने पर कि वह सभी कुछ कर सकता है, महाराजा ने एक ही सांस में उससे पूछ डाला, "क्या तुम किला बना सकते हो? क्या तुम किसी लम्बी बीमारी को हटा सकते हो? क्या तुम तोप की ढलाई कर सकते हो? क्या तुम घोड़े की नाल लगा सकते हो? क्या तुम मेरी ठहर गई घड़ी की मुरम्मत कर सकते हो?" ओस्बोर्न को भी जो 1838 में लाहौर आने पर महाराजा से मिला था ऐसा ही अनुभव हुआ था। महाराजा और ओस्बोर्न के मध्य हुई निम्नलिखित बातचीत से महाराजा की राजनैतिक सूझ-बूझ और तीव्र ज्ञानेच्छा का पता चलता है।

महाराजा : इस देश में आपने कितने सैनिक रखे हुए थे?

ओस्बोर्न : लगभग दो लाख।

महाराजा : यही मुझे पहले बताया गया है। क्या आप एक ही समय यह सारी सेना रणभूमि में ला सकते हैं?

ओस्बोर्न : बिलकुल नहीं। न ही इसकी आवश्यकता है। बीस या अधिक से अधिक तीस हजार अंग्रेज सैनिक भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंच सकते हैं और कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती।

महाराजा : आप बहुत बढ़िया व्यक्ति हैं। एक अंग्रेज कितने फ्रांसीसियों को हरा सकता है?

ओस्बोर्न : इंगलैंड के स्कूलों में छात्रों को सदा यह सिखाया जाता है कि उनमें से हर एक तीन-तीन फ्रांसीसियों के बराबर है।

महाराजा : और कितने रूसियों के बराबर?

ओस्बोर्न : फ्रांसीसी रूसियों को पराजित कर देते हैं और हम फ्रांसीसियों को।

महाराजा : यदि रूसी सेना सिंध नदी को पार कर आये तो आप उनके विरुद्ध कितनी सेना भेजेंगे?

ओस्बोर्न : महाराजा साहिब हमारे साथ होंगे और उनके अतिरिक्त रूसियों को वापिस भिजवाने के लिए जितनी सेना की आवश्यकता होगी, ले आई जावेगी।

महाराजा : हम अवश्य ही आपके साथ होंगे।[1]

महाराजा के दरबार में आने वाले सभी यात्री महाराजा की जानकारी प्राप्त करने की रुचि से बहुत प्रभावित होते थे। रणजीत सिंह यात्रियों से

1. Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh pp. 106-7 (ed. 1840)

www.9009.co.in

निस्संकोच असंख्य प्रश्न पूछता था। बहुत गहरी और व्यापक जानकारी रखने वाला व्यक्ति ही उसके समक्ष संतोषप्रद उत्तर दे सकता था।

महाराजा की कुछ अन्य निजी विशेषताएं

रणजीत सिंह वीरता और निर्भीकता के लिए अपनी जवानी के प्रारम्भ में ही प्रसिद्ध हो गया था। खतरों से जूझना उसका शौक था। जब वह स्वयं युद्ध में भाग नहीं ले रहा होता था तो किसी ऊँचे स्थान पर खड़ा होकर वह अपने सैनिकों के करतब देखा करता था। यदि कभी उसके सैनिक हिम्मत हारते नजर आते तो वह अपने प्राणों की चिन्ता न करता हुआ एक दम घमासान युद्ध में जा धमकता। वह गम्भीर निजी खतरों के समक्ष भी कभी न घबराता और न ही हिम्मत हारता था। युद्ध क्षेत्र में वीरता का प्रदर्शन करने वाले अपने सैनिकों को खुले दरबार में सम्मानित करता था। उसमें शारीरिक कष्ट झेलने का अत्यधिक हौसला था। वह घोड़े पर सवार होकर कई-कई घंटों तक वरन् दिनों तक सफ़र कर सकता था। कई बार अपने राज्य के सदर क्षेत्रों में जा पहुंचता और लोगों की शिकायतें सुनता। वह स्वयं बहुत सादा जीवन बिताता था और बहुत ही सादे वस्त्र पहनता था। पर अपने सरदारों को सदैव यही हिदायत देता था कि वे बहुत मूल्यवान वस्त्र पहन कर दरबार में आया करें।

महाराजा में अच्छे घोड़ों के प्रति बहुत कमजोरी थी। कहा जाता है कि महाराजा ने अपने निजी उपयोग के लिए 1000 घोड़े रखे हुए थे। अपने अधीनस्थ शासकों और विदेशी सरकारों को उपहार के रूप में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त वह बढ़िया घोड़े भी भिजवाता था। इंगलैंड के सम्राट ने बहुत बढ़िया नस्ल की चार घोड़ियां व एक बग्घी भी महाराजा को भिजवाई थी। सुप्रसिद्ध लैली नामक घोड़ी के विषय में अनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं जिसे प्राप्त करने के लिए महाराजा को एक बहुत बड़ी सेना पेशावर की ओर भेजनी पड़ी थी। महाराजा ने स्वयं बैरन ह्यूगल को बताया था कि लैली को प्राप्त करने के लिए उसे साठ लाख रुपये और 12,000 सैनिकों का बलिदान देना पड़ा था।[1]

रणजीत सिंह में गहन बुद्धिमत्ता, प्रशंसनीय संयम और असाधारण सूझ थी। सरकारी काम-काज करते समय वह बहुत कम बोलता था पर विदेशी यात्रियों के साथ हर प्रकार का मजाक कर लेता था। दरबार के बाहर वह बातचीत करने के लिए अपने आपको बहुत ही स्वतंत्र अनुभव करता था और साधारण से साधारण व्यक्ति के साथ हर प्रकार की बातें कर लेता था। अपना सरकारी कामकाज करने के लिए वह एक अनथक और सम्भवतः सारे राज्य में व्यस्ततम व्यक्ति था।

1. Baron Hugel, Travels in Kashmir and Punjab, p 333.

www.9009.co.in

लुधियाना एजेंसी का राजनैतिक एजेंट कैप्टन वेड ने जो रणजीत सिंह से प्राय: लाहौर जाकर मिलता रहता था, उसके प्रतिदिन के कार्यक्रम के विषय में लिखा है कि महाराजा प्रात: पांच बजे उठता, एक या दो घंटे तक घोड़े की सवारी करता और अपनी सेना का निरीक्षण करने के पश्चात् घोड़े पर बैठे-बैठे सुबह का नाश्ता कर लेता। वह नौ बजे के लगभग वापिस लौटता और दरबार लगाता जिसमें सरकारी रिपोर्टों और मामलों की जांच करता व सरकारी अधिकारियों को आदेश जारी करता। दोपहर में एक घण्टे के लिए विश्राम करता। इस समय भी उसका सचिव उसके अचानक दिये गये आदेश लिखने के लिए उसके समीप बैठा रहता था। दोपहर में एक बजे के पश्चात् वह उठ जाता और कुछ समय के लिए गुरुग्रंथ साहब में से गुरुवाणी के शब्द सुनता और इसके पश्चात् फिर से दरबार लगा लेता जो शाम तक जारी रहता। सामान्यत: रात को आठ और नौ बजे के बीच सो जाता था और उसका सचिव रात भर उसके साथ वाले कमरे में रहता था। मैकग्रेगर के कथनानुसार यदि किसी सरकारी काम-काज के संबंध में रणजीत सिंह के व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती तो वह रात-दिन बिना आराम किये अपना कर्तव्य निभाता था। कई बार बिस्तर में लेटे हुए कोई बात याद आ जाती तो वह तुरंत अपने सचिव को बुला कर नोट करवाता और आने वाली सुबह उसे कार्यान्वित करने का आदेश देता। महाराजा अपनी जिम्मेदारियां निभाने में कभी कोताही नहीं करता था। प्रतिदिन का कार्य उसी दिन समाप्त करके उठता था भले ही रात को देर तक बैठना पड़े।

शासक के रूप में

गणेशदास बडेहरा महाराजा की सरकार की स्थिरता और उसके राज्य-प्रबंध की बहुत प्रशंसा करता है। उसके अनुसार महाराजा प्रबंध संबंधी क्षमता व वीरता के उच्चस्तरीय गुण थे। ये दोनों गुण एक ही व्यक्ति में बड़ी मुश्किल से प्राप्त होते हैं। कई बार वह बहुत खतरनाक योजनाएं बनाता था पर उन्हें बहुत कुशलता के साथ पूरा करता। यदि कभी किसी योजना में कुछ सीमा तक असफल भी हो जाता तो वह अपनी सरकार के काम काज में कभी भी विघ्न नहीं पड़ने देता था। वह 'खून का बदला खून" के सिद्धांत में विश्वास नहीं रखता था। बल्कि दु:खी व्यक्ति की शिकायत पर वह दोषी व्यक्ति को हल्की-सी सजा देता था जो उसकी इस नीति के अनुरूप होती थी कि दोषियों का सुधार करना है, उन्हें सदा के लिए बरबाद नहीं कर देना है।"[1]

रणजीत सिंह में एक विशेष प्रकार की शाही प्रवृत्ति थी जो आम तौर से

1. गणेश दास बडेहरा, पृ० 329

www.9009.co.in

एशियाई शासकों में देखने को नहीं मिलती। उसे सदा इस बात का पता होता था कि वह किस मामले में किस सीमा तक आगे बढ़ सकता है। भले ही उसकी योजनाएं कितनी ही बड़ी और दूरगामी क्यों न होतीं, उसकी तात्कालिक कारवाई व्यावहारिक तथ्यों के अनुसार होती थी। वह सदा अपना पहला कदम अच्छी तरह जमाने के पश्चात् ही दूसरा कदम उठाता था। वह कभी भी किसी दुश्मन को नहीं ललकारता था जब तक उसे यह निश्चय न हो जाये कि अंतिम परिणाम उसके हक में निकलेगा।[1]

एच० एम० लारेंस के अनुसार रणजीत सिंह ने अपनी उपलब्धियों का इस प्रकार बयान किया है: "मैंने दयालुता, अनुशासन और नीति के साथ अपने राज्य प्रबंध को नियमित और परिरक्ष किया है। मैंने वीरों को पुरस्कार दिये हैं और जहां कहीं भी किसी में योग्यता पाई है, मैंने उसे उत्साहित किया है। युद्ध-क्षेत्र में मैंने वीरों को ऊंचा उठाया है और मैंने हर प्रकार के खतरों व थकावटों को अपने सैनिकों के साथ मिल कर झेला है। युद्ध-क्षेत्र में और मंत्रिमंडल में मैं कभी भी अपने अंदर पक्षपात को प्रविष्ट नहीं होने देता और निजी सुख और आराम के प्रति मैंने सदा अपनी आंखें बंद रखी हैं। मैंने साम्राज्य स्थापित करके सदा से ही लोगों के प्रति चिन्ताओं का चोगा पहना हुआ है। श्री अकाल पुरुष जी अपने इस दास के प्रति दयालु रहे हैं और इसकी सत्ता में सदैव वृद्धि की है जिसके परिणामस्वरूप इस दास का राज्य चीन और अफगानिस्तान की सीमा तक जा पहुंचा है।"[2]

अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भ से ही रणजीत सिंह ने लोगों की भलाई को अपने सामने रखा। जब 6 जुलाई, 1799 को वह लाहौर में प्रविष्ट हुआ तो उसने तुरंत ही ऐलान किया कि सभी दुकानदार, साहूकार और कारीगर बिना किसी भय के अपना प्रतिदिन का कार्य करें। किसी व्यक्ति को आज्ञा नहीं दी जायेगी कि वह किसी भी कारण उन्हें परेशान करे। वे सभी लोग उसे अपना रखवाला और रक्षक समझें। यदि किसी को भी शहर की शांति भंग करने के लिए दोषी पाया जाएगा तो उसे कठोर सजा दी जाएगी। रणजीत सिंह के इस रवैये और व्यवहार के कारण वह अपनी प्रजा में प्यार और सम्मान का पात्र बन गया। इसी प्रकार जब रणजीत सिंह ने मार्च, 1824 को पेशावर पर विजय प्राप्त की थी तो उसने किसी को नगर में लूट-पाट मचाने की छूट नहीं दी थी। वह जानता था कि नगर पर विजय पाने के पश्चात् वह नगर उसका अपना था और उसके निवासी उसकी प्रजा थे जिनकी रक्षा करना उसका मुख्य कर्त्तव्य था।

1. Charles Gough and Arthur Innes. The Sikhs and the Sikh wars, p. 29.
2. H.M. Lawrence, Adventures of an officer in the Punjab, Vol. I, pp. 61-5.

www.9009.co.in

महाराजा की लोगों की शिकायतें जानने के लिए अपने महलों के बाहर संदूकची रखवा दी थी जिसमें हर व्यक्ति अपनी शिकायत लिखित रूप में डाल सकता था। उसकी चाबी महाराजा के अपने पास होती थी। जब कभी कोई व्यक्ति महाराजा से मिलना चाहता था और महाराजा तक पहुंचने में कठिनाई अनुभव करता था तो वह दूर से ही बांह ऊंची करके एक कपड़ा हिलाता था, जिसे पल्लू फिराना कहते थे। महाराजा उसका कपड़ा देख कर उसे अपने पास बुला लेता था।

महाराजा अपने जीवन के हर क्षेत्र में एक व्यावहारिक व्यक्ति के रूप में सामने आता था। भावनाओं के प्रवाह में वह कभी नहीं बहता था। वह कभी भी हवाई घोड़े नहीं दौड़ाता था। वह केवल वही योजनाएं बनाता जिन्हें वह कार्य रूप में परिणत कर सकता था। ओसबोर्न के शब्दों में : "उसकी सफलता और विशेष रूप से उसकी शक्ति का संगठन काफी सीमा तक उसके विचारों की परिपक्वता और उसकी योजनाओं के व्यावहारिक होने पर आधारित था। वह कभी भी अपनी शक्ति को खतरनाक और अव्यावहारिक कार्यों में नष्ट नहीं करता था वरन् अपनी इच्छा को सम्भावनाओं की सीमा में रखता था। उसकी योजनाएं सदा सही समय पर और बहुत योग्यता के साथ तैयार की जाती थीं जिससे उनमें सफलता निश्चित ही होती थी। यदि कभी-कभार वह अपनी किसी योजना में किसी सीमा तक असफल भी होता तो राज्य की स्थिरता पर गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ने देता था।[1] लैपल ग्रिफिन के अनुसार, "रणजीत सिंह एक जन्मजात शासक था और उसमें शासन करने की एक प्राकृतिक और ईश्वर प्रदत्त प्रवृत्ति थी। लोग सहज ही उसके आदेशों का पालन करते थे और उनमें महाराजा की आज्ञाओं का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं थी। जो अनुशासन उसने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भी सारी सिख प्रजा पर अर्थात् रईसों, पुजारियों और सामान्य लोगों पर सफलतापूर्वक लागू किया था, वह उसकी महानता की सूचक थी।[2] यही लेखक रणजीत सिंह के विषय में एक अन्य स्थान पर लिखता है, "भले ही उसे मरे हुए आधी शताब्दी बीत चुकी है किन्तु उसका नाम सारे प्रान्त में घर-घर में लिया जाता है। उसकी तस्वीरें अमृतसर और दिल्ली के चित्रकारों का लोकप्रिय विषय है।"[3]

एक सूझ-बूझ वाला राजनीतिज्ञ

महाराजा एक बहुत बुद्धिमान राजनीतिज्ञ था। राजनीति में उसे पराजित

1. Osborne, The Court and Camp of Ranjit Singh pp. XI-XII 1840)
2. Lepel Greffin, Ranjit Singh, pp. 91-2 (1967)
3. Ibid, p. 88.

www.9009.co.in

करना कोई आसान काम नहीं था। अंग्रेजों की बहुत गहरी चालें भी उसकी समझ से परे नहीं थीं। अमृतसर की संधि (1809 ई०) जो अंग्रेजों से की गई थी, महाराजा की राजनीति का एक स्पष्ट उदाहरण है। वह अपने सीमित साधनों और ईस्ट इंडिया कम्पनी की भारी शक्ति से अनभिज्ञ नहीं था। उसने एक परिपक्व राजनीतिवेत्ता की भांति अंग्रेजों के साथ युद्ध करने से संकोच किया। भले ही अंग्रेजों ने सिंध, शिकारपुर और फिरोजपुर के मामलों में उसे काफी उकसाया, उसमें अपने उस राज्य के हितों को सदा बनाये रखने की ओर विशेष ध्यान दिया जिसे उसने बहुत लम्बी, खर्चीली और खतरनाक जद्दोजहद के बाद स्थापित किया था। रणजीत सिंह की उत्तर-पश्चिमी सीमा-नीति उसकी गहन राजनैतिक समझ का एक स्पष्ट प्रमाण है। उसने पेशावर, डेरा गाजी खां, डेरा इस्माइल खां, बन्नू और कोहाट को जीत कर भी जल्दी लाहौर दरबार के साथ सम्मिलित नहीं किया था। उसने उन क्षेत्रों में अपनी स्थिति को सशक्त करने के पश्चात् ही ऐसा किया था। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमा के पुराने किलों की मुरम्मत करवा कर और कुछ नये किले बनवा कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया था। अफगानिस्तान पर रणजीत सिंह का आक्रमण न करना उसकी राजनैतिक सूझ-बूझ को व्यक्त करता है। उसके राजनीतिज्ञ होने के कई अन्य प्रमाण उसके नागरिक और सैनिक राज्य प्रबंध में भी प्राप्त होते हैं। उसने प्रारम्भ से ही यह अनुभव कर लिया था कि यूरोपीय सैनिक प्रणाली, भारतीय सैनिक प्रणाली की अपेक्षा बढ़िया है। इसलिए उसने अपनी सेना के बड़े भाग को यूरोपीय प्रणाली में ढाल दिया था। वह सदैव अपने नागरिक और सैनिक प्रबंध में बहुत गहन छानबीन के पश्चात् ही नियुक्तियां करता था। वह सदैव हर जगह के लिए सही व्यक्ति का चुनाव करता था। उसे मालूम था कि माझा और दोआबा के जाट विशेष रूप से सैनिक जीवन के उपयुक्त थे। इसलिए उसने उन्हें अपनी सेना में भरती किया और बहुत ऊंचे-ऊंचे पद दिये। इसी प्रकार उसने हिन्दुओं को नागरिक राज्य-प्रबंध में, विशेष रूप से वित्त विभाग में बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किया। सभी जातियों का सहयोग और सद्भावना प्राप्त करने के लिए उसने सभी लोगों को बिना किसी भेदभाव के अपनी सेना में लिया था। सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करना उसकी राजनैतिक सूझ-बूझ और परिपक्व राजनीति का परिणाम था। लेपल ग्रिफिन के शब्दों में "उसने जिस देश को अपनी सैनिक योग्यता से जीता था, उस पर अपने इरादे की शक्ति और सुदृढ़ता के साथ राज्य किया था, जिसके परिणामस्वरूप उसे उस शताब्दी के राजनीतिज्ञों की सबसे अगली पंक्ति में स्थान प्राप्त हुआ था।[1]

1. Lepel Greffin, Ranjit Singh, p. 95, (1967)

www.9009.co.in

सेनानायक और विजेता के रूप में

रणजीत सिंह एक वीर सिपाही, सुयोग्य जनरल, एक शानदार घुड़सवार और तलवार का धनी था। वह बिना थकान के सारा-सारा दिन घुड़सवारी कर सकता था। बचपन में ही उसे घुड़सवारी करने, शिकार खेलने और तलवार चलाने का बहुत शौक था। उसने हशमत खां चट्ठा को जिसने छिप कर उस पर तलवार से आक्रमण किया था, मारने में असाधारण वीरता का प्रमाण दिया था। सन् 1831 में रोपड़ नामक स्थान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक से भेंट के समय जबकि महाराजा की आयु इक्यावन साल की थी, उसने घुड़सवारी और तलवारबाजी के शानदार करतब दिखा कर सभी को दंग कर दिया था। आसपास सैनिक योग्यता के परिणामस्वरूप ही अपनी छोटी सी मिसल को एक विशाल शक्तिशाली और नियमित राज्य में परिवर्तित करने में सफल हो गया था। रणजीत सिंह उस समय मात्र दस वर्ष का ही था जब सोधरा से उसके पिता महासिंह के बीमार होकर वापिस गुजरांवाला आ जाने के पश्चात् उसने अपने सैनिकों की कमान सम्भाली थी और भंगियों को पराजित किया था। लैपल ग्रिफिन के शब्दों में "रणजीत सिंह सिपाहियों के लिए एक आदर्श सिपाही था। वह शरीर से दुबला, स्वस्थ, फुर्तीला, साहसी और मुसीबतें झेलने की शक्ति रखने वाला व्यक्ति था।[1]

रणजीत सिंह ने 1799 में लाहौर पर विजय प्राप्त कर ली और एक दशक में ही उसने सतलुज के इस पार अहलूवालिया मिसल को छोड़कर बाकी सभी मिसलों को अपने राज्य में मिला लिया था। उसने मुलतान, कश्मीर, अटक, पेशावर और डेरा जात को भी अपने अधीन कर लिया था। निस्संदेह उसकी अनेक विजयों का सेहरा मोहकमचन्द, दीवानचन्द, हरी सिंह नलुआ आदि सेनापतियों के सिर पर था, पर उसने बहुत सारी लड़ाइयों में स्वयं भी भाग लिया था और हर युद्ध व आक्रमण के पीछे उसी का उत्साह, नेतृत्व और योजना होती थी। युद्ध के मैदान में वह अपनी सेना की सबसे अगली पंक्ति में होता था। भयानक शत्रुओं के सम्मुख उसने अपने घुड़सवार दस्तों सहित दो बार सिंधु नदी पार करके विजय प्राप्त की थी। वह एक अनथक लगन वाला व्यक्ति था। मैकग्रेगर के अनुसार किसी लेख में भी कोई ऐसा उल्लेख नहीं जब वह किसी भी अवसर पर परेशान अथवा भयभीत हुआ हो। सन् 1822 में वैनतूरा और ऐलॉर्ड के महाराजा की सेवा में आने के पश्चात् सेना को नई यूरोपियन प्रणाली में ढालने और सेना में अनेक सुधार करने का कार्य शुरू किया गया था। सैनिकों के लिए बाकायदा प्रशिक्षण और परेड प्रारम्भ की गई और

1. Lepel Greffin, Ranjit Singh p. 90. (Reprint 1967)

www.9009.co.in

कठोर अनुशासन लागू किया गया। उसने सैनिक रूप में अपने राज्य को अत्यंत ही शक्तिशाली बना लिया और अपनी शक्तिशाली सेना की सहायता से राज्य की सीमाओं का दूर तक विस्तार किया। यदि 1809 की संधि के द्वारा सतलुज नदी को पार करने में रोक न लग गई होती तो उसके लिए दिल्ली तक पहुंचना कोई कठिन कार्य नहीं था। उसमें शिवाजी और हैदरअली जैसी महान् सृजनात्मक प्रतिभा थी। उसने अपनी अद्भुत योग्यता के कारण एक भारी सिख राज्य स्थापित किया था और यदि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी विशाल शक्ति के साथ उसके राज्य को घेर न लिया होता तो वह भारत में एक महान साम्राज्य स्थापित कर लेता। महाराजा उन महान व्यक्तियों में से एक था जो अवसर मिलने पर संसार का रंग रूप ही बदल देते हैं। रणजीत सिंह ने बिखरी हुई सिख मिसलों को इकट्ठा करके एक महान और शक्तिशाली राज्य में परिवर्तन कर दिया।

रणजीत सिंह का इतिहास में स्थान

रणजीत सिंह की बहुत सारे ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ जैसे शेरशाह सूरी, नैपोलियन, बिस्मार्क, अब्राहम लिंकन, शिवाजी और हैदरअली के साथ तुलना की गई है। वास्तव में एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के साथ तुलना नहीं हो सकती जब तक दोनों की परिस्थितियों में अभिन्नता न हो। जिन हालात में रणजीत सिंह ने अपना राज्य स्थापित किया वे उन व्यक्तियों की परिस्थितियों से कहीं अधिक बदतर थे जिनसे उसकी तुलना की गई है। उपरोक्त व्यक्तियों में भारतीय सेनानायकों में केवल मुगलों के विरुद्ध ही लड़ना पड़ा था पर महाराजा रणजीत सिंह ने मराठों, अंग्रेजों, अफगानों और मिसलों के सिख प्रशासकों के विरोध के बावजूद एक भारी राज्य स्थापित किया था। उसने पंजाब के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र को अफगानिस्तान के अधिकार क्षेत्र से निकाल कर अपने अधीन किया था। उसने पंजाब के लोगों को बढ़िया राज्य-प्रबंध दिया और पंजाब का ऐसा सुगठित राज्य स्थापित किया जैसा कि उससे पहले कोई भी नहीं कर सका। उसने अपनी सेना को पश्चिमी देशों की सेना प्रणाली के अनुसार संगठित करके एक अजेय शक्ति में परिवर्तित कर दिया। वह एक अद्वितीय राजनीति वेत्ता था। उसने सदा राजनैतिक और सैनिक परिस्थितियों को पूरी तरह समझने और नियंत्रण में रख सकने की योग्यता का प्रमाण दिया। निस्संदेह रणजीत सिंह एक महान् सर्जक और प्रतिभाशाली व्यक्ति था।

www.9009.co.in

अध्याय आठ

रणजीत सिंह के राज्य काल में सांस्कृतिक और आर्थिक उन्नति

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के सिख शासकों को साहित्य व कला की ओर यथोचित ध्यान देने का पर्याप्त समय न मिल सका क्योंकि उनके सामने अपने राज्यों को संगठित करने की अधिक आवश्यक समस्यायें खड़ी रहती थीं, फिर भी उन्होंने शिक्षा, साहित्य, चित्रकला और भवन निर्माण की ओर कुछ ध्यान अवश्य ही दिया था। यहां हम पंजाब के उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सांस्कृतिक जीवन के विषय में संक्षिप्त विचार करेंगे।

शिक्षा

मध्य युग में लोगों को शिक्षा देना सरकार की जिम्मेदारी नहीं समझी जाती थी। अधिक से अधिक सरकार उच्च शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक सहायता दे दिया करती थी। यह प्रथा रणजीत सिंह के समय तक चलती आयी थी। मकतबों (विद्यालयों) और मदरसों (महाविद्यालयों) द्वारा शिक्षा का प्रबंध अधिकतर निजी हाथों में था। अमीर लोग प्रशिक्षकों का प्रबंध करके अपने बच्चों को अपने घरों में ही शिक्षा दिलवाते थे। मकतब में फारसी और अरबी का प्रारंभिक ज्ञान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त थोड़ा-सा हिसाब-किताब भी सिखाया जाता था। मस्जिदों में ही मकतबों का प्रबंध होता था। कुरान शरीफ को कण्ठस्थ करने पर जोर दिया जाता था। मदरसों में उच्च गणित, बीज गणित, रेखा गणित, फारसी और अरबी साहित्य, धार्मिक साहित्य, गृह-विज्ञान, और इतिहास की शिक्षा दी जाती थी। उच्च स्तर के विद्वान बहुत कम थे और जो थे उन्हें समाज में अत्यधिक सम्मान मिलता था।

लाहौर दरबार की भाषा फारसी थी। इस लिए सरकारी नौकरी के इच्छुक को फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। सिखों में हर स्तर पर अशिक्षा व्याप्त थी और हिन्दुओं व मुसलमानों की निम्न श्रेणियों में भी पढ़े-लिखे व्यक्ति कम ही मिलते थे। अट्ठारहवीं शताब्दी में सिख शिक्षा प्राप्त करने के विषय में सोच भी नहीं सकते थे क्योंकि वे अत्यंत असुरक्षित दशा में जीवन व्यतीत कर रहे थे। अपने बचाव के लिए वे लोग युद्ध संबंधी शस्त्रास्त्रों का प्रयोग सीखने पर विशेष ध्यान देते थे और सिख मत के जीवित रहने के लिए उनका सशस्त्र होना बहुत ही आवश्यक था क्योंकि उन्हें समाप्त कर देने की

www.9009.co.in

धमकियों व कार्रवाइयों का उन्हें अनेक बार सामना करना पड़ा था। सिखों में शिक्षा के प्रति लापरवाही उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भी जारी रही। सिखों में केवल पुजारी श्रेणी या ग्रंथी और उदासी लोग ही पढ़े-लिखे मिलते थे पर उनका ज्ञान भी गुरुवाणी पढ़ने और उसे सुनाने तक ही सीमित था। फारसी का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके हिन्दुओं और मुसलमानों में मुन्शी और मुतसद्दी आम मिलते थे और इनमें ही लेखक, खबरनवीस, लेखाकार, क्लर्क आदि सरकारी नौकरियों पर लगे हुए मिलते थे।

पंजाब के लोगों की भाषा पंजाबी थी। शिवालिक और जम्मू के पहाड़ी क्षेत्रों, बहावलपुर और डेराजात के सभी लोग पंजाबी बोलते थे। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली में केवल कुछ स्थानीय शब्दों का अंतर था। मुख्य रूप में लोगों की बोली पंजाबी थी। वर्तमान हरियाणा राज्य और दिल्ली तक के लोग पंजाबी ही बोलते थे और इनकी बोली में कहीं-कहीं हिन्दी के शब्दों का भी उपयोग होता था। केन्द्रीय पंजाब, पर्वतीय रियासतों और मालवा की रियासतों के दरबारों की बोली पंजाबी थी, भले ही उन में से अधिकतर के सरकारी रिकार्ड फारसी में रखे जाते थे।

पंजाबी, हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा का प्रबंध गुरुद्वारों और मन्दिरों से संबन्धित पाठशालाओं में होता था। रणजीत सिंह को गुरुमुखी पढ़ने के लिए गुजरांवाला में भागू सिंह की पाठशाला में भेजा गया था। पर उसने वहां कुछ भी नहीं सीखा।[1] रणजीत सिंह के समय में अमृतसर में भी बहुत सारे गुरुमुखी स्कूल थे जिन में भाई जूना सिंह ग्रंथी, भाई राम सिंह, भाई लक्खण सिंह, बाबा अमरदास उदासी, भाई खड़क सिंह धूपिया और भाई बुड्ढा सिंह के स्कूल प्रसिद्ध थे। ऐसे स्कूल पंजाब के सभी नगरों में थे। इसी प्रकार फारसी व अरबी के स्कूल पंजाब के सभी नगरों में खुले हुए थे। सिखों और हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में शिक्षा अधिक थी। लगभग हर मस्जिद के साथ फारसी, अरबी और उर्दू का स्कूल बना होता था। कई फारसी के अध्यापकों ने अपने घरों में ही स्कूल खोले हुए थे। मदरसे केवल बड़े नगरों में ही मिलते थे। बटाले में कादरी खानदान के मियां साहब ने एक प्रसिद्ध मदरसा चला रखा था। मौलवी शेख अहमद स्यालकोट में एक मदरसा चला रहा था। मियां फैज ने गुजरांवाला में मदरसा खोला हुआ था जहां फारसी व अन्य विषयों की उच्च शिक्षा का प्रबंध था। इन फारसी स्कूलों में मुसलमान, हिन्दू और सिख सभी इकट्ठे पढ़ते थे। इसी प्रकार बहुत सारे महाजनी स्कूल या पाठशालाएं थीं जहां देवनागरी लिपि सिखाई जाती थी और हिन्दी व संस्कृत पढ़ाई जाती थी। रणजीत सिंह शिक्षा के

1. बूटेशाह; तवारीख-ए-पंजाब, दफ्तर पांचवां, पृष्ठ 8.

www.9009.co.in

अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुओं में दिलचस्पी रखता था। छह वर्ष की आयु में ही वह बाकी लड़कों के साथ चिनाब नदी में तैरने लग गया था। दस वर्ष की आयु में उसने सोधरे के घेरे की कमान संभाल ली थी। सिख जो पुस्तकीय ज्ञान में हिन्दुओं और मुसलमानों से पीछे थे, शस्त्रास्त्रों के प्रयोग की शिक्षा प्राप्त करने और निर्भीकता एवं वीरता में हिन्दुओं और मुसलमानों से कहीं आगे थे।

मुसलमान विद्यालयों में शिक्षा धर्म-निरपेक्ष नहीं थी। हिन्दू व सिख पाठशालाएं भले ही मुसलमानी विद्यालयों की तरह धर्मान्ध नहीं थीं पर फिर भी उनकी शिक्षा का झुकाव स्वाभाविक रूप से अपने धर्म की ओर था। इसका कारण यह था कि ये संस्थाएं पुजारी श्रेणी की ओर से चलाई जा रही थीं। हिन्दुओं के उच्च विद्यालयों में हिन्दू विद्वान वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों, रामायण, भगवद्गीता, संस्कृत व्याकरण और साहित्य की शिक्षा देते थे।

मुसलमान अपने बच्चों को चार साल चार महीने चार दिन की आयु में पढ़ने के लिए मक्तब भेजते थे जबकि हिन्दू बच्चों को पांच साल की आयु में पढ़ने के लिए भेजा जाता था। लड़के व लड़कियां इकट्ठे ही मक्तबों में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करते थे। आम तौर पर लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। अध्यापकों की आय उनके विद्यालयों के साथ लगी हुई थोड़ी-बहुत जमीन व विद्यार्थियों के माता-पिता से मिलने वाले उपहारों तक ही सीमित होती थी। मदरसों या महाविद्यालयों में अध्यापकों को अच्छा वेतन मिलता था। कुछ विद्यालय अमीर लोगों ने अपने खर्चे पर चला रखे थे जैसे लाहौर में फकीर अजीजुद्दीन ने अपने खर्च पर फारसी और अरबी का एक बड़ा मदरसा चलाया हुआ था।

मक्तबों और मदरसों में विद्यार्थियों को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में उत्तीर्ण करने के समय अध्यापक की राय ली जाती थी। वार्षिक परीक्षाओं का कोई प्रबंध नहीं था। औरतों में उच्च शिक्षा मात्र ऊंचे घरानों तक ही सीमित थी। रईसों और अमीरों की लड़कियों को वृद्ध शिक्षकों या विद्वान स्त्रियों द्वारा घर में ही शिक्षा देने का प्रबंध होता था। उन्हें सामान्यतः साहित्य, प्रारम्भिक गणित और धार्मिक साहित्य ही पढ़ाया जाता था। लड़कियों को घरेलू काम-काज का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। हालांकि इन दिनों में पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी पर पढ़ी-लिखी स्त्रियों का बहुत सम्मान होता था। मौलवियों और ग्रंथियों की पत्नियां जो पहले पढ़ी-लिखी नहीं होती थीं अपने पतियों से पढ़ाई-लिखाई सीख कर अपने बच्चों को व अन्य बच्चों को पढ़ा दिया करती थीं। पढ़ी हुई स्त्रियों का अपने घर और समाज पर अत्याधिक प्रभाव होता था।

www.9009.co.in

रणजीत सिंह भले ही अनपढ़ था पर अपनी प्रजा में शिक्षा के प्रसार में गहरी दिलचस्पी रखता था। वह अपने राज्य में अंग्रेजी की शिक्षा को उत्साहित करना चाहता था। सन् 1834 में उसने सलाह दी कि लहणा सिंह मजीठिया को अंग्रेजी पढ़ने के लिए इंगलैंड भेजा जाय। उसने अपने पुत्र शेर सिंह को अंग्रेजी पढ़ाने का प्रबंध भी किया था। वह यह भी चाहता था कि लाहौर दरबार के दरबारी अपने पुत्रों को लाहौर में रह रहे विदेशियों के द्वारा अंग्रेजी पढ़ाने का प्रबन्ध करें। महाराजा ने लुधियाना के मिशन स्कूल के प्रसिद्ध अध्यापक जॉन लॉरी को लाहौर बुलवा कर कहा था कि वह लाहौर में अंग्रेजी पढ़ाने का स्कूल खोले। पर पादरी लॉरी के इस बात पर जोर देने पर कि उस स्कूल में बाइबिल की शिक्षा एक आवश्यक विषय होगा, स्कूल खोलने की बात पूरी न हो सकी क्योंकि महाराजा बाइबिल की आवश्यक शिक्षा के पक्ष में नहीं था।

महाराजा शिक्षा संस्थाओं को जागीरें व दान देता था तथा शिक्षा के प्रसार में विशेष रुचि लिया करता था।

साहित्य

भले ही हमारे पास रणजीत सिंह के द्वारा साहित्य को सीधे संरक्षण देने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है फिर भी पंजाब में विशुद्ध आत्मा-निर्भर राज्य की स्थापना के साथ राज्य में साहित्यिक गतिविधियों को अवश्य ही बढ़ावा मिला था। डॉ० मोहन सिंह के अनुसार रणजीत सिंह के काल की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, और साहित्यिक शक्तियों के समूचे प्रभाव को इस प्रकार आंका जा सकता है :—

1. पंजाबी भाषा में बहुत सारी सैनिक शब्दावली की वृद्धि हुई।
2. हिन्दुओं और सिखों ने मुसलमानों की बहुत सारी ऐतिहासिक घटनाओं और मिथकों को अपनी साहित्यिक कृतियों का विषय बनाया और मुसलमानों ने भी हिन्दुओं और सिखों के प्रसिद्ध धर्म युद्धों को काव्य का रूप दिया।
3. सांस्कृतिक मेल-जोल के कारण लाहौर और अमृतसर की बोली टकसाली पंजाबी के रूप में निखर कर सामने आने लगी।
4. सीधे और अप्रत्यक्ष शासकीय प्रभाव में अनेक गद्य व पद्यात्मक रचनाएं लिखी गईं।
5. ऐंग्लो-सिख युद्धों को बहुत शक्तिशाली 'वारों' (युद्ध गीतों) का रूप दिया गया।
6. निर्मलों ने नई रचनाओं और अनुवादों के द्वारा, जिनकी रचना अमृतसर में बैठ कर की गई थी, साहित्य में महत्वपूर्ण वृद्धि की।

www.9009.co.in

7. मुसलमान लेखकों ने लोकप्रिय रोमांचकारी कथाओं की ओर जो संख्या में काफी अधिक हो गई थीं, अपने विशेष ध्यान दिया ।

हाशिम महाराजा रणजीत सिंह का दरबारी कवि था जिसकी कविता सुनने का महाराजा को अत्यधिक शौक था । अहमदयार भी उस समय का प्रसिद्ध कवि था जो लगभग हाशिम के स्तर का ही था । अंग्रेजों और सिखों की लड़ाई का वर्णन शाह मोहम्मद ने अपनी वैंतों (कविताओं) में किया था । सुखा सिंह ने गुरु गोबिंद सिंह जी के कारनामों का विवरण मिली-जुली पंजाबी और ब्रज भाषा में लिखा है । इस समय का एक महान् कवि भाई संतोख सिंह था जिसने दस गुरुओं के जीवन का बहुत सुन्दर ब्रज भाषा में वर्णन किया था । उसकी रचना 'सूरज प्रकाश' एक ऐसा महान् ग्रंथ है । यहां अन्य बहुत सारे कवियों के नाम भी दिये जा सकते हैं किन्तु इतना विस्तार इस रचना की सीमा में सम्भव नहीं होगा । इस काल में रचित ऐतिहासिक महत्व की कुछ पुस्तकों का उल्लेख अनुचित नहीं होगा ।

तवारीख-ए-सिखां :-

यह फारसी की एक हस्तलिखित कृति है जो खुशवक्त राय द्वारा रचित है । इसमें सिखों के प्रारम्भ से लेकर सन् 1811 तक का सिख इतिहास दिया गया है । इसमें सिखों के दस गुरुओं और अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रमुख नेताओं का हाल विस्तार के साथ अंकित किया गया है । लेखक ने महाराजा रणजीत सिंह के राज्य का विवरण 1811 तक ही दिया है ।

तारीख-ए-हिन्द :-

यह भी एक फारसी की रचना है जिसका रचनाकार अहमद शाह बटालिया है । इस पुस्तक में अन्य कई बातों के अतिरिक्त गुरु नानक साहब से लेकर सन् 1824 तक सिखों का हाल दिया गया है । इसमें सिख मिसलों और 1824 तक महाराजा रणजीत सिंह सम्बन्धी बहुत आवश्यक जानकारी मिलती है ।

जफरनामा-ए-रणजीत सिंह :-

यह पुस्तक भी फारसी में है जो दीनानाथ के पुत्र दीवान अमरनाथ ने महाराजा के कहने पर लिखी थी । यह पुस्तक 1833 और 1837 के मध्य लिखी गई थी । कहा जाता है कि यह पुस्तक सोहनलाल सूरी की 'उमदात-उत-तवारीख' और बूटे शाह की 'तवारीख-ए-पंजाब' से भी कई पहलुओं से बेहतर है । अमरनाथ लाहौर दरबार की बेकवायद सेना का बख्शी अथवा पे-मास्टर था । उसे अपनी इस पुस्तक को रचने के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त थी । इस पुस्तक में रणजीत सिंह के राज्य के प्रारम्भ से लेकर 1837 तक का विवरण अंकित है ।

www.9009.co.in

प्राचीन पंथप्रकाश

रतन सिंह भंगू की यह रचना पंजाबी कविता में है । लेखक के पुरखों ने अट्ठारहवीं शताब्दी में दल खालसा के सदस्यों के रूप में पंजाब सरकार के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था। अट्ठारहवीं शताब्दी में सिख संघर्ष सम्बन्धी यह सबसे लाभदायक और विश्वसनीय स्रोत है। यह पुस्तक 1841 में पूरी की गई थी।

तवारीख-ए-पंजाब

फारसी में लिखी गई यह पुस्तक गुलाम मुहयुद्दीन उर्फ बूटे शाह की रचना है जो सन् 1848 में पूरी हुई थी । इस में प्रारम्भ से लेकर पंजाब में सिख राज्य के समाप्त होने के आसपास के समाचार दर्ज हैं।

उमदात-उत-तवारीख

फारसी में रचित इस पुस्तक का रचयिता सोहन लाल सूरी है जो महाराजा रणजीत सिंह के दरबार का डायरी-नवीस था। महाराजा रणजीत सिंह और उसके उत्तराधिकारियों के राज्य सम्बन्धी यह सर्वाधिक विश्वसनीय पुस्तक है। इसमें सन् 1469 से 1849 तक का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसमें महाराजा रणजीत सिंह के राज्य काल का इतिहास अद्वितीय विस्तार के साथ अंकित है।

इबरतनामा

यह भी एक समकालीन फारसी रचना है जो मुफ्ती अलीउद्दीन ने सन् 1854 में पूरी की थी। इस पुस्तक में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पंजाब की भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा के विषय में बहुत ही आवश्यक और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होती है । यह पुस्तक 1469 से 1849 तक का हाल बतलाती है।

चारबाग-ए-पंजाब

यह भी फारसी में लिखित गणेशदास बडेहरा की रचना है जो महाराजा का कानूनगो था। उसे लाहौर दरबार के राज्य के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी थी। इसमें 1849 तक पंजाब का इतिहास दिया हुआ है । इससे मिसलों के राज्य सम्बन्धी और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के पंजाब की भौगोलिक व सांस्कृतिक स्थिति, जैसे पंजाब की नदियों, दोआओं, प्रसिद्ध नगरों, धार्मिक स्थानों, लोक-कथाओं आदि के विषय में बहुत लाभदायक जानकारी प्राप्त होती है।

इसी प्रकार अन्य पुस्तकों का विवरण भी दिया जा सकता है। रणजीत सिंह के समय हर प्रकार के साहित्य ने बहुत उन्नति की थी।

www.9009.co.in

चित्रकला

अट्ठारहवीं शताब्दी में सिख शासक चित्रकला की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके। चित्रकला तो शान्ति काल का ही शौक है और अट्ठारहवीं शताब्दी में पंजाब के लोगों को अत्यंत असाधारण स्थितियों से गुजरना पड़ा था। आंतरिक असुरक्षा और विदेशी आक्रमणों द्वारा देश की शान्ति सदा ही भंग रहती थी। फिर भी कुछ प्रसिद्ध नेताओं जैसे बन्दा सिंह बहादुर, जस्सा सिंह अहलूवालिया, आत्मा सिंह, चड़त सिंह आदि के चित्र मिलते हैं। रणजीत सिंह के राज्य संभालने पर चित्रकला को पर्याप्त उत्साह मिला। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में चित्रकला की उन्नति का सेहरा मात्र रणजीत सिंह के सिर पर ही नहीं बांधा जा सकता क्योंकि वह चित्रों का प्रेमी होने की अपेक्षा एक सिपाही, एक विजेता और प्रबन्धक भी था। कुछ विदेशी और कुछ स्थानीय चित्रकारों ने महाराजा के मन में चित्रकला के प्रति दिलचस्पी पैदा की थी। रणजीतसिंह अपनी निजी तस्वीरों में दिलचस्पी नहीं रखता था। इसका कारण सम्भवत: उसका सुन्दर न होना था। जी. टी. वीन और बैरन ह्यूगल जब 1835 में लाहौर गये तो वे इकट्ठे महाराजा को मिले। वीन जो एक चित्रकार था, ने महाराजा से प्रार्थना की कि वह कुछ समय के लिए उसके सामने बैठे जिससे उसकी तस्वीर बनाई जा सके। महाराजा इस बात के लिए तैयार नहीं हो रहा था। जब चित्रकार ने बहुत जिद की तो महाराजा ने चित्रकार के निवास स्थान पर राजा हीरा सिंह का एक सफेद अरबी ऊंट भेज दिया जिससे उसकी तस्वीर बना कर वह अभ्यास कर सके। पर चित्रकार ने रणजीत सिंह का पीछा न छोड़ा और आखिर महाराजा अपने चित्र के लिए चित्रकार के सामने बैठने के लिए तैयार हो गया[1]। वीन की बनाई हुई उसकी तस्वीर का तो पता नहीं लगता पर प्रस्तर मुद्रण जो उसी चित्रकार ने मार्च, 1837 में तैयार किया था, इंडिया आफिस लंदन की लायब्रेरी में पड़ा है। रणजीत सिंह की यह तस्वीर उसकी सबसे बढ़िया तस्वीरों में से एक है। वीन ने जो एक निपुण चित्रकार था, पंजाबी जीवन के विषय में भी चित्र बनाये थे।

बहुत सारे विदेशियों जैसे ओस्बोर्न, होनिग्बर्गर और ऐमलीईडन ने रणजीत सिंह और लाहौर दरबार के कई अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों और पंजाबी जीवन के अनेक चित्र या स्वयं बनाए थे या एकत्रित किये थे। ओस्बोर्न जो ईस्ट इंडिया-कम्पनी के गवर्नर जनरल का सैनिक सहायक था 1838 में लाहौर आया था। वह स्वयं एक उच्च कोटि का चित्रकार था। उसने अपनी पुस्तक में बहुत ऊंचे स्तर के सोलह लिथोग्राफ रेखा चित्र दिये हैं। इन में कुंवर शेर सिंह, अजीत

1. G.T. Vigne, A personal Narrative of a visit to Ghazni, Kabul and Afghanistan. p. 274 (1840)

www.9009.co.in

सिंह संधावालिया और फकीर अज़ीज़ुद्दीन के चित्र भी सम्मिलित हैं। ऐमलीईडन जो एक उच्चकोटि की चित्रकार थी, अपने भाई लार्ड आकलेण्ड के साथ 1838 में लाहौर आई थी। रणजीत सिंह का जो चित्र उसने तैयार किया था वह सिख चित्रकला की परम्परागत पद्धति से मिलता-जुलता है। उसने शेर सिंह का जो चित्र तैयार किया था वह उसके बहुत अच्छे चित्रों में से एक था। ऐमली ईडन राय गोविन्द जस के द्वारा महाराजा को संदेश भिजवाया कि वह राजा हीरा सिंह को उसके निवास पर भिजवाये क्योंकि वह हीरा सिंह का चित्र बनाना चाहती थी। रणजीत सिंह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। मैथ्रेगर की पुस्तक में हम रणजीत सिंह, खड़क सिंह, नौनिहाल सिंह और डोगरा बन्धुओं तथा कई अन्य दरबारियों के चित्र देखते हैं। डाक्टर मार्टन होनिग्बरगर ने जो एक जर्मन था और 1835 से 1850 तक लाहौर में रहा था, अपनी पुस्तक में कुछ स्थानीय चित्रकारों की तस्वीरें सम्मिलित की थीं। इसी प्रकार थ्योडोर शाफ्ट जो हंगरी का एक प्रसिद्ध चित्रकार था, सन् 1841 में लाहौर आया। उसने महाराजा शेर सिंह के कुछ चित्र तैयार किये और पंजाबी जीवन से सम्बन्धित कुछ चित्र भी बनाये। इसी प्रकार कई अन्य चित्रकारों के नाम भी लिये जा सकते हैं।

सिख चित्रकारों ने प्रारम्भ में दीवारों पर चित्र बनाने प्रारम्भ किये। शेर सिंह नामक एक व्यक्ति ने चित्रकार के रूप में महाराजा के महल में दीवारों पर कुछ चित्र बनाये थे। चूंकि महाराजा के पुत्रों में से एक का नाम शेर सिंह था इसलिए रणजीत सिंह ने उस चित्रकार का नाम शेर सिंह से बदल कर केहर सिंह रख दिया था। केहर सिंह के दो भतीजे किशन सिंह और बिशन सिंह थे—किशन सिंह शेर सिंह के दरबार का चित्रकार बन गया था। उसने रणजीत सिंह, महारानी जिन्दां और बहुत सारे दरबारियों की तस्वीरें बनाई थीं। केहर सिंह के भतीजे किशन सिंह ने कई वर्षों तक हरिमंदिर साहब (अमृतसर) में चित्रकार के रूप में काम किया था। महाराजा रणजीत सिंह ने दीवारों पर चित्र बनाने और हरिमंदिर साहब में **मोहराकशी** में विशेष दिलचस्पी ली थी। हरिमंदिर साहब के बरामदों में और पहली मंजिल की छत पर, हरि की पौड़ी पर और सीढ़ियों की बगलों और छत पर **मोहराकशी** का काम किया था। दीवारों पर इस **मोहराकशी** में हम पौधों, फूलों, और पक्षियों की अत्यन्त सुन्दर तस्वीरें देखते हैं। सीढ़ियों में गुरु गोबिन्द सिंह जी के पांच प्यारों का एक चित्र बना हुआ है। यह महाराजा रणजीत सिंह के समय तैयार हुआ था। इसने एक कलाकार को कांगड़ा से बुलवाया था जिसके दादा के हाथों तैयार की गई गुरु गोबिन्द

www.9009.co.in

सिंह जी की एक तस्वीर कांगड़ा के राजा संसारचन्द कटोच के पास पड़ी थी। कांगड़ा के राजा ने गुरु गोबिन्द सिंह जी की यह तस्वीर उनके वास्तविक चित्र के नमूने पर बनवाई थी। गुरु गोबिन्द सिंह जी घोड़े पर सवार होकर जाते हुए दिखाये गए हैं और दो सिख उनके आगे-आगे जा रहे हैं। उनके पीछे एक चंवर झुलाने वाला और पांच प्यारों में से तीन प्यारे चले जा रहे हैं। यह चित्र चित्रकला का एक बहुत शानदार नमूना है। अकाल तख्त की दूसरी मंजिल पर और बाबा अटल की नीचे की दीवारों पर सिख इतिहास और हिन्दू पुराणों की कई घटनाओं को चित्रित किया गया है।

महाराजा रणजीत सिंह के शीशमहल और अमृतसर के राम बाग के महल की दीवारों पर कई चित्र बने हुए हैं। इन चित्रों में श्रीकृष्ण जी की रासलीला और सिख गुरुओं के जीवन से संबंधित झांकियां चित्रित हैं। बैरन ह्यूगल ने भी लाहौर में और वजीराबाद के महल में दीवारों पर दस गुरुओं के बहुत बड़े-बड़े चित्र देखे थे।[1] इसी प्रकार की झांकियों के चित्र प्रसिद्ध दरबारियों और अमीर सरदारों ने अपनी हवेलियों की दीवारों पर भी बनवाये हुए थे। लाहौर में बैनतूरा और ऐलार्ड के मकानों में भी ऐसी तस्वीरें बनी हुई थीं। हरी सिंह नलुआ ने भी गुजरांवाला में अपनी हवेली में दीवारों पर ऐसे चित्र बनवाये थे। बैरन ह्यूगल बताता है कि नलुआ सरदार ने बहुत सारे चित्र अपने पास एकत्रित कर रखे थे जो उसने इस विदेशी यात्री को दिखाये थे। हरी सिंह नलुआ की गुजरांवाला के बाग में बड़ी हवेली की बाहरी दीवार पर एक बारह फुट लम्बा और छह फुट ऊंचा चित्र था जो दो भागों में बना हुआ था। एक ओर सिख सिपाही और दूसरी ओर अफगान खड़े थे। विलियम बार ने इस भित्ति चित्र की बहुत विस्तृत व्याख्या की है।

रणजीत सिंह के समय बहुत सारी जन्म साखियों और सिख गुरुओं के जीवन संबंधी घटनाओं पर चित्र बनाने का रिवाज शुरू हो गया था। इसी प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह जी के खालसा सजाने और शत्रुओं के साथ उनके युद्धों के चित्र बनाये गये थे। चूंकि इन चित्रों की हर घर में आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, इसलिए व्यापारिक रूप में भी कई निम्न कोटि के चित्रकारों ने भी तस्वीरें बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था जिससे इस कला को पर्याप्त हानि भी पहुंची।

महाराजा ने मोहम्मद बख्श, केहर सिंह और परखू जैसे कुशल चित्रकार अपनी सेवा में रखे हुए थे। महाराजा लाहौर से बाहर जाते समय चित्रकारों को अपने साथ रखता था। विलियम बेंटिक के साथ रोपड़ की मुलाकात के समय

1. Baron Hugel, Travels in Kashmir and Punjab p. 210, Cloud on 1845.

www.9009.co.in

भी महाराजा शिकार खेलने जाते समय भी चित्रकार को अपने साथ रखा करता था। भले ही उसे अपने चित्र बनवाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, किन्तु वह दूसरों के चित्रों की बहुत प्रशंसा करता था। गवर्नर जनरल से मुलाकात के समय एक भारतीय चित्रकार जीवनराम ने रणजीत सिंह की एक तस्वीर तैयार की थी जिसके लिए उसने चित्रकार को एक सौ रुपया देकर पुरस्कृत किया था। आयु बढ़ने के साथ-साथ रणजीत सिंह के अंदर चित्रकारी के प्रति एक सूझ और प्रशंसा उत्पन्न हो गई थी। सन् 1838 में जब लॉर्ड ऑकलैण्ड रणजीत सिंह से फिरोजपुर में मिला था तो उसने इंगलैंड की साम्राज्ञी का चित्र महाराजा को दिखाया था, जिसकी उसने बहुत प्रशंसा की थी।

चित्रकला का संरक्षण, प्रोत्साहन और प्रेम लाहौर के शाही घराने तक ही सीमित नहीं था। राज्य के सारे प्रशासकों या सूबेदारों ने लाहौर और कांगड़ा के कलाकारों को अपने पास रखा हुआ था। लाहौर दरबार के रईसों की ओर से सदा ही बढ़िया चित्रों की मांग रहती थी। छोटे-छोटे सरदार भी अपनी बैठकों के लिए चित्रों की खोज में रहते थे। इस सबसे पता चलता है कि रणजीत सिंह के समय चित्रकला ने कितनी प्रगति की थी।

भवन निर्माण—इमारतें और बाग

भले ही सिख भवन निर्माण कला ने मुसलमान और हिन्दू भवन-कला से बहुत कुछ सीखा है पर फिर भी इसमें बहुत कुछ निजी है। भले ही बहुत सारी सिख इमारतें मुसलमान और हिन्दू कारीगरों के परिश्रम का परिणाम थीं किन्तु सिख प्रशासकों की सरपरस्ती में बनी इमारतों को सिख इमारतें कहा जाने लगा था। अमृतसर कला और भवन निर्माण के ज्ञान का केन्द्र रहा है। सिखों की मुख्य इमारतों में गुरुद्वारे, बूंगे, समाधियों, किले, हवेलियों और बाग-बगीचे सम्मिलित थे। अमृतसर सिखों की धार्मिक राजधानी रहा है। इसलिए इस नगर में बहुत सारे धार्मिक स्थानों का निर्माण होना स्वाभाविक ही था। पर सिख इमारतें मात्र अमृतसर तक ही सीमित नहीं थीं। ये तरनतारन, आनन्दपुर साहब, कीरतपुर, लाहौर, मुक्तसर, दमदमा साहब, करतारपुर और पंजाब के अन्य अनेक स्थानों पर भी बनी थीं। इतिहास की दृष्टि से यह दुःख की बात है कि इस समय की बहुत सारी इमारतें गिरा कर उनकी जगह नई बनवाई जा रही हैं। इस प्रकार प्राचीन भवन-निर्माण कला और प्राचीन पवित्र इमारतें धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। पर सिख राज्य की जो कुछ इमारतें शेष हैं वह सिख भवन-निर्माण कला के विषय में कुछ जानकारी देती हैं। उदाहरणार्थ हम अमृतसर, लाहौर और कुछ अन्य स्थानों का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करते हैं। हरिमंदिर साहिब की वर्तमान इमारत अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बनी

www.9009.co.in

थी। पर सन् 1804 में रणजीत सिंह के समय यह निर्माण किया गया था। इसके गुम्बदों और इसकी बाहर की दीवारों के ऊपर सोने के पत्र मढ़े गये। संत सिंह और बाद में मोहम्मद यार खां को यह काम सौंपा गया। बाहर की दीवारों पर सोने के पत्र रणजीत सिंह और उसकी सास सदा कौर ने चढ़वाए थे। हरिमंदिर साहब की दीवारों पर संगमरमर लगवाने का काम 1837 में शुरू किया गया था। इसके फर्श और दरवाजे व हरिमंदिर साहब की सीढ़ियों को वर्तमान रूप महाराजा रणजीत सिंह के समय ही दिया गया था। बाद में महाराजा खड़क सिंह ने हरिमंदिर साहब की भीतरी सजावट का काम जारी रखा था। इसी के समय दर्शनी ड्योढ़ी से लेकर अकाल तख्त तक संगमरमर लगवाने का काम पूरा किया गया था। अकाल तख्त व दर्शनी ड्योढ़ी को सजाने का काम कुंवर नौनिहाल सिंह की इच्छानुसार किया गया था।

सिख समाधियों में अमृतसर का गुरुद्वारा बाबा अटल साहब सबसे प्रसिद्ध हैं। यह इमारत अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में सिख सरदारों ने बनवाई थी। कहा जाता है कि सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने बाबा अटल की इस समाधि को बनाने में विशेष भाग लिया था। यह एक सौ पचास फीट ऊंची इमारत है और अमृतसर शहर में सबसे ऊंची है। पहले इसकी छह मंजिलें थीं और ऊपर की तीन मंजिलें महाराजा रणजीत सिंह ने 1822 में बनवाई थीं। इस इमारत की नौ मंजिलें बाबा अटल की आयु प्रगट करती हैं। पहली छह मंजिलें ऊपर की मंजिलों से बड़ी हैं। पहली मंजिल की दीवारों और उसकी छत पर बहुत चित्रकारी की गई है। ऊपर की मंजिलों में भी जन्मसाखियों में से लगभग दो सौ झांकियों के चित्र दीवारों पर बने हुए हैं। इस इमारत के शिखर पर सुनहरी गुम्बद है। शेष समाधियां इस प्रकार की नहीं हैं। उनकी मंजिलें भी अधिक नहीं हैं।

हरिमंदिर साहब के समीप यात्रियों के रहने के लिए बहुत सारे बुंगे बने हुए हैं। मिसलों के सरदारों ने भी अपने-अपने बुंगे बनवाये हुए थे। अकाल तख्त जिसकी पहली इमारत 1609 में बनी थी, का वर्तमान रूप महाराजा रणजीत सिंह के समय बना था। इसकी पहली मंजिल सन् 1775 में बनी थी और ऊपर की मंजिलें रणजीत सिंह ने बनवाई थीं। हरी सिंह नलुआ ने इसके गुम्बद को सुनहरी करवाया था। बुंगा शुकरचकिया 1781 में बना था, बुंगा सोढ़ियां 1791 में, बुंगा भंगीआ 1794 में, बुंगा आनन्दपुरिया 1799 में, बुंगा तारा सिंह गैबा 1811 में और बुंगा डल्लेवालिया 1812 में बना था। इस

www.9009.co.in

प्रकार सौ के लगभग बुंगे बने हुए थे। अमृतसर में सिख सरदारों ने अपने कटरे या बाजार भी बनवाये थे।

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग सारे सिख शासकों ने अपने मुख्यालयों के आसपास बड़ी-बड़ी हवेलियां बनवाई हुई थीं। महाराजा रणजीत सिंह ने अमृतसर में (1805-1809) गोबिन्द गढ़ का किला बनवाया था और हरी सिंह नलुआ ने महाराजा की आज्ञा से सन् 1836 में जमरूद का किला बनवाया था। महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर के किले में कई फेर-बदल किये। किले के अंदर अन्य इमारतों की मुरम्मत की गई या उनका पुनर्निर्माण किया गया। रणजीत सिंह ने अपने राज्य के सभी किलों की ओर विशेष ध्यान दिया। प्राचीन किलों को उपयोगी बना कर उसमें सैनिक सामग्री व सैनिकों को रखा।

सिख सरदारों ने अपने निवास के लिए किलों जैसी बड़ी-बड़ी हवेलियां बनवाईं। कई बार ये हवेलियां तीन-तीन—चार-चार मंजिलों की भी होती थीं। और अंदर से अत्यंत कलापूर्ण ढंग से सजाई जाती थीं। इन हवेलियों का नक्शा लगभग एक जैसा ही होता था। ड्योढ़ी के अंदर एक खुला आंगन होता था जिनके आसपास अनेक कमरे बने होते थे और सीढ़ियों के द्वारा ऊपर की मंजिलों में जाने का प्रबंध होता था। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत में जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अमृतसर में दो स्तम्भ बनवाये थे जिनके कुछ हिस्से आज भी देखे जा सकते हैं। शायद ये बुर्ज-स्तम्भ शत्रु की सेना को दूर से ही देख सकने के लिए ही बनवाये गए थे और शायद अमृतसर में यह बुर्ज हरिमंदिर साहब की रक्षा संबंधी आवश्यक कारवाईयों का भाग हों।

रणजीत सिंह के लाहौर में आने से शहर को एक नया रंग चढ़ना शुरू हो गया था। शहर के किले, उनके बुर्ज, शाही महल, प्राचीन इमारतों और हवेलियों को नया रूप मिला। महाराजा ने नगर में अनेक धर्मशालाएं, शिव मंदिर, ठाकुर मंदिर, मुसाफिरखाने, कुएं, बावड़ियां और बाग बनवाये जिससे लाहौर नगर को चार चांद लग गये।

सिख शासक बढ़िया और सुंदर बाग लगवाने के भी बहुत शौकीन थे। रणजीत सिंह ने अमृतसर में राम बाग बनवाया जो चौरासी एकड़ भूमि में था और यह पंजाब का सबसे बड़ा बाग था। यह बाग फकीर अजीजुद्दीन, देसा सिंह मजीठिया और लहणा सिंह की देख-रेख में लगवाया गया था। इस बाग के आसपास चौदह फुट ऊंची दीवार बनाई गई। इसके अंदर अनेक फव्वारे लगवाये गये और स्त्रियों के स्नान करने के लिए एक पृथक तालाब बनवाया गया। नहर के द्वारा बाग में पानी पहुंचाया गया। इस बाग में सवा लाख रुपया व्यय करके

www.9009.co.in

एक छोटा सा महल बनवाया गया था। महाराजा जब अमृतसर आता तो इस महल में ही रहता था। लाहौर का शालीमार बाग जो मुगल सम्राट शाहजहाँ ने बनवाया था, रणजीत सिंह के लाहौर आने के समय उजड़ी हुई दशा में था। इसके फव्वारे उतार लिए गये थे और इसके तालाबों का पानी सूख चुका था। इसके अंदर की इमारतें बहुत ही खराब हालत में थीं। हंसुली नहर जिसके द्वारा शालीमार बाग में पानी आता था मिट्टी से भर दी गई थी। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत के पच्चीस वर्षों में इस नहर ने पानी की एक बूंद भी नहीं देखी थी और कई वर्षों से बाग के वृक्ष फल देना बंद कर चुके थे। रणजीत सिंह ने बाग को एक नया जीवन प्रदान किया। नये फव्वारे लगवाये गये और बाग के चारों ओर बुर्ज बनवाये गये। बाग के अंदर 'शरद्-खाने' और चौदरियां बनवाई गई।[1] शालीमार बाग की सभी इमारतों को ठीक-ठाक किया गया। सन् 1838 में जब आकलैण्ड ने यह बाग देखा तो उसने इसे स्वर्ग का एक टुकड़ा कहा।

लाहौर या इसके आसपास बहुत सारे बाग लगवाये गये थे और सामान्यत: इनके नाम उनके मालिकों के नाम पर ही रखे गये थे जैसे बाग माई सदा कौर, बाग जमादार खुशहाल सिंह और बाग शेर सिंह आदि। गणेश दास बडेहरा ने अपनी पुस्तक में लगभग तीन दर्जन बागों के नाम दिए हैं। इन में मिसर दीवानचन्द, राजा ध्यान सिंह, राजा सुचेत सिंह, शाम सिंह अटारी वाला, दीवान किरपाराम, लहणा सिंह मजीठिया, मिसर रामकिशन और फकीर अजीजुद्दीन के बाग भी सम्मिलित थे।[2] इनमें से कुछ बाग नये लगाये गये थे और कुछ पुराने ठीक करवा कर महाराजा ने अपने दरबारियों को दे दिये थे।

लाहौर में महाराजा की आज्ञा से बहुत सारी प्राचीन इमारतें जो उपयोग के योग्य नहीं थीं गिरवा कर उनकी जगह या तो नई इमारतें बनवाई गई थीं या नये बाग लगवाये गये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिख राज्य के समय विशेष रूप से महाराजा रणजीत सिंह के राज्य काल में अनेक गुरुद्वारे, महल, किले, समाधियां, बुंगे और हवेलियां बनवाई गई थीं और पंजाब में जगह-जगह पर बहुत सुन्दर बाग लगवाये गये थे जिनमें बढ़िया इमारतें भी बनवाई गई थीं।

आर्थिक उन्नति

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य काल में आर्थिक क्षेत्र में भी बहुत उन्नति हुई। राज्य में खेतीबाड़ी, उद्योग, और व्यापार की ओर विशेष ध्यान दिया गया।

1. अलीउद्दीन मुफ्ती, इबरतनामा, भाग पहला, पृष्ठ 67.
2. गणेशदास, चारबाग, पंजाब, पृष्ठ 277.

www.9009.co.in

खेतीबाड़ी और सिंचाई

पंजाब के अस्सी प्रतिशत से अधिक लोग गांवों में रहते थे और खेतीबाड़ी व उद्योग उनके मुख्य धंधे थे। खेतीबाड़ी वर्षा पर निर्भर थी। मिसलों के शासकों ने खेती बाड़ी की उन्नति और कृषकों की भलाई की ओर विशेष ध्यान दिया। अकाल पड़ने या फसलें न होने की दशा में लगान माफ हो जाता था और सरकार आवश्यक स्थानों पर लंगर चलाने का प्रबन्ध करती थी। फ्रैंकलीन लिखता है, कि "सिखों के क्षेत्रों में बहुत सारे पशु—घोड़े, बैल, गायें और भैंसे पाली जाती हैं और हर प्रकार का अनाज बहुतायत से होता है। किसानों के प्रति सिख प्रशासकों के व्यवहार के विषय में मैल्कम लिखता है कि, "शायद किसी भी देश में किसान के प्रति ऐसा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता, जितना कि सिख शासकों के राज्यों में है।[2] ये बातें थीं जो रणजीत सिंह को खेती बाड़ी और किसानों के प्रति व्यवहार के संबंध में विरासत में मिली थी। पंजाब की धरती उपजाऊ थी और इसमें सिंचाई की प्राकृतिक व अस्थायी सुविधाओं के कारण पर्याप्त उपज होती थी। स्टाइन बाख के अनुसार "पंजाब की धरती अपने उपजाऊपन में केवल अंग्रेजों के अधीन भारत के इलाकों के मुकाबले में ही दूसरे दर्जे पर थी। अर्थात् बाकी सभी राज्यों की धरती की अपेक्षा अत्यधिक उपजाऊ थी। रणजीत सिंह ने पंजाब को शांति, खुशहाली और प्रगति का चालीस साल लम्बा समय दिया जो महान मुगल सम्राटों के समय से लेकर लोगों ने नहीं देखा था।

खेतीबाड़ी

रणजीत सिंह के समय खेतीबाड़ी पर बहुत जोर दिया जाता था। किसानों को खेतीबाड़ी की उन्नति के लिए कई प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता था। उन्हें सिंचाई की सुविधाएं भी दी जाती थीं। और फसलें न होने की दशा में लगान माफ कर दिया जाता था। रणजीत सिंह के राज्य में विभिन्न दोआब, जम्मू, कश्मीर और शिवालिक पहाड़ियों और सिंधु नदी के पार पेशावर व कोटाहाट के क्षेत्र सम्मिलित थे। राज्य के पृथक-पृथक भागों में परम्परागत उपज भी अलग-अलग थी। हर क्षेत्र की जमीन और जलवायु इस भिन्नता का कारण थी। सिंध सागर, दोआब, पोठोहार, धनी और सैयदपुर में गेहूं, जौ, बाजरा, उड़द, मूंग, कपास, चावल, गन्ना और ज्वार पर्याप्त मात्रा में पैदा होते थे। जहां वर्षा नहीं होती थी वहां कृषक नहरों, कुंओं या अन्य अप्राकृतिक साधनों पर निर्भर होता था। रचना दोआब में बढ़िया किस्म का चावल पैदा होता था। कांगड़ा और कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्र

1. Franckiin, The History of the Reign of Shah Allum p. 73 (1798)
2. Malcolun, Sketch of the Sikhs. p. 57 (1812)

www.9009.co.in

और होशियारपुर में पर्याप्त चावल उगाया जाता था। पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में चावल की विभिन्न किस्में पैदा होती थीं। बारी दोआब में बढ़िया किस्म की बासमती बोई जाती थी। दीना नगर, बटाला, कलानौर और लाहौर में कई प्रकार के फल पैदा होते थे। अमृतसर, श्री हरिगोबिन्दपुर और बटाला में गन्ना बहुत पैदा होता था। जालंधर दोआब में गेहूं, चावल और कई प्रकार के फल पैदा होते थे। होशियारपुर, हरियाणा, उड़मुड़टांडा, फगवाड़ा, जालन्धर, करतारपुर, सुलतानपुर और नूरमहल के इलाके गेहूं व अन्य अनाजों के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। पंजाब में पांच प्रकार का गेहूं बोया जाता था और हर किस्म अन्य किस्मों से रंग, स्वाद और पौष्टिक तत्वों की दृष्टि से भिन्न होती थी। गेहूं की हर किस्म के लिए अलग प्रकार की भूमि की आवश्यकता थी।[1] पंजाब के किसान वर्ष में दो फसलें लेते थे। रब्बी की फसल अक्तूबर में बोई जाती थी और अगले अप्रैल में काटी जाती थी। खरीफ की फसल जुलाई में बोकर अक्तूबर में काटी जाती थी। रब्बी की फसलों में गेहूं, चना, और जौ की, फसलें होती थीं और खरीफ की फसलों में चावल, मक्का, गन्ना और कपास शामिल थीं। व्यापार, दुकानदारी और उत्पादन पर निर्भर करने वाले थोड़े से लोगों को छोड़ कर पंजाब के निवासी खेती से अपनी आजीविका कमाते थे। महाराजा स्वयं खेतीबाड़ी करने वाले जाट जमींदारों में से ही होने के कारण किसानों की समस्याओं को भली भांति समझता था। उसने अपने कारिन्दों को आज्ञा दे रखी थी कि वे अपने व्यवहार से कृषकों को खुश व संतुष्ट रखें जो कारिन्दा नये लोगों को अपने परगने में आने के लिए प्रेरित करके उन्हें आबाद करने का प्रबंध करता था, उसे एक सफल कारिन्दा माना जाता था। जिस कारिन्दे के इलाके में से किसान अपनी जमीन छोड़ कर बाहर चले जाते थे उसे एक असफल अफसर माना जाता था।

सिंचाई

महाराजा अच्छी तरह समझता था कि वर्षा के अतिरिक्त यदि सिंचाई के कुछ संतोषप्रद साधनों का प्रबन्ध सरकार की ओर से हो सके तो राज्य की उपज और सरकार की आय निश्चित हो सकती है। इसलिए महाराजा ने कुओं, बांधों, रहटों, चश्मों व नहरों के द्वारा पानी की सुविधाएं देने का भरपूर प्रयास किया। सरकार की ओर से कुएं लगवाने के लिए किसानों को कर्जे भी दिये गये थे। कई जगह बांध बनाकर पानी एकत्रित कर लिया जाता था और बाद में सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता था। यह तरीका पहाड़ों में अधिक सफल था। कई कूहलों में निरंतर सारा साल पानी बहता रहता था जिसका सिंचाई के लिए

1, अलाउद्दीन मुफ्ती, इबरतनामा, भाग पहला, पृष्ठ 34-35

www.9009.co.in

उपयोग किया जाता था। यह कूहलें अधिकतर कांगड़ा, स्यालकोट और कपूरथला आदि के क्षेत्रों में चलती थीं। नदियों के किनारों से रहट के द्वारा पानी उठा कर खेतों तक पहुंचाया जाता था। यह रहट जालंधर और मुलतान के इलाकों में आम थे। रणजीत सिंह के समय पर्याप्त नहरों का भी प्रबंध किया गया था। कुछ नहरें सतलुज में से निकाली गई थीं जैसे नहर गंडा सिंह नहर, दीवान नहर, सरदार नहर, महमूद नहर, वहाबल नहर, सुलतान नहर, काबुल नहर, जुमे नहर दूबा, और जुम नहर-कुतुब नहर। इन नहरों के द्वारा लाहौर और मुलतान के जिलों की जमीन की सिंचाई होती थी। इस प्रकार रावी नदी में से मियां चन्नू और सिदनई नहरें निकाली गई थीं। चिनाब नदी में से निकलने वाली नहरों में मुहम्मद नहर, शाहपुर नहर, दुराठा संगानाह नहर, सिहदर नहर, बख्त नहर और ढंडू नहर शामिल थीं ये सारी नहरें मुलतान के अलग-अलग क्षेत्रों को पानी देती थीं। इसी प्रकार हम पेशावर, हश्तनगर, डेरा गाजी खां और माझा के इलाकों में नहरों का हाल पढ़ते हैं। निश्चय ही इन नहरों ने पंजाब की कृषि-उपज में एक क्रांति ला दी थी। अलेक्लैंडर बर्न्ज लिखता है कि यदि माझे के इलाके ने रणजीत सिंह के समय खेतीबाड़ी में उन्नति की थी तो यह नहरों के कारण ही था। इन नहरों ने पंजाब के लोगों की विशेष रूप से कृषकों की आर्थिक दशा में पर्याप्त सुधार किया और कृषक श्रेणी को जो राज्य की आर्थिक व्यवस्था के लिए रीढ़ की हड्डी का कार्य करती थी, नहरों के द्वारा पर्याप्त राहत मिली। सिंचाई की सुविधाओं में से किसानों और राज्य दोनों को ही लाभ हुआ। किसानों की उपज में वृद्धि हुई और राज्य को उपज में से अतिरिक्त हिस्सा मिला। सरकार को नहरी पानी की सुविधा देने के कारण अतिरिक्त राजस्व प्राप्त हुआ। रणजीत सिंह ने सदा अपने आपको किसानों में से ही एक समझा और उनके लिए जो कुछ भी उसके लिए संभव था, करने के लिए सदा तैयार रहता था।

जमीन की काश्त की कई विधियां थीं। कृषक जमीन को बराबर जोत कर बुआई के योग्य बनाते थे और बिजाई का समय आने पर छट्टे द्वारा या केरे द्वारा या पोर द्वारा जमीन में बीज बोया जाता था। इसके बाद जमीन पर सोहागा फिराकर बीज को मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता था जिसे पक्षी आदि उसे खा न जायें। समय आने पर फसल की गुड़ाई की जाती थी और आवश्यक समय पर पानी दिया जाता था।

ऐसा लगता है कि लोगों को अपने खेतों में बदल-बदल कर फसलें बोने और इस विधि के द्वारा अतिरिक्त फल प्राप्त करने का ज्ञान नहीं था। कृषक हर वर्ष बार-बार वही फसलें अपने खेतों में बोते रहते थे। भले ही किसान अपनी धरती को खाद द्वारा अधिक उपजाऊ बनाने का यत्न करते रहते थे पर जमीन

www.9009.co.in

का उपजाऊपन और उपज उस क्षेत्र की जलवायु, जमीन के प्रकार और सिंचाई के साधनों पर ही निर्भर करती थी। फसलों की कटाई और दाना निकालने का काम केवल हाथों से ही किया जाता था और इस कार्य के लिए स्थानीय खेत-मजदूरों की सेवा प्राप्त की जाती थी। ये मजदूर गाँव में से मिल जाते थे और लगभग सब किसानों को इन मजदूरों की सहायता अवश्य लेनी पड़ती थी। कई क्षेत्रों ने ऊंची जाति के जमींदार हल को हाथ लगाना अपनी शान के खिलाफ समझते थे और यदि कभी ऐसा काम वे कर लेते थे तो समाज में उनकी हैसियत नीची हो गई समझी जाती थी। अत: ऐसे जमींदारों के खेतों में लगातार काम करने के लिए स्थायी खेत मजदूर रखे जाते थे। जो किसान अपने हाथों खेतीबाड़ी करते थे उन्हें भी फसलें बोने और काटने के समय कुछ मजदूरों की जरूरत होती थी। अत: यह मजदूर जो गांवों में ही रहते थे, गांवों के कृषक समाज के स्थायी सहायक थे और खेतीबाड़ी में इन लोगों की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता।

महाराजा जमीन में से उतना ही हिस्सा लेता था जितना कि उसे आसानी से मिल सकता था और यही नीति उसने व्यापारियों के प्रति अपनाई थी। महाराजा सदा इस बात का ख्याल रखता था कि छोटे किसान बड़े जमींदारों, जागीरदारों और लगान वसूल करने वालों के हाथों दुखी न हों। पंजाब का धन पंजाब में ही खर्च होता था। भले पंजाब में आर्थिक साधनों की समानता नहीं थी। पर सभी नागरिक अपना पैसा राज्य के अंदर ही खर्च करते थे। लाहौर राज्य जो एक हाथ से प्राप्त करता था वह दूसरे से लोगों को लौटा देता था, अर्थात सरकार की ओर से कई तरह से पैसा लौट कर लोगों के पास आ जाता था। यदि किसान लगान के रूप में सरकार को पैसा देते थे तो उन किसानों के बेटे जो सेना में नौकरी करते थे अपने वेतन के रूप में वह पैसा लौटा कर अपने घर वालों को भिजवा देते थे। राज्य में कोई बेरोजगारी नहीं थी। सभी हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों को कोई न कोई काम मिल जाता था। गांवों में किसानों के पुत्र होश संभालते ही अपने पैतृक धन्धे में जुट जाते थे। शहरों में दुकानदार या व्यापारियों के पुत्र बड़े होकर अपने बाप-दादों का ही पेशा अपना लेते थे। इस प्रकार लोगों को नौकरियां ढूंढने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी और न ही राज्य में किसी प्रकार की बेरोजगारी नजर आती थी।

खदानें और खनिज पदार्थ

पंजाब खनिज पदार्थों की दृष्टि से समृद्ध नहीं था किन्तु फिर भी कई वस्तुएं जमीन में से निकलती थीं।

लोहा

मण्डी और सुकेत नामक स्थानों पर अच्छी किस्म के कच्चे लोहे की कुछ

www.9009.co.in

खदानें थीं। कच्चा लोहा खदानों में से निकाल कर और भट्ठियों में गर्म करके साफ किया जाता था। साफ किया हुआ लोहा मुलतान, कश्मीर और पंजाब के पृथक-पृथक भागों में बेचा जाता था। कुछ लोहा पेशावर के समीप भी मिलता था।

नमक

सिंध सागर दोआब में खूड़े की नमक की खदानें थीं। खूड़े की पहाड़ियों में सात अलग-अलग स्थानों से नमक निकाला जाता था। यह खदानें आसिफ खाँ नामक एक व्यक्ति ने सन् 1592 में खोजी थीं। नमक के बहुत बड़े-बड़े टुकड़े खदानों में से निकाले जाते थे और यह नमक ऊंटों पर लाद कर या अन्य साधनों के द्वारा मंडियों तक पहुंचाया जाता था। रणजीत सिंह के पिता महा सिंह के इन खदानों पर अधिकार करने से पहले यह खदानें अन्य सिख सरदारों के अधिकार में थीं। अलाउद्दीन मुफ्ती के अनुसार मिसलों के सरदारों के राज्य के समय खूड़े का नमक एक रुपये का दस या बारह मन पक्के के हिसाब से बिकता था। पर रणजीत सिंह के समय यह एक रुपए का सवा मन पक्का के हिसाब से बिकने लगा। बाद में इससे भी महंगा कर दिया गया। 1830 में रणजीत सिंह ने नमक निकाल कर बेचने का काम राजा गुलाब सिंह को ठेके पर दे दिया। गुलाब सिंह ने अढ़ाई रुपये मन के हिसाब से नमक बेचा। खूड़े के अतिरिक्त काला बाग (सिंध) और नूरपुर (शाहपुर) से भी नमक मिलता था।

चकमक पत्थर

यह भी कुछ खदानों में से मिलता था और सरकार इसे बंदूकों या तोपों में इस्तेमाल करती थी। कई लोग इसके टुकड़े आग जलाने के लिए अपने घरों में भी रखते थे। महाराजा इस पत्थर को खदानों में से ठेके पर निकलवाता था।

शोरा

इसका प्रयोग बारूद और आतिशबाजी के कामों में किया जाता था। पंजाब में मिलने वाला शोरा सरकार की आवश्यकता के लिए पर्याप्त नहीं था। शोरा अधिकतर झंग, मुलतान, बहावलपुर और डेरा जात के क्षेत्रों में से मिलता था। कई गरीब लोग इसे नमक के रूप में भी इस्तेमाल कर लेते थे। यह एक रुपये का पांच मन पक्के के हिसाब से मिलता था।

कोयला

यह काला बाग और सिंध के पार चचाली की धार में से मिलता था। पंजाब का कोयला घटिया किस्म का था।

चूना

यह नमक की पहाड़ियों के समीप से मिलता था। कुछ मात्रा में मियां वाली के परगने में से भी प्राप्त होता था।

www.9009.co.in

सोडा

इसके कच्चे रूप में इसे सज्जी या रोह कहते थे। यह पंजाब में कई स्थानों पर मिलता था। सज्जी कपड़े धोने के लिए उपयोग में लाई जाती थी। इसे घोड़ों और ऊंटों के घावों पर दवाई के रूप में लगाने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इससे खांड भी साफ की जाती थी।

सिक्का

यह जम्मू के समीप पहाड़ी क्षेत्र में से मिलता था। इसे एक विशेष विधि से साफ किया जाता था।

तांबा

यह कुल्लू की पहाड़ियों में मिलता था और भट्ठियों में पिघला कर साफ किया जाता था। यह आम इस्तेमाल के लिए हर जगह बिकता था। इसे प्राप्त करने के लिए बहुत ही परिश्रम करना पड़ता था।

सोना

पंजाब में सोने की खदानें नहीं थीं। यह थोड़ी मात्रा में सतलुज, ब्यास, जेलम और सिंधु नदी के रेत में से मिलता था। यह पर्याप्त परिश्रम के पश्चात् बहुत थोड़ी मात्रा में ही प्राप्त होता था।

पशु-धन

पंजाब में अनेक प्रकार के जानवर मिलते थे जो अलग-अलग कार्यों के लिए उपयोग में लाये जाते थे। बैल, भैंस और ऊंट खेती बाड़ी के कामों में सहायक होते थे। घोड़े और ऊंट सवारी के लिए और ऊंट, गधे, खच्चर, बैल और भैंसे ढुलाई आदि के काम में आते थे। गाय, भैंसें और बकरियां दूध के लिए पाली जाती थीं। घोड़े, खच्चर, ऊंट और बैल अधिक उपयोग में आने वाले जानवर थे, ये विशेषत: कश्मीर, मुलतान और लाहौर के प्रान्तों में पाले जाते थे, कश्मीरी घोड़े कद में छोटे पर बहुत शक्तिशाली और पहाड़ों में चढ़ने में निपुण थे। कश्मीरी नस्ल के घोड़े लाहौर या मुलतान के प्रांतों में नहीं मिलते थे। मुलतान में अन्य नस्ल के घोड़े पाले जाते थे। स्टाइनबख के अनुसार सिख बहुत अधिक संख्या में घोड़े पालते थे और इसमें बहुत गौरव अनुभव करते थे।[1] अलाउद्दीन मुफ्ती के अनुसार लाहौर और मुलतान के प्रान्तों में और मनकेरा के क्षेत्र में अच्छी नस्ल के घोड़े पाले जाते थे। पर तेज चलने वाले और बढ़िया नस्ल के घोड़े पोठोहार के इलाके में मिलते थे।

इस प्रकार पोठोहार में अच्छी नस्ल की खच्चरें मिलती थीं। सुन्दर और ऊंचे कद वाले ऊंट मनकेरा और थल के इलाके में पाले जाते थे। इन सभी

1. Steinbach, The Punjab. pp. 47—8.

www.9009.co.in

जानवरों की साधारण और घटिया नस्लें पंजाब के सभी भागों में मिलती थीं। अच्छी नस्ल के घोड़े, खच्चर और ऊंट हिन्दुस्तान में अच्छे मूल्य पर बिकते थे। बैल सारे दोआबे में पाले जाते थे। पर इनकी बढ़िया नस्लें लुधियाना, करनाल और रोहतक के जिलों में मिलती थीं। अच्छी नस्ल के गधे छच्छ, हजारा, पन्नी और पोठोहार के इलाके में पाले जाते थे। अच्छी नस्ल की भैंसें जो बीस सेर पक्का दूध देती थीं, सौ रुपये में बिकती थीं और पंद्रह सेर दूध देने वाली अच्छी नस्ल की गाय 40 से 50 रुपये तक मिल जाती थी। अच्छी नस्ल की गायें बार के इलाके में मिलती थीं। दूध देने वाली भेड़ें और बकरियां पंजाब के सभी भागों में पाली जाती थीं। इन पशुओं के बिना पंजाब के लोगों का गुजारा नहीं था। इनसे खाने-पीने के पदार्थ प्राप्त करने के अतिरिक्त ढुलाई, सवारी और खेती बाड़ी में सहायता ली जाती थी। चूंकि अधिकांश लोग गांवों में रहते थे इसलिए हर घर में लोग पशु पालते थे। यह इनकी मूल्यवान सम्पत्ति थी। इन पशुओं के व्यापार के लिए जगह-जगह मंडियां लगा करती थीं।

पंजाब में उद्योग

महाराजा रणजीत सिंह के राज्य काल में आधुनिक अर्थों में कोई उद्योग नहीं थे। राज्य की अर्थव्यवस्था केवल खेती बाड़ी और घरेलू हस्तशिल्प पर ही निर्भर थी। यदि कोई उद्योग और मशीनें थीं भी तो वे सभी देसी और सादे किस्म की थीं। हालांकि कुछ बड़े कारखाने भी थे पर वहां से भारी मात्रा में सामान बन कर नहीं निकलता था। उससे केवल राज्य की सीमित आवश्यकताएं ही पूरी होती थीं। रणजीत सिंह ने उद्योग, दस्तकारियों और व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए काफी प्रयत्न किये थे।

सूती कपड़े का उद्योग

सूती कपड़ा अमृतसर और लाहौर जैसे बड़े-बड़े शहरों में पर्याप्त मात्रा में बुना जाता था। गांवों के लोग सूती कपड़े की अपनी आवश्यकताएं आम तौर पर गांवों में ही पूरी कर लेते थे। गांवों में सादा और साधारण कपड़ा जुलाहे बुन देते थे। शहरों के लोगों की अभिजात रुचि के अनुसार शहरों में बढ़िया कपड़ा बनता था। खेसों, लुंगियों और पगड़ियों के लिए अमृतसर, मुलतान और शाहपुर आदि नगर प्रसिद्ध थे। लाहौर में सूती गलीचे और दरियां बुनी जाती थीं। सुलतानपुर और कोट कमलिया में सूती कपड़ों के छापने का काम बहुत होता था। स्टाइन बख के अनुसार बजीरबाद में चालीस हजार नागरिकों में से अधिकतर खत्री थे जिनमें अधिकतर मोटा सूती कपड़ा बुन कर आसपास के स्थानों पर भेजते थे।[1] माहीवाले में कई रंगों के शालू (ओढ़नी) रंगे जाते थे।

1. Steinbach, The Punjab, p. 56.

www.9009.co.in

बजवाड़े, जालंधर, स्यालकोट, मुलतान आदि में बहुत सुन्दर, मेजपोश, चादरें और छोटे तम्बू बनते थे। पंजाब में बना हुआ सूती कपड़ा पंजाब के बाहर भी भेजा जाता था।

शालों का उद्योग

पशमीने की शालें बनाने के लिए श्रीनगर (कश्मीर) और अमृतसर विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। श्रीनगर की शालें अमृतसरी शालों की अपेक्षा कहीं बढ़िया होती थीं। कश्मीरी शालों की भारत के बाहर भी पर्याप्त मांग थी। शाल बनाने के लिए पालतू और जंगली भेड़ों और बकरियों के अतिरिक्त याक और पहाड़ी कुत्तों से भी ऊन प्राप्त की जाती थी।[1] कुछ ऊन तिब्बत, पेशावर व मध्य एशिया से भी मंगवाई जाती थी। यारकंद, लासा व खुतन से भी ऊन की काफी आवश्यकता पूरी की जाती थी। ऊन देने वाले जानवरों के लम्बे बाल उतार कर साबुन की बजाय चावल के आटे के साथ धोकर साफ कर लिये जाते थे। उन्हें सुखा कर काता जाता था। उस धागे को रंगने के लिए साठ प्रकार के विभिन्न रंगों का उपयोग किया जाता था। इसके पश्चात् धागे से शालें बुनी जाती थीं। कई रंगों वाली शाल को बुनने में महीनों लग जाते थे। आम तौर पर एक शाल को बुनने में तीन लोग काम करते थे। सादा शाल तीन महीने में बुनी जाती थी।[2] एक अंग्रेज यात्री मूरक्राफ्ट (1819-25) के अनुसार एक अच्छी शाल सात सौ रुपये में मिलती थी और साधारण शाल दो सौ रुपये तक मिलती थी।[3] कुछ लेखकों का विचार है कि कश्मीरी शालों का मूल्य दो सौ रुपये से लेकर सात हजार रुपये तक था। श्रीनगर की कुल आबादी का लगभग छठा भाग शाल उद्योग में लगा हुआ था। शाल बुनने वाले कारखानों में बीस से लेकर तीन सौ तक आदमी काम करते थे। कश्मीर में शाल बनाने वाले लगभग एक सौ कारखाने थे। शेष बहुत से लोग अपने घरों में शाल बनाते थे। जार्ज फोस्टर के अनुसार मात्र कश्मीर में इस उद्योग की लगभग 16,000 खड्डियां थीं।[4]

रणजीत सिंह शालों को अपने राज्य का सबसे बढ़िया उत्पादन समझता था। जब भी वह किसी को उपहार देता, उसमें कश्मीरी शाल अवश्य ही होती थी। भारत के बड़े-बड़े शहरों के अतिरिक्त यूरोप में भी इन शालों की बहुत मांग थी। और वहां महंगी बिकती थीं। अमृतसर, श्रीनगर और रावलपिंडी

1. Steinbach, The Punjab, p. 50.
2. Ibid, p 50.
3. Ibid p 51.
4. George Forster, A Journey from Bengal to England, vol. II, p. 21 (Indian ed)

www.9009.co.in

में बहुत बढ़िया ऊनी कम्बल बुने जाते थे। महाराजा ने शाल-उद्योग को बहुत प्रोत्साहित किया था।

रेशमी उद्योग

रणजीत सिंह के समय रेशम उद्योग ने भी पर्याप्त उन्नति की थी। रेशम के कपड़ों के लिए कच्चा माल बुखारा और तुर्किस्तान से मंगवाया जाता था जो काबुल और ग़जनी के रास्ते पंजाब लाया जाता था। जी० टी० वीना के अनुसार सन् 1836 में मुलतान के व्यापारियों ने बुखारा और तुर्किस्तान से सात सौ मन रेशम मंगवाया था।[1] कश्मीर में पनपुर नामक स्थान पर रेशम के कीड़े पाले जाते थे और वहां से रेशम का कच्चा माल श्रीनगर के रेशम उद्योग के लिए भेजा जाता था।[2] श्रीनगर के अतिरिक्त मुलतान, लाहौर और अमृतसर रेशम उद्योग के केन्द्र थे। अमृतसर में छोटे अर्ज का रेशम बुना जाता था। रणजीत सिंह के सभी दरबारियों और उच्चाधिकारियों की रेशमी कपड़ों की आवश्यकताएं अमृतसर से ही पूरी होती थीं। मुलतान में रेशम का बड़ा उद्योग था। महाराजा मुलतान के रेशम को बढ़ावा देने के लिए अपने दरबारियों और यात्रियों को मुलतानी रेशम के कपड़े देता था। मुलतान का रेशम खैरपुर (सिंध) बहावलपुर, डेरा गाजी खां, डेरा इस्माइल खां और मिट्ठनकोट को भेजा जाता था जहां से इसे कंधार, हिरात, बुखारा, काबुल आदि स्थानों को ले जाया जाता था। अमृतसर, बहावलपुर और मुलतान में चीन के रेशम के भी कपड़े बुने जाते थे। कई रंगों का रेशम बुना जाता था जैसे पीला, नारंगी, लाल व कई अन्य चटकीले रंगों का। रेशम उद्योग के इन केन्द्रों के अतिरिक्त रेशम बुनने का कुछ काम जालंधर, गुरदासपुर, कांगड़ा, पेशावर व कोहाट में भी होता था। रेशम रंगने का काम विशेष तौर से स्यालकोट, डेरा गाजीखां, शाहपुर और झंग में होता था।

स्यालकोट में सूती और ऊनी कपड़ों पर कढ़ाई का बहुत सुन्दर काम होता था। कढ़ाई के लिए कई प्रकार के रंगीन धागों का प्रयोग किया जाता था और कपड़ों पर तरह-तरह के बेलबूटे और फूल आदि बनाये जाते थे।

कागज़ उद्योग

रणजीत सिंह के समय कागज़ अधिकतर स्यालकोट और इसके समीप रंगपुर में बनता था। यह अच्छी किस्म का कागज़ था जो पंजाब और भारत के अन्य भागों को भी भेजा जाता था। कश्मीर में नौशहरा नामक स्थान पर भी कागज़ उद्योग का केन्द्र था।[3] रणजीत सिंह के समय यह कागज़ कई हस्त-

1. G. T. Vigne. A personal Narrative of a Visit to Ghazni p. 16 (ed. 1840)
2. Mohammad Ishaq Khan, History of Srinagar, p. 68.
3. Ibid p. 71.

www.9009.co.in

लिखित पुस्तकें तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था।[1] जार्ज फोर्स्टर के अनुसार पूर्वी देशों में लिखने के लिए कश्मीरी कागज सबसे बढ़िया माना जाता था।

शस्त्र उद्योग :

शस्त्र उद्योग की ओर भी रणजीत सिंह ने विशेष ध्यान दिया था। कई प्रकार की बंदूकें, तोपें व अन्य हथियार बनाने के लिए उसने लाहौर में सरकारी कारखाने स्थापित किये। बड़े हथियारों के अतिरिक्त नेजे, बरछे, लोहे की टोपियां, जिरह बख्तर, तलवारें आदि बनाने का भी प्रबंध किया। मुलतान, श्रीनगर और अमृतसर में भी हथियार बनाने के कारखाने स्थापित किये गये थे। अनेक कारीगरों को फकीर नूरुद्दीन, होनिग्बरगर और लहणा सिंह के मार्गदर्शन में शिक्षा दी जाती थी। लाहौर में "गन फैक्टरी" स्थापित की गई थी जिसमें लगभग पांच सौ व्यक्ति काम करते थे। ढाल बनाने के लिए अलग कारखाने थे। लोहे की कीलों से बड़ी हुई ढाल पच्चीस से पचास रुपये तक मिलती थी। जबकि सोने व चांदी की कीलों वाली ढाल खरीदने पर एक हजार से डेढ़ हजार रुपए तक खर्च होते थे। शस्त्र बनाने के कारखाने नकोदर, शेखूपुरा और पेशावर में भी थे। सरकारी कारखानों में बहुत कुशल कारीगर रखे जाते थे। स्टाइनबख ने कश्मीरी कारीगरों की बहुत प्रशंसा की है। उसके अनुसार लाहौर के कारखानों में काम करने वाले कश्मीरी कारीगर पंजाबी कारीगरों की अपेक्षा कहीं अच्छे थे। वे ढलाई करने, छेद करने और तोपों की नालियों को पालिश करने व चमकाने के काम में लाजवाब थे।[2]

इन हथियारों को रखने के लिए लाहौर, अमृतसर और पेशावर में बड़े भारी गोदाम बने हुए थे। सिक्का-बारूद रखने के लिए मुलतान, लाहौर, श्रीनगर, अटक, कांगड़ा और रोहतास में प्रबंध किये गये थे। रणजीत सिंह के कारखानों में बंदूकें और तोप आदि बिलकुल अंग्रेजों की बंदूकें और तोपों के नमूने पर ही बनवाई जाती थीं और देखने में हूबहू उनके जैसी थीं।

कई निजी कारखाने भी हथियार बनाते थे। ये कारखाने अधिकतर लाहौर, अमृतसर, कोटली लोहारां, वजीराबाद और श्रीनगर में थे। सरकार हजारों रुपये का सामान इनसे खरीदती थी। कई जागीरदार भी इनसे हथियार लेते थे। गांवों में भी कई कारीगर तोड़ेदार बंदूकें बनाते थे जिन्हें कई बार सरकार भी खरीद लेती थी।

सरकारी कारखानों में बने हथियार न केवल राज्य की ही आवश्यकताएं

1. Muhammad Ishaq Khan, History of Srinagar p. 70.
2. Steinbach, The punjab, p. 52.

www.9009.co.in

पूरी करते थे वरन् अतिरिक्त हथियार पड़ोसी देशों को भेजकर पैसा भी कमाया जाता था।

लकड़ी उद्योग

लकड़ी की बहुत सुन्दर चीजें बनती थीं। बहुत कलात्मक दरवाजे, खिड़कियां, फर्नीचर आदि बनता था। लकड़ी के उद्योग के लिए होशियारपुर, जालंधर और अमृतसर मे लकड़ी और हाथी दांत का भी काम होता था। लकड़ी का हाथ में पकड़ने की बहुत-सी सुन्दर छड़ियों, संदूक, मेज, गाड़ियों के पहिये, पीढ़ियां और पलंगों के पाये आदि बना कर उन्हें सुन्दर रंगों के द्वारा आकर्षक बनाया जाता था। नदियों के आसपास बढ़ई किश्तियां भी बनाते थे। एक किश्ती पांच-छह महीने में बनती थी और दस-बारह साल तक चलती थी। शहामत अली के अनुसार पिंड दादरखां कारीगर वर्ष में तीन या चार किश्तियां तैयार कर देते थे।

चमड़ा उद्योग

चमड़े के उद्योग के लिए जालंधर, मुलतान और गुजरात विशेष प्रसिद्ध थे। वैसे तो जूते, पेटियां, मश्कें व काठियां आदि बनाने का काम हर गांव और शहर में होता था और स्थानीय मोची लोगों की सामान्य आवश्यकताएं पूरी करते थे। भैंसों, गायों, भेड़ों, बकरियों व ऊंट आदि की खाल उपयोग में लाई जाती थी।

ग्रामीण उद्योग

गांवों की आवश्यकताओं के लिए हर जगह छोटे पैमाने पर हर प्रकार के उद्योग चलते थे। ये उद्योग गांवों के कारीगरों के हाथों में थे। हर गांव में अपने बढ़ई, लोहार, जुलाहे, कुम्हार, तेली व मोची थे। वे सभी स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।

रणजीत सिंह के समय बड़े-बड़े कारीगर और कारखानेदार शहरों में रहते थे। उनकी अपनी बिरादरियां थीं जो अपने पेशे की और अपनी बिरादरी की भलाई व उन्नति का ख्याल रखती थीं। दस्तकारों को कई बार सरकार और साहूकारों की ओर से अपने धंधे को उन्नत करने के लिए आर्थिक सहायता मिलती थी। निजी कारखानेदारों को भी सरकार की ओर से सहायता मिलती थी। कुल मिला कर रणजीत सिंह के राज्य काल में उद्योग काफी अच्छी दशा में थे और हजारों आदमियों को इन उद्योगों से रोजगार मिलता था। घरेलू हस्तशिल्प में स्त्रियां भी हाथ बंटाती थीं। इस प्रकार उद्योगपतियों की निजी आर्थिक दशा के अतिरिक्त राज्य का समूचा आर्थिक स्तर भी ऊंचा होता था। रणजीत सिंह भली भांति समझता था कि राज्य में बढ़ रहे उद्योगों और उत्पादन

www.9009.co.in

से निश्चय ही सम्पन्नता में वृद्धि होती है। और वह इसके लिए सदा यत्नशील रहता था।

पंजाब में व्यापार

रणजीत सिंह के एक आस्ट्रियन सैनिक कर्मचारी स्टाइनबख के अनुसार रणजीत सिंह के राज्य अंतिम वर्षों में पूर्ण शांति के कारण पंजाब का अंग्रेज के अधीन भारतीय क्षेत्र और अफगानिस्तान के साथ काफी व्यापार होता था।[1] पंजाब से कई कृषि और औद्योगिक उत्पाद भारत के विभिन्न भागों और मध्य एशियाई देशों को भेजे जाते थे।

व्यापार की वस्तुएं

पंजाब से निर्यात होने वाली वस्तुओं में दालें, चावल, चीनी, कपास, तेल, घी, रेशमी कपड़ा, शाल, ऊनी कपड़े, कम्बल, कागज, सोना और चांदी की चीजें सम्मिलित थी। इसी प्रकार पंजाब, अफगानिस्तान, मध्य एशिया और पहाड़ी क्षेत्रों से सूखे मेवे, ईरानी दरियां और कालीन, लकड़ी व धातु का सजावटी सामान, बढ़िया सूती कपड़ा, मसाले, हाथी दांत, शीशा, मूल्यवान पत्थर, घोड़े आदि मंगवाता था। बाहर से आने वाले सामान में यूरोपीय सामान भी शामिल था।[2] लाहौर दरबार के अनेक रईस यूरोपीय देशों के अतिरिक्त सीरिया और चीन से भी शीशे का सुन्दर सामान, चित्र और बहुत सारी सजावटी चीजें मंगवाते थे। बढ़िया नस्ल के घोड़े अफगानिस्तान और मध्य एशिया से मंगवाये जाते थे। तुर्किस्तान के लोग अच्छी नस्ल के घोड़े पाल कर भारत को निर्यात करते थे। अच्छे घोड़ों के लिए सैनिक मांग के अतिरिक्त साधारण लोग भी विशेष रूप में उच्च श्रेणी के लोग सवारी या घुड़दौड़ों के लिए सदा जरूरतमंद रहते थे। इस प्रकार अच्छे घोड़ों की हर मण्डी में बहुत मांग थी। महाराजा रणजीत सिंह स्वयं बढ़िया नस्ल के घोड़ों का शौकीन था और वह सदा अच्छी नस्ल के घोड़े बाहर से मंगवाता रहता था। महाराजा की इस मांग और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही इंगलैंड के सम्राट ने बढ़िया नस्ल की चार घोड़ियां और एक घोड़ा उपहार के रूप में अलेक्जेंडर बर्न्ज के द्वारा रणजीत सिंह को भिजवाया था। अधिकांश चीजों का व्यापार देश के अंदर ही होता था और कुछ चीजों का व्यापार बाहरी देशों के साथ भी किया जाता था। यह व्यापार थल के रास्ते से भी होता था और समुद्र के रास्ते समुद्र पार के देशों से भी होता था। देश का आंतरिक व्यापार ग्रामीण क्षेत्र में अधिक उन्नत नहीं था। क्योंकि गांव लगभग आत्म-निर्भर थे। हर गांव की आर्थिक रूप से

1. Steinbach, The Punjab p. 49.
2. Steinbach. The Punjab p. 53.

www.9009.co.in

आत्म-निर्भरता आवश्यक थी। जब किसी गांव को यह प्राप्त हो जाती थी तो वह एक आर्थिक और सामाजिक इकाई बन जाता था। इस आर्थिक इकाई में गांव की आबादी का मुख्य भाग किसान थे। वे खाने-पीने की सभी वस्तुएं जैसे अनाज, दालें, सब्जियां, गन्ना, सरसों, कपास आदि गांव में ही पैदा कर लिया करते थे। दूध, घी और दही के लिए वे गाय व भैंसें पालते थे। गांव के लोहार गांव के लोगों के लिए लोहे के औजार बनाते थे और बढ़ई लकड़ी का आवश्यक समान जैसे पलंग, दरवाजे, खिड़कियां, गाड़ियां, पंजालियां (हल) फर्नीचर आदि गांव में ही बना लिया करते थे। गांव के लोगों की धन संबंधी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए गांव में ही साहूकार होता था। इस प्रकार नाई, कहार, धोबी, मोची, भंगी गांव में अपना-अपना धंधा करते थे। गांवों के झगड़े निपटाने के लिए गांव की पंचायत होती थी। गांव में बीमारों का इलाज करने के लिए हकीम भी होता था। इनसे स्पष्ट है कि शायद ही कोई ऐसी चीज हो जो ग्रामवासियों को शहर से मंगवानी पड़ती थी। वे उन सब खाद्य सामग्री के अतिरिक्त अपने काम-धंधों के लिए औजार, पहनने के लिए कपड़े और जूते गांव में से ही प्राप्त कर लेते थे। जुलाहे उनके लिए कपड़ा बुनते थे। मोची उनके लिए जूते बनाते थे। पर यदि इन्हें अपने उत्पादन में से कोई फालतू चीज बेचनी होती तो साथ की किसी मण्डी में बेच आते थे और यदि कभी कोई चीज बाहर से खरीदनी होती थी तो मण्डी या मेलों में से खरीद लाते थे।

गांवों के विपरीत शहर और कस्बे व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। रणजीत सिंह के समय अनेक कस्बे देश के आंतरिक और बाहरी व्यापार के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। यहां हम रणजीत सिंह के राज्य के कुछ प्रसिद्ध व्यापार केन्द्रों पर विचार करेंगे।

पंजाब के प्रसिद्ध व्यापार केन्द्र

लाहौर महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी थी और यह देश के आंतरिक और बाहरी व्यापार के लिए बहुत बड़ी मण्डी थी। एक समकालीन ईसाई मिशनरी जॉन लॉरी ने लाहौर को, "पंजाब की दिल्ली"[1] कहा है। महाराजा के समय लाहौर शाल, सूती कपड़ा, रेशम और हथियारों के व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था। लाहौर में रेशम की बहुत खपत थी जो मुलतान से मंगवाया जाता था और बढ़िया सूती कपड़ा अंग्रेजी क्षेत्र से आता था। ऊन के उद्योग के लिए कच्चा माल कांगड़ा व अन्य पहाड़ी प्रदेशों से मंगवाया जाता था। लाहौर और अमृतसर में दाखिल होने वाले और बाहर जाने वाले सामान पर लगने वाले कर के द्वारा आठ लाख रुपया वार्षिक प्राप्त होता था। ग्राण्ड ट्रंक रोड पर स्थित होने के कारण लाहौर एक प्रकार का अंतर्राष्ट्रीय शहर बन गया था।

1. John Lowrie, two years in upper India, p. 164 (ed. 1970)

www.9009.co.in

रणजीत सिंह ने सन् 1805 में अमृतसर पर अधिकार करके इसे एक बहुत बड़े व्यापार केन्द्र में बदल दिया। यहां सिक्के बनाने की भी एक टकसाल थी।[1] बैरन ह्यूगेल के अनुसार अमृतसर रणजीत सिंह के समय सारे राज्य में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। वह लिखता है, "इस समय (रणजीत सिंह के समय) अमृतसर उत्तरी भारत में सबसे अधिक अमीर शहर है, यह लाहौर से भी बड़ा हो गया है। यूं लगता है कि सारे पंजाब का धन इस शहर में ही जमा हो गया है और बड़े व्यापारी इस शहर में टिके हैं। अमृतसर पंजाब के सभी नगरों से अधिक रौनक वाला है और इसके हर बाजार में भारत की सबसे अधिक सुन्दर वस्तुएं बिक्री के लिए प्रदर्शित की जाती हैं।"[2] एक अन्य समकालीन लेखक श्री गणेशदास बडेहरा ने भी लिखा है, "अब सारे पंजाब में कोई शहर इतना बड़ा नहीं है, जितना कि अमृतसर। सब देशों से लोग आकर अमृतसर में आबाद हो गये हैं। लाहौर के बहुत सारे खत्रियों ने भी अमृतसर में ही अपने घर बना लिये हैं।"[3] कर्नल स्टाइनबाख लिखता है कि "अमृतसर में काफी संख्या में शालें बनती हैं।"[4] अमृतसर को शाल और कश्मीरी केसर के लिए बहुत बड़ी भारी मण्डी माना गया था। अन्य अनेक वस्तुएं भी दक्षिण और भारत के पूर्वी क्षेत्रों से आकर यहां बिकती थीं।[5]

कुछ अन्य ऐतिहासिक भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अमृतसर में उद्योग और व्यापार ने महाराजा रणजीत सिंह के समय बहुत उन्नति की। रणजीत सिंह ने कांगड़ा और कश्मीर को राज्य का भाग बना कर उन प्रांतों की उपज को अमृतसर में आने के लिए पर्याप्त सुविधाएं उत्पन्न कर दीं। दीवाली, वैशाखी, दशहरा आदि त्यौहारों पर पंजाब भर में से लोग अमृतसर में एकत्रित होते थे और व्यापारियों को कांगड़ा, कश्मीर और पंजाब के अन्य भागों में से चीजें लाकर यहां बेचने और यहां से चीजें खरीद कर पहाड़ी प्रदेशों में पहुंचाने का अवसर मिलता था। 1833 में जब कश्मीर में अकाल पड़ गया था तो वहां के शाल उद्योग के कई कारीगर अपने औजारों सहित अमृतसर आ गये थे और उन्होंने यहां आकर शाल व कंबल बनाने के कारोबार को बहुत उन्नत किया।[6] पंजाब राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों में से शाल उद्योग के लिए कच्चा माल काफी मात्रा में अमृतसर आता था। अमृतसर एक सार्वदेशीय नगर बन गया था। यहां से शाल व कंबलों

1. Steinbach—The Punjab pp. 4-5
2. Baron hugel, Travels in Kashmir and Punjab, pp. 391;393.
3. गणेशदास बडेहरा, चार बाग, पंजाब, पृष्ठ 294.
4. Steinbach, The Punjab p. 50
5. Walter Hamilton, Amritsar past and present, p. 131.
6. Moor Croft ; Travels p. 343. Baden Pawell, Hand Book of Manufacturers and Art in the punjab p. 43.

www.9009.co.in

के अतिरिक्त रेशमी व सूती कपड़े, पहाड़ी नमक और लकड़ी आदि बाहर भेजी जाती थी। यहां की शालें तो अक्सर हैदराबाद, लखनऊ और राजपूताना की रियासतों में जाकर बिकती थीं। 1833-34 में बुखारा के मुल्ला रहीम शाह ने काबुल से 17,000 रुपये मूल्य की अमृतसर की बनी हुई शालें खरीद कर रूस में 34,000 रुपये में बेची थीं।[1] मुलतान के रास्ते काबुल और बुखारा से रेशम, घोड़े, सोना, दरियां और सूती कपड़ा अमृतसर में आकर बिकता था और अमृतसर से मुलतान के रास्ते ही अंग्रेजी कपड़ा, हल्दी, अदरक, शाल ऊनी कपड़ा और कृषि उत्पाद जैसे गेहूं, चना, दाल, चावल आदि बाहर भेजे जाते थे।[2] मध्य एशिया की किरमानी ऊन हिरात के मार्ग से अमृतसर लाई जाती थी और अमृतसर की शालें इसी रास्ते से ईरान को भेजी जाती थीं।[3] रणजीत सिंह के समय अमृतसर से चुंगी कर के रूप में नौ लाख रुपये की वार्षिक आय होती थी। अमृतसर में करों की वसूली के लिए रणजीत सिंह ने पहले मिसर छज्जूमल को और बाद में भलियाराम को मुख्य अधिकारी के रूप में नियुक्त किया था। उन्हें सरकार की ओर से हिदायत थी कि करों की वसूली विशुद्ध निर्धारित दरों के अनुसार की जाय और व्यापार को उन्नत करने के लिए सभी संभव यत्न किये जायें। इस प्रकार अमृतसर रणजीत सिंह के समय व्यापार का एक बहुत प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था और यहां बहुत धनवान साहूकार और व्यापारी बड़े भारी पैमाने पर अपना धंधा करते थे।

रणजीत सिंह के समय मुलतान भी एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यहां के सूबेदार दीवान सावन मल ने 1821 से अगले पच्चीस सालों में बड़े परिश्रम से मुलतान को बहुत उन्नत किया था। यह 60,000 आबादी वाला एक शहर था जिसमें रेशम और सूती कपड़े का उद्योग पर्याप्त उन्नति पर था। सूती उद्योग में खेस, चादरें, लुंगियां और दरियां बनाई जाती थीं। रणजीत सिंह मुलतान के रेशम उद्योग को बढ़ावा देने के लिए वहां के रेशमी वस्त्र अपने दरबारियों को उपहार के रूप में दिया करता था। अनेक क्षेत्रों के व्यापारी मुलतान में रहते थे जो मध्य एशिया के साथ कारोबार करते थे। रेशमी कपड़ा खुरासान और तुर्किस्तान को भेजा जाता था। मुलतान के रेशमी कपड़ा बनाने वाले कारीगर रेशम का कच्चा माल बुखारा और तुर्किस्तान से मंगवाते थे। मुलतान के व्यापारी अफगानिस्तान से कच्ची रेशम, फल और मसाले मंगवाते थे। अमृतसर और मुलतान के व्यापारी अपने माल का बीमा भी करवाते थे। सावन मल के समय में हर साल लगभग 700 मन रेशम बुखारा और तुर्किस्तान से मंगवाया

1. Mohan Lal, Travels, p. 142.
2. Ibid, p. 396.
3. Ibid, p. 227.

www.9009.co.in

जाता था। इस प्रकार मुलतान भी एक बड़ा व्यापरिक केन्द्र बन गया था और यह मध्य एशियाई देशों और भारतीय रियासतों के मध्य एक कड़ी का कार्य करता था।

वजीराबाद में उन दिनों कोई 40,000 की आबादी थी। यहां बहुत सारे खत्री व्यापारी रहते थे। यहां पर्याप्त मात्रा में कपड़ा तैयार होता था जो दूर-दूर तक भेजा जाता था। अबीताबले ने इस शहर की उन्नति के लिए बहुत धन खर्च किया था।[1]

रणजीत सिंह ने अफगानों से पेशावर पर विजय प्राप्त की थी। इस शहर में 55,000 की आबादी थी। भले ही यहां कोई विशेष चीजें नहीं बनती थीं और न ही कोई व्यापार की बड़ी मण्डी थी पर काबुल के राजमार्ग पर स्थित होने के कारण कश्मीरी शालों व मेवों के व्यापारी इस शहर में से होकर गुजरते थे जिस कारण यहां के खत्री, अरोड़े और ब्राह्मण व्यापार में व्यस्त रहते थे। रावलपिण्डी में अनाज, कपड़े और कंबलों की बहुत बड़ी मंडी थी। इस शहर में लगभग पांच सौ दुकानें थीं जो हर प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करती थी। इसी प्रकार ही पिंड दादन खां और डेरा गाजी खां में भी बहुत प्रसिद्ध मंडियां थीं। डेरा गाजी खां में पर्याप्त मात्रा में कपड़ा तैयार होता था। यहां चादरें, लुंगियां, गलबदन और पटटू आदि बुने जाते थे। ये कपड़े अपनी मजबूती के लिए पंजाब के अन्य स्थानों पर बुने जाने वाले कपड़ों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध थे। इस शहर में लगभग 530 दुकानें केवल कपड़े का ही व्यापार करती थीं। यहां 80,000 के लगभग खजूर के वृक्ष थे और इस क्षेत्र में बहुत सारा गन्ना भी बोया जाता था। ये दोनों वस्तुएं बाहर भेजी जाती थीं। यहां से लगभग 1,30,000 रुपये का नील भी बाहर जाता था। नील पर लाहौर सरकार का अधिकार था। पिंड दादन खां से बहुत सारा नमक पंजाब और भारत के भागों को भेजा जाता था। यहां की नमक की खदानों से महाराजा को काफी आमदनी होती थी। अटक लकड़ी के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। लकड़ी लुण्डा नदी के द्वारा काबुल और स्वात से लाई जाती थी। यहां नावें बनाने का एक बड़ा कारखाना भी था। एक नाव का मूल्य 700 रुपये से लेकर 1000 रुपये तक होता था।

श्रीनगर कश्मीर की घाटी में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। ईरान के व्यापारी कश्मीर का सामान तिब्बत व लद्दाख को भी ले जाते थे। यहां के शाल उद्योग के लिए हर साल लासा, लद्दाख, यारकन्द और खुतन से लगभग 60,000 सेर ऊन मंगवाई जाती थी। कश्मीर की शालें तुर्की, आर्मीनिया, ईरान, अफगानिस्तान, चीन और भारत के अलग-अलग भागों को भेजी जाती थीं। एक अच्छी कश्मीरी शाल दो सौ से सात सौ रुपये के बीच बिकती थीं। श्रीनगर में

1. Steinbach. The Punjab. pp. 5-6.

www.9009.co.in

बंदूक व पिस्तौल भी बिकते थे। लद्दाख की पशम का व्यापार अमृतसर के व्यापारियों के हाथों में था। महाराजा के राज्य की दक्षिणी सीमा पर शिकारपुर एक बहुत प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। पंजाब की अन्य कई छोटी-छोटी जगहें अनेक छोटी-छोटी चीजों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थीं, जैसे होशियारपुर हाथी दांत और लकड़ी के काम के लिए प्रसिद्ध था और होशियारपुर के समीप ही बजवाड़ा बढ़िया कढ़ाई वाले कपड़ों के लिए बहुत प्रसिद्ध था।[1] गणेशदास बडेहरा के अनुसार बढ़िया किस्म का सफेद व पक्का कागज स्यालकोट के समीप रंगपुर में बनता था। स्यालकोट की भावड़ा औरतें कपड़े की कढ़ाई का काम बहुत बढ़िया करती थीं। कपड़े पर उनकी गुलकारी और अजायबकारी बहुत ही प्रसिद्ध थी। स्यालकोट के जुलाहे बहुत सुन्दर बेलबूटों वाले तहमद, सूती और लुंगियां बनाने में बहुत सिद्धहस्त थे।[2] बढ़िया प्रकार के खेस, लुंगियां और लाचे (तहमद) बहावलपुर में बनते थे।

व्यापारी श्रेणियां

व्यापार का धन्धा करने वाले लोगों में बहुत बड़े-बड़े व्यापारी भी थे। बड़े व्यापारी लाहौर, अमृतसर, मुलतान और पेशावर जैसे बड़े शहरों में रहते थे। अनेक चीजों के व्यापार के अतिरिक्त वे उद्योग और व्यापारियों के लिए साहूकारा (महाजनी) भी करते थे। इन साहूकारों में कई श्रेणियां थीं जैसे बनिये, बोहरे और महाजन। ये पंजाब के पूर्वी और दक्षिण-पश्चिमी जिलों में व्यापार करते थे। इनके सूद, खत्री, अरोड़े, खोजे व्यापार और साहूकारे के लिए प्रसिद्ध थे। महाजन और सूद आम तौर पर पहाड़ी क्षेत्रों में और लाहौर व अमृतसर के जिलों में व्यापार करते थे। ये जमींदारों को ब्याज पर पैसा भी देते थे। सूद लोग महाजनों की अपेक्षा अधिक होशियार और चुस्त थे। खत्री व्यापारी आम तौर से पढ़े-लिखे होते थे। वे नौकरी करने के अतिरिक्त दुकानदार, अनाज के व्यापारी और साहूकारा करने वाले लोग थे। अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ अधिकांश व्यापार इन खत्रियों के हाथों में था। रावलपिण्डी, हजारा और मुलतान के जिलों में खत्री व्यापारियों का बहुत जोर था।[3] भाटिया भी बहुत परिश्रमी व्यापारी थे और वे सिन्ध और सतलुज के मध्य व्यापार करते थे। अरोड़े दक्षिण पश्चिमी पंजाब में व्यापार और साहूकारा करते थे। इनके अतिरिक्त छोटा व्यापार कराड़ों के हाथों में था। व्यापार में खत्री सबसे बढ़िया और कराड़ सब से निम्न व्यापारी माने जाते थे। पंजाब का व्यापार मात्र हिन्दुओं के हाथों में ही नहीं था, खोजों जैसे मुसलमान व्यापारी भी इस धन्धे में बहुत कुशल माने गये थे। खोजे व्यापार के अतिरिक्त साहूकारा भी करते थे। उनके व्यापार का

1. अलीउद्दीन मुफ्ती, भाग पहला, पृष्ठ 91.
2. गणेशदास बडेहरा, चार बाग, पंजाब, पृष्ठ 226.
3. Rawalpindi District gazetteer, p. 126 (1893-4)

www.9009.co.in

मुख्य क्षेत्र शाहपुर, मुलतान, झंग, लाहौर और रावलपिंडी था। ये लोग बाहर के देशों के साथ भी व्यापार करते थे। छोटा व्यापार करने वालों में मांस, शराब, सब्जियां और पशु बेचने वाले व्यापारी सम्मिलित थे। इनमें बंजारे (एक जगह से अनाज भर कर दूसरी जगह बेचने वाले) पशुओं का व्यापार करने वाले और फेरी वाले लोग सम्मिलित थे। कुछ लोग अनाज या अन्य वस्तुएं गाड़ियों पर लाद कर मंडियों तक ढोने का काम करते थे। कुछ लोग बारूद या आतिशबाजी बना कर बेचने का काम करते थे। उन्हें दारूगर कहा जाता था।

शहर की मंडियों के अतिरिक्त बड़े गांवों में भी छोटी-छोटी मंडियां लगती थीं जहां फेरी वाले सामान खरीद कर गांवों में बेचते थे। कई जगहों पर पशुओं की बहुत भारी मंडियां लगती थीं। लोग हर प्रकार के पशु बेचने या खरीदने के लिए यहां पर जाते थे। पशुओं की मंडियों में विशेष रूप में घोड़े, बैल, गाय, भैंसों और ऊंटों आदि का व्यापार होता था। दलालों की सहायता से पशु बेचे या खरीदे जाते थे। दलाल बहुत चालाक लोग थे जो पशु बेचने वालों और खरीदने वाले दोनों से दलाली लेते थे।

साहूकारी (महाजनी) :-

व्यापार के अतिरिक्त पैसा ब्याज पर देना एक लाभदायक धंधा था। ब्याज की कोई दर निश्चित नहीं थी। साहूकार कर्ज लेने वाले की आवश्यकता के अनुसार ब्याज की दर निश्चित करता था। यह सामान्यतः 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के मध्य होती थी। साहूकारों की किसानों और व्यापारियों दोनों को जरूरत होती थी और उन दिनों में यह सामान्य बात प्रसिद्ध थी कि 'गुरु बिना गत नहीं और शाह बिना पत नहीं।" साहूकार अपनी आसामियों से पक्के कागज पर दस्तवेज लिखवा लिया करते थे। अक्सर साहूकार लोग अपने धंधे में बहुत सफल होते थे।

आम तौर से बड़े व्यापारी अपने व्यापार के सम्बन्ध में एक जगह से दूसरी जगह जाते समय अपने साथ भारी रकम ले जाने में अपने आपको सुरक्षित नहीं समझते थे। वे अपना पैसा अपने शहर के साहूकारों के पास जमा करवा दिया करते थे और जिस शहर में उन्हें व्यापार के लिये जाना होता था वहां के साहूकारों के नाम हुंडियां बनवा कर ले जाते थे। इन दोनों शहरों के साहूकारों के एक दूसरे के साथ लेन-देन का हिसाब-किताब चलता रहता था। ये हुंडियां आजकल के ड्राफ्ट की तरह होती थीं। बड़े-बड़े व्यापारी या अमीर लोग अपना पैसा बड़े-बड़े साहूकारों के पास ही रखते थे जहां से जरूरत पड़ने पर लेते रहते थे। साहूकार श्रेणी को समाज के ऊपरी वर्ग को विशेष रूप से और सबसे निम्न वर्ग को आम तौर से बहुत जरूरत रहती थी। ऊपरी वर्ग के लोग आम तौर से

www.9009.co.in

फिजूल खर्च था इसलिए वे शाहों के ऋणी रहते थे । निम्न वर्ग के लोगों को गरीब होने के कारण अपना साधारण गुजारा चलाने के लिए भी साहूकारों की शरण लेनी पड़ती थी । ये साहूकार जहां सभी जरूरतें पूरी करते थे वहां अपनी आसामियों की बहुत बुरी तरह जेबें भी काटते थे । जो गरीब व्यक्ति इनके कर्जे में फंस जाता था, उसका छुटकारा मुश्किल से ही होता था क्योंकि ब्याज से वह कर्जा दोगुना-चौगुना होता जाता था । पर व्यापारी लोग इस कर्जे से अपने व्यापार में वृद्धि करते रहते थे । महाराजा रणजीत सिंह के समय यह साहूकारा आम प्रचलित था । रणजीत सिंह भी अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में अपना पैसा इन साहूकारों के पास जमा करवाता था और आवश्यकता पड़ने पर हुंडियों के द्वारा इनसे पैसा निकलवाता रहता था ।

रणजीत सिंह के राज्यकाल में कई प्रकार के सिक्के प्रचलित थे । एक पुराना रुपया चलता था जिसका मूल्य भारतीय दरों के अनुसार दस आना था । इस रुपये पर दिल्ली के बादशाह का नाम था । कश्मीर की शाल मार्केट में सारे सौदे इसी रुपये में होते थे । रुपये के दूसरे सिक्के को नानकशाही रुपया कहते थे । रणजीत सिंह के सारे राज्य में इसका मूल्य सोलह आना था पर दिल्ली में यह साढ़े चौदह आने में चलता था । सेना व अन्य कर्मचारियों को इसी सिक्के में वेतन दिया जाता था । कश्मीर में एक तीसरे प्रकार का भी सिक्का चलता था जिसे "हरीसिंही" कहते थे । इस रुपये के एक ओर "श्री अकाल जीउ" और दूसरी ओर "हरी सिंह" लिखा होता था । यह रुपया 12 आने में चलता था । इसे छोटा रुपया भी कहते थे । हर नानकशाही रुपया सोलह आने का था और एक आना चार पैसे का था । सोने की मोहरों का भी काफी उल्लेख मिलता है पर सामान्य व्यापार में उनका उपयोग नहीं होता था । ये मोहरें औपचारिक पर उपहार आदि भेंट करने के लिए या धन को जोड़ कर रखने के लिए इस्तेमाल की जाती थीं । सिक्कों की टकसालें लाहौर और अमृतसर में थीं । उस समय नोट नहीं चलते थे । हर सिक्के में उसकी धातु की शुद्धता का ध्यान रखा जाता था ।

व्यापार मार्ग और ढुलाई के साधन

उस समय में व्यापार मार्ग न ही बहुत विकसित थे और न ही वे सुरक्षित थे । व्यापारी लोग अपना सामान लेकर काफिलों के रूप में यात्रा करते थे । पंजाब से मुख्य सड़कें मुलतान और डेरा गाजी खां में से कंधार को और दर्रा खैबर में से होकर काबुल को जाती थीं । कश्मीर से व्यापारी पहाड़ के रास्तों के द्वारा लद्दाख, ल्हासा और यारकंद को जाते थे । सोहनलाल ने, जिसने रणजीत

www.9009.co.in

सिंह के समय पंजाब और अफगानिस्तान में यात्रा की, पंजाब के आंतरिक और बाहरी व्यापारिक मार्गों का उल्लेख किया है जिनके द्वारा बहुत सारा व्यापार होता था। ऐसा लगता है कि बावजूद इसके कि व्यापारी को जंगलों और पहाड़ी इलाकों में से गुजरना पड़ता था, सड़कें चोरों व डाकुओं से काफी हद तक सुरक्षित थीं।

व्यापारियों के काफिले पूरी सुरक्षा में मुलतान से पेशावर तक, पेशावर से काबुल तक व मुलतान से कश्मीर तक यात्रा कर सकते थे। व्यापारियों के काफिले अपना सामान मुलतान से लाहौर, डेरा गाजी खां और सिंध को ले जाते थे। सोहनलाल पांच ऐसे मार्गों का वर्णन करता है जो डेरा गाजी खां और कंधार के मध्य स्थित थे और जिनके द्वारा ईरान, अफगानिस्तान और तुर्किस्तान में भी पहुंचा जा सकता था[1]। व्यापारिक लाभ के लिए सिंध और कंधार के बीच रास्ते थे जो रोझन, बधनी, गवसपुर और शिकारपुर में से जाते थे।[2] काबुल, कंदूज, बलख, बुखारा मशद्, हिरात, सीस्तान और कंधार के साथ पंजाब का भारी पैमाने पर व्यापार होता था। इन देशों को अफीम, तम्बाकू, रेशम, शालें, कपड़े, नील आदि भेजे जाते थे। हिरात और कंधार से काफिलों द्वारा दर्रा काबुल के मार्ग से मध्य एशिया की चीजें सिंध में लाई जाती थीं और काबुल से सामान दर्रा खैबर के मार्ग से पेशावर, बन्नू, लाहौर, अमृतसर और दिल्ली को लाया जाता था। पंजाब के व्यापारी कश्मीर और ल्हासा के साथ व्यापार करते थे।

सामान को लाने-ले जाने के लिए ऊंट, घोड़े, खच्चर आदि का उपयोग होता था। पंजाब की नदियों का भी ढुलाई के साधन के रूप में उपयोग किया जाता था। अनाज ढोने वाली प्राचीन बंजारा जाति भी सैकड़ों और हजारों बैलों की सहायता से एक जगह से दूसरी जगह तक सामान ढोने का कार्य करती थी। बंजारे देश के एक सिरे से दूसरे तक सभी मार्गों से परिचित थे और बैलों, गाड़ियों और लद्दू घोड़ों के द्वारा अपना सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। नदियों के द्वारा ढुलाई का काम सस्ता पड़ता था और इस कार्य के लिए पंजाब की सभी नदियों का उपयोग किया जाता था। इन व्यापारियों से स्थानीय छोटे सरकारी कर्मचारी कई बार घूस भी ले लिया करते थे। नदियों के घाटों पर नियुक्त चौकीदार व अन्य अधिकारी कई बार घूस लेकर व्यापारी का सामान नदी के पार ले जाने देते थे।[3] कभी-कभी छोटे काफिलों या अकेले-दुकेले व्यापारियों को रास्ते में चोर और डाकू लूट भी लेते थे। नदी के

1. Mohan Lal, Journal of Travels in the Punjab Afghainstan etc. p. 406.
2. Mohan Lal, Journal of Travels in the Punjab, Afghainstan etc. p. 410.
3. Lawrence Adventures of an Officer in the Punjab vol. I, p. 52.

www.9009.co.in

मुहानों पर नदियों के द्वारा सामान की ढुलाई के लिए काफी बड़ी किश्तियां रखी जाती थीं । यह किश्तियां नदी पार करने के लिए और नदी के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ले जाने के लिए नदियों में तैयार रखी जाती थी ।[1] सिंधु नदी में से सामान ले जाने के लिए अंग्रेजों, सिंध के अमीरों और लाहौर दरबार के मध्य 1832 में एक समझौता भी हुआ था ।

व्यापार के प्रति रणजीत सिंह की नीति

महाराजा रणजीत सिंह के समय भले ही ढुलाई की बहुत कम सुविधाएं थीं, किन्तु फिर भी कुल मिला कर व्यापार का पर्याप्त विकास हुआ था । जो भी चीजें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थीं उन सब पर कर लगता था । लाहौर राज्य में जगह-जगह चुंगी घर बने हुए थे । लगभग 48 वस्तुएं ऐसी थीं जिनपर नकद पैसों के रूप में कर भरना पड़ता था । चीजों पर कर लगाने के समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता था कि वह ऐशो-आराम का साधन है या जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं का सामान है ।

अनेक चीजों की बिक्री पर सरकार का एकमात्र अधिकार था जैसे नमक, शराब व अन्य कई नशीली चीजें । एन. के. सिन्हा के अनुसार राज्य को इन चुंगी करों से 16,36,114 रुपये की आमदनी होती थी[2] । लैपल ग्रिफिन के अनुसार यह राशि 16,37,000 रुपये थी[3] । प्रिंसिप के अनुसार यह 19,00,600 रुपये थी[4] । कृषि उपज अर्थात् अनाज पर भी जिस पर भूमि कर पहले से ही अदा हो चुका होता था, इस कर से न बच सका । हर चीज जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थी उस पर जगह-जगह पर टैक्स लगने के कारण अन्तिम पड़ाव तक पहुंचने तक उसकी कीमत दोगुनी या इससे भी अधिक हो जाती थी । कनिंघम के अनुसार, "रणजीत सिंह व्यापारियों से इतना कुछ लेता था जितना वे दे सकते थे ।[5] भले ही व्यापारियों को सरकार की ओर से पूरी सुरक्षा मिलती थी फिर भी वे कर वसूल करने वाले अधिकारियों की ज्यादतियों से मुक्त नहीं थे । हर वस्तु जब किसी नगर में दाखिल होती थी उस पर कर लगता था । जब वह वस्तु दुकानदार के पास पहुंचती थी तो फिर उस पर कर लगता था और जब दुकान से वह चीज बाहर जाती थी तो उस पर पुनः कर लगता था । विक्रय की चीजों पर इस प्रकार कर लगाना व्यापार के लिए बहुत हानिप्रद था । रणजीत सिंह ने अपनी सरकार की ओर से व्यापारियों और उनके सामान की पूरी सुरक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध किये हुए थे । रणजीत सिंह

1. Shahamat Ali, The Sikhs and the Afghans p. 112.
2. N.K. Sinha, Ranjit Singh p. 185.
3. Griffin, Ranjit Singh, p. 145.
4. Prinsep, Political Life of Ranjit Singh p. 184.
5. Cummirgham, History of the Sikhs p. 151.

www.9009.co.in

विदेशी व्यापारियों को पंजाब में व्यापार करने के लिए भी उत्साहित करता था। कई पड़ोसी देश पंजाब के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे जैसे रूस के बादशाह ने रणजीत सिंह को एक पत्र द्वारा विश्वास दिलाया था कि पंजाब के व्यापारियों को रूस के साथ व्यापार करने को वह पसंद करेगा[1]। कहा जाता है कि एक बार महाराजा ने शालों की पैंतीस नौकायें लदवा कर बम्बई के रास्ते यूरोप के अलग-अलग देशों की मंडियों को भिजवाई थीं[2]। आम तौर से महाराजा की सरकार व्यापारियों के रोजमर्रा के कामों में हस्तक्षेप नहीं करती थी। समकालीन और अर्ध-समकालीन रचनाओं में बार-बार इस बात का उल्लेख आता है कि रणजीत सिंह के समय व्यापारियों को किसी प्रकार का कोई डर नहीं था क्योंकि राज्य की ओर से उनकी सुरक्षा के लिए पूर्ण प्रबन्ध किये गये थे, जिसके बदले में व्यापारी सरकार को वाजिब कर देते थे।[3] इस प्रकार रणजीत सिंह के समय व्यापारियों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला और व्यापार ने काफी विकास किया। ....?

1. Mohammad Latif History of the Punjab, p. 422.
2. बाबा प्रेमसिंह, पंजाब का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 65.
3. देवी प्रसाद, तवारीख-ए-पंजाब, पृष्ठ 152.

www.9009.co.in